प्राक्कथन

भारत मे जिन दो सस्कृतियो का प्रधानतया विकास हुआ है वे हैं श्रमण सस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति श्रमप्रधान सस्कृति श्रमण सस्कृति और ब्रह्मचर्यप्रधान तथा ब्राह्मणप्रधान सस्कृति ब्राह्मण सस्कृति कहलाई।

ब्राह्मण सस्कृति का मूल साहित्य वेद प्रधान है और श्रमण सस्कृति का मूल साहित्य सूत्र (आगम) पिटक प्रधान

बौद्धों के धर्म ग्रन्थ पिटक और जैनों के धर्म ग्रन्थ सूत्र (आगम) कहलाते हैं।

श्रमण सस्कृति के निकटतम उद्घोषक भगवान् वर्द्धमान चौबीसवें तीर्थंकर थे, उनकी वाणी को तत्कालीन गणधरों ने ग्रहण कर सूत्रों का निर्माण किया, सूत्र निर्माण का कार्य उनके बाद आचार्यों द्वारा भी होता रहा।

जो शास्त्र गणधरो द्वारा गुम्फित हुए वे अग प्रविष्ट तथा जो आचार्यों द्वारा सग्रहित हुए वे अग बाह्य कहलाये। प्रस्तुत शास्त्र उत्तराध्ययन सूत्र अग बाह्य सूत्रो मे गिना जाता है। इसकी मूल सूत्रो मे गिनती है।

मूल सूत्र कहलाने का तात्पर्य यह हो सकता है कि इसमे श्रमण धर्म की उन मूल शिक्षाओ का सकलन है, जो व्यवहार एव निश्चय रूप मे सभी जीवन व्यवहारो को प्रभावित करे। कुछ ऐसा भी प्रतीत होता है कि मोक्ष के मूल अग चार है ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप-इनमे ज्ञान का विस्तृत विवेचन नन्दी सूत्र मे पाया जाता है, दर्शन प्रधान व्याख्या अनुयोग सूत्र मे, चारित्र धर्म की प्रधानता दशवैकालिक सूत्र मे तथा तपश्चर्या का प्रधान वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र मे है अतः ये चारो मूल सूत्र कहलाते है।

अन्य सूत्र ग्रन्थो के समान इसका नामकरण भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। उत्तर-अध्ययन, इस तरह दो शब्दो मे सन्धि होकर यह नाम बना "उत्तराध्ययन" उत्तर अर्थात् प्रधान अध्ययन अर्थात् ज्ञानाग, प्रधान ज्ञानागो का सग्रह अथवा उत्तर अर्थात् पश्चात्-बाद मे, अन्य सूत्र ग्रन्थो की रचना के बाद आवश्यक तत्त्व ज्ञान का जो सकलन हुआ वह, अथवा यह भी कहा जाता है कि भगवान् महावीर ने निर्वाण के पूर्व (अन्तिम समय) दीर्घ देशना दी उसका सकलन होने से भी यह उत्तराध्ययन है। सक्षिप्त रूप मे सूत्रात्मक शिक्षा वाक्य, साधकों को निश्चित लक्ष्य की तरफ प्रेरित करने वाले प्रेरणा स्रोत भावपूर्ण कथन, तथा मोक्षप्राप्ति में ज्ञान, धर्मशिक्षा, श्रद्धा तथा सयम रूपी लाभ चतुष्टय की उपयोगिता, गृहस्थ और साधु का अन्तर, आदि विषयो का विशद रूप मे निरूपण किया गया है। इसके अलावा विषय को स्पष्ट एव सरल करने के लिए जगह जगह पर छोटे छोटे सुन्दर उदाहरण भी दिए गए हैं। एतद्विषयक सन्दर्भों की बहुलता भी इस ग्रन्थ की एक खास विशेषता है।

कुल मिलाकर इसके छत्तीस अध्ययन है किन्तु यह प्रभाकर परीक्षा-उपयोगी छात्र सस्करण केवल सोलह अध्ययन युक्त है।

विद्यार्थियो के हितार्थ अध्ययनो का सारांश और सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

१२ हरिकेशीय-

जाति वाद का खण्डन, जाति मद का दुष्परिणाम, तपस्वी की त्याग दशा, शुद्ध तपश्चर्या का दिव्य प्रभाव, सच्ची शुद्धि किसमें है ?

१३ चित्त सम्भूतीय

संस्कृति एवं जीवन का सम्बन्ध-प्रेम का आरंभ-चित्त और सम्भूति इन दोनों भाइयों का पूर्व इतिहास, छोटी सी वासना के लिए निदान, पुनर्जन्म क्यों, प्रलोभन के प्रबल निमित्त मिलने पर भी त्याग की दशा, चित्त सम्भूति का परस्पर मिलन, चित्त मुनि का उपदेश, सम्भूति का न मानना और घोर दुर्गति में जाकर पड़ना, और चित्त मुनि का सद्गति में पहुँचना।

१४ इषुकारीय

ऋणानुबन्ध किसे कहते हैं ? छः साथी जीवों का पूर्व वृत्तान्त और इषुकार नगर में उनका पुनः इकट्ठा होना, संस्कार की स्फूर्ति परम्परागत मान्यताओं का जीवन पर प्रभाव गृहस्थाश्रम किस लिए ? सच्चे वैराग्य की कसौटी-आत्मा की नित्यता का मार्मिक वर्णन, अन्त में छहों का एक दूसरे के निमित्त से संसार त्याग और मुक्ति प्राप्ति।

१७ पाप श्रमणीय

पापी श्रमण किसे कहते हैं ? उसकी व्याख्या रूप श्रमण जीवन को दूषित करने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म दोषों का भी चिकित्सा पूर्ण वर्णन।

१८ संयतीय-

कम्पिल नगरी के राजा संयति का शिकार के लिए उद्यान में जान हिरन की हत्या और उसका पश्चात्ताप, गर्दभाली मुनि के उपदेशों का प्रभाव संयति राजा का गृह त्याग संयति मुनि का तथा क्षत्रिय मुनि का समागम जैन शासन की उत्तमता किसमें है ?, शुद्ध अन्तःकरण से पूर्व जन्म का स्मरण होना, चक्रवर्ती की अनुपम विभूति के धारक अनेक महा पुरुषों का आत्म सिद्धि के लिए त्याग मार्ग का अनुसरण तथा उनकी नामावली।

१९ मृगापुत्रीय-

सुग्रीव नगर के बलभद्र राजा के तरुण युवराज मृगापुत्र को एक मुनि को देखने से भोग विलासों से वैराग्य भाव का पैदा होना, पुत्र का कर्तव्य

माता-पिता वात्सल्य, दीक्षा लेने के समय आज्ञा प्राप्त करने समय की मार्मिक चर्चा, पूर्व जन्मों में नीच गतियों में भोगे हुए दुःखों की वेदना का वर्णन, आदर्श त्याग ग्रहण।

२० महानिर्ग्रंथीय-

श्रेणिक महाराज और अनाथी मुनि का आश्चर्य जनक संयोग अशरण भावना, अनाथता तथा सनाथता का वर्णन, कर्मों का कर्ता तथा भोक्ता आत्मा ही है उसकी प्रतीति, आत्मा ही अपना शत्रु और मित्र है, सन्त के समागम से मगध पति को आनन्दानुभूति तथा सम्यक्त्व

२१ समुद्रपालीय-

चम्पा नगरी में रहने वाले भगवान् महावीर के शिष्य पालित का चरित्र उनके पुत्र समुद्रपाल को एक चोर की दशा देखते ही उत्पन्न हुआ वैराग्य भाव, उनकी अडिग तपश्चर्या, त्याग का वर्णन।

२२ रथनेमीय-

अरिष्ट नेमि का पूर्व जीवन, तरुण वय में वैराग्य संस्कार की जागृति, विवाह के लिए जाते हुए मार्ग में एक छोटा सा निमित्त मिलते ही वैराग्य का उत्पन्न होना, स्त्री रत्न राजमति का अभिनिष्क्रमण रथनेमि तथा राजीमति का एकान्त में आकस्मिक मिलन, रथनेमि का कामातुर होना, राजीमति की अडिगता, राजीमति के उपदेश से रथनेमि का जागृत होना, स्त्री शील एवं शक्ति का ज्वलन्त दृष्टान्त

२३ केशि गौतमीय-

श्रावस्ति नगरी में महामुनि केशीश्रमण से गौतम का मिलाप, गम्भीर प्रश्नोत्तर, समय धर्म की महत्ता, प्रश्नोत्तरों से सबका समाधान, होना और भगवान् महावीर द्वारा प्ररुपित आचार का ग्रहण

२५ यज्ञीय-

याजक कौन है? यज्ञ कौनसा ठीक है? अग्नि कौनसी होनी चाहिए? ब्राह्मण किसे कहते हैं? वेद का असली रहस्य, सच्चा यज्ञ, जाति वाद का खंडन, कर्म वाद का मंडन, श्रमण, मुनि और तपस्वी किसे कहते हैं? संसार रूपी रोग की सच्ची चिकित्सा सच्चे उपदेश का प्रभाव,

२८ मोक्षमार्ग गति-

मोक्ष मार्ग के साधनों का स्पष्ट वर्णन, संसार निहित समस्त तत्वों के

तात्विक लक्षण, आत्म विकास का मार्ग सरलता से कैसे मिल सकता है?

३० तपो मार्ग–

कर्म रूपी इंधन को जलाने वाली अग्नि कौनसी है? तपश्चर्या का वैदिक वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक इन तीनों दृष्टियों से निरीक्षण, तपश्चर्या के भिन्न २ प्रकार के प्रयोगों का वर्णन और उनका शारीरिक तथा मानसिक प्रभाव,

१३ कर्म प्रकृति-

जन्म मरण के दुखों का मूल कारण क्या है? आठों कर्मों के नाम, भेद उपभेद तथा उनकी भिन्न २ स्थिति एवं परिणाम का संक्षिप्त वर्णन,

१४ लेश्या-

सूक्ष्म शरीर के भाव अथवा शुभाशुभ कर्मों के परिणाम, छह लेश्याओं के नाम, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान स्थिति गति जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति आदि का विस्तृत वर्णन किन किन दोषों एवं गुणों से शुभ एवं अशुभ भाव उत्पन्न होते हैं, । स्थूल क्रिया से सूक्ष्म मन का सम्बन्ध, कलुषित अथवा प्रसन्न मन का आत्मा पर क्या असर पड़ता है मृत्यु से पहले जीवन काय के फल का विचार ।

१५ अनगारीय-

अनगार अर्थात् साधु का व्यवहार कैसा रहना चाहिये उसका वर्णन जिनके व्रतों में आगार यानि छूट नहीं है उन्हें अनगार कहते हैं अपने व्रतों का परिपालन शुद्ध रीति से करने पर शाश्वत स्थान अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का वर्णन, ।

— आचार्य आनन्द ऋषि"

श्री वीतरागाय नमः

हरिकेशीय अध्ययन

पूर्व पीठिका

आत्मविकास में जातिका बन्धन नहीं होता। चांडाल भी आत्म-कल्याण के मार्ग का आराधन कर सकता है।

महामुनि हरिकेश चण्डाल-कुल में उत्पन्न हुए थे, फिर भी महान् तपस्वी एवं मोक्षाधिकारी बने। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण वे सर्वस्व त्याग कर वैराग्यशील बने थे। वैराग्यावस्था में एक यक्ष ने उनकी अनेक बार कठिन परीक्षाएं ली थीं, उनमे उत्तीर्ण होने पर वह उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सेवक रूप में उनके साथ ही रहने लगा।

एक बार यक्ष-मन्दिर मे मुनि हरिकेश ध्यानावस्थित मुद्रा में जड़ स्तम्भवत् खड़े थे, उसी समय कोशल-नरेश की पुत्री भद्रा अपनी सखियों के साथ उस मन्दिर में आई। देव-दर्शनों के अनन्तर सखियाँ क्रीडार्थ मन्दिर-स्तम्भों का आलिंगन करने लगीं। भद्रा भी उन्हें क्रीडा निरत देखकर खेल में प्रवृत्त हुई और अन्धकार मे स्तम्भवत् खड़े मुनिराज को स्तम्भ समझकर उसने आलिंगन में बाध लिया। यह देखकर सखियां खिल खिला उठीं और बोलीं—'क्या आपके यही पति हैं ? पति का आलिंगन होना ही चाहिए।'

सखियों के उपहास से भद्रा खीझ गई और उसने अपनी भूल पर ध्यान न देते हुए मुनिजी का ही अपमान करना प्रारम्भ कर दिया।

भद्रा की उस चेष्टा से यक्ष क्रुद्ध हो उठा और उसने उसकी प्रताड़ना की जिससे वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

राजकुमारी की अचेतावस्था की खबर तुरन्त ही सारे शहर में वायुवेग से फैल गई। उसके पिता भी वहाँ आ पहुँचे। अन्त मे दैवी प्रकोप की निवृत्ति

के लिये भद्रा का मुनिराज से विवाह निश्चित हुआ। उसी समय मुनि-शरीर से यक्ष अदृश्य हो गया और तपस्वी हरिकेश भी सावधान हुए। वे इस वैवाहिक उपक्रम को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और अपने तप एवं त्याग से सबको समझा-बुझाकर अन्यत्र चले गए।

कोशल नरेश ने अपनी इस पुत्री का विवाह एक ब्राह्मण के साथ कर दिया। ब्राह्मणों ने विवाहोपलक्ष्य में एक यज्ञ की तैयारी प्रारम्भ की। उसी समय मुनि हरिकेशी भी पारणा के लिये भोजन पाने की इच्छा से वहीं आ पहुँचे। ब्राह्मणों ने पहले तो उनका उपहास किया और फिर उनकी ताडना करने लगे।

इस समय यक्ष ने क्या किया ? हरिकेशीजी का परिचय प्राप्त कर भद्रा की क्या दशा हुई और मुनिवर के तप प्रभाव से समस्त वातावरण किस प्रकार पवित्रता एवं सौमनस्य से महक उठा—आदि सब बातों का वर्णन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

* श्री वर्धमानाय नमः *

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

बारहवां हरिकेशीबल अध्ययन

सोवाग कुल-संभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएसबलो नामं, आसी भिक्खू जिइन्दिओ ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोवागकुलसंभूओ—श्वपाककुलसंभूतः) चांडाल के कुलमें उत्पन्न हुए एवं (गुणुत्तरधरो—गुणोत्तरधरः) गुणों में सर्वोत्तम जो प्राणातिपात विरमण आदि है उनको, अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र को धारण करनेवाले और (जिइंदिओ—जितेन्द्रियः) इन्द्रियों को जीतनेवाले तथा (भिक्खु—भिक्षुः) निरवद्य भिक्षा लेनेवाले ऐसे (हरिएसबलो नाम मुणी—हरिकेशबलो नाम मुनिः) हरिकेशीबल मुनि (आसी—आसीत्) थे।

ईरिएसणभासाए, उच्चारसमिइसु य।
जओ आयाण णिक्खेवो, संजओ सुसमाहिओ ॥२॥
मण-गुत्तो, वय-गुत्तो, काय-गुत्तो जिइंदिओ।
भिक्खट्ठा बंभइज्जम्मि, जन्नवाडेमुवट्ठिओ ॥३॥

अन्वयार्थ—(इरिएसणभासाए उच्चारसमिइसु—ईर्येषणाभाषोच्चारसमितिषु) ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, उच्चारप्रस्रवणश्लेष्म—सिंघाणजल्ल परिष्ठापनिका समिति, तथा (आयाणनिक्खेवे—आदान—निक्षेपे) आदान निक्षेपण समिति इन पांच समितियों में (जओ—यतः) प्रयत्नशील तथा (संजओ—संयतः) संयमशील (सुसमाहिओ—सुसमाहित) ज्ञानदर्शनचारित्र एवं समाधियुक्त तथा (मणगुत्तो, वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ—मनोगुप्तः वचोगुप्तः कायगुप्तः जितेन्द्रियः) मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति से युक्त एवं इन्द्रियों को जीतनेवाले ऐसे वे मुनि (भिक्खट्ठ—भिक्षार्थम्) भिक्षा के लिए (बंभइज्जम्मि—ब्रह्मेज्ये) ब्राह्मण लोग जहां यज्ञ कर रहे थे ऐसे (जन्नवाडेमुवट्ठिओ—यज्ञपाटे उपस्थित) यज्ञमण्डप में उपस्थित हुए।

तं पासिऊणमेज्जंतं, तवेण परिसोसियं ।
पंतोवहिउवगरणं, उवहसन्ति अणारिया ॥४॥

अन्वयार्थ—(तवेण परिसोसियं—तपसा परिशोषितम्) षष्ठ, अष्टमादि तपस्या से कृश हुए, (पंतोवहिउवगरणं—प्रान्तोपध्युपकरणम्) प्रान्त, जीर्ण, एवं मलीन होने से असार उपधिवाले अर्थात् निरुपयोगी वस्त्रपात्रादिरूप उपधि वाले, तथा उपकरणवाले,—संयमोपकारक रजोहरण प्रमार्जिकादिकवाले, ऐसे उन (एज्जन्तं—एजमानम्) आते हुए (तं—तम्) हरिकेशबलमुनिको (पासिऊण—दृष्ट्वा) देखकर (अणारिया अनार्या) यज्ञमण्डप में उपस्थित वे अनार्य—अशिष्टजन सबके सब (उवहसन्ति—उपहसन्ति) हँसने लगे। १

जाईमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइन्दिया ।
अबंभचारिणो बाला इमं वयणमब्बवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(जाईमयपडिथद्धा—जातिमदप्रतिस्तब्धाः) जातिमद से सम्पन्न (हिंसगो—हिंसका) प्राणियों के घात करने में लवलीन (अजिइंदिया—अजितेन्द्रिया) इन्द्रियों के विषयों में आकृष्ट चित्तवाले (अबंभचारिणो—अब्रह्मचारिणः) धर्मबुद्धि से मैथुन सेवी। तथा (बाला—बाला) अज्ञानी बालक्रीडा की तरह अग्निहोत्र आदि में प्रवृत्त वे यज्ञमंडप के ब्राह्मण (इम वयणमब्बवी—इद वचन मब्रवीत्) इस प्रकार वचन बोले।

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे! काले विगराले फोक्कनासे ।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकरदूसं परिहरिय कंठे ॥६॥

अन्वयार्थ—(दित्तरूवे—दिप्तरूपः) बीभत्स आकारवाला (काले—कालः) कृष्णरूप वाला (विगराले—विकराल) भय उत्पन्न करने वाला (फोक्कनासे—फोक्कनास) बेडोल नाकवाला (ओमचेलए—अवमचेलक.) मलिन वस्त्र धारण करनेवाला (पंसुपिसायभूए—पांशुपिशाचभूत) धूलि-धूसरित शरीर होने से भूत जैसा मालूम पड़नेवाला (संकरदूसं - संकरदूष्यम्) शंकरदूष्य के जीर्ण होने से तथा अनुपयोगी होने से कूडे के ढेर पर डालने योग्य वस्त्र के समान असार फटे और मैले वस्त्र को (कंठे परिहरिय—कंठे परिधृत्य) कंठ में धारण कर (कयरे आगच्छइ—कतरः आगच्छति) यह कौन आ रहा है?

१. मुनि के वस्त्र पात्र कम्बल आदि को उपधि तथा उपकरण कहते हैं।

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे, काए व आसा इहमागओ सि ।
ओमचेलगा ! पंसु पिसायभूया ! गच्छ क्खलाहि किमिहट्ठिओ सि ॥७॥

अन्वयार्थ—(इय—इति) इस पूर्वोक्त रूप से (अदंसणिज्जे—अदर्शनीय) कुरूप होने के कारण सर्वथा देखने के योग्य तुम (कयरे—कतर.) कौन हो (काए व आसा इहमागओ सि—कया वा आशया इह आगतोऽसि) किस आशा से तुम यहाँ पर आये हो ? (ओमचेलगापंसुपिसायभूया—अवमचेलक पांशुपिशाचभूत.) अरे मलिनवस्त्रधारिन् ? पांशुपिशाचभूत—धूलिधूसरित होने से पिशाच जैसे शरीर वाले तू (गच्छ) चला जा (क्खलाहि—स्खल) यहाँ से दूर हट जा (किमिहट्ठिओसि—किमिहस्थितोऽसि) क्यो यहाँ पर खडा हुआ है ?

जक्खो तहिं तिंदुयरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुनिस्स ।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइं उदाहरित्था ॥८॥

अन्वयार्थ—जब यज्ञशालामे उन ब्राह्मणों ने उस मुनिराज हरिकेशबल का[1] अपमान किया था (तहिं—तत्र) उस समय (तिंदुयरुक्खवासी—तिन्दुकवृक्ष-वासी) तिन्दुकवृक्ष पर रहनेवाले (जक्खो—यक्षः) यक्ष ने जो (तस्स महामुणिस्स अणुकंपओ—तस्य महामुनेः अनुकंपक) उन महामुनि के ऊपर दयाशील था—उनका सेवक था (नियगं सरीरं पच्छायइत्ता निजकं शरीरं प्रच्छाद्य) अपने शरीर को अन्तर्हित करके अर्थात् स्वयं महामुनि के शरीर में प्रविष्ट हो करके (इमाइं वयणाइं, उदाहरित्था—इमानि वचनानि उदाहरत्) यह वचनो को बोला—

समणो अहं संजओ बंभयारी, विरओ धणपयणपरिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥९॥
वियरिज्जइ खज्जइ भोज्जइ य, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणाहि मे जायणजीविणत्ति, सेसावसेसं लहऊ तवस्सि ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अहं समणो—अहं श्रमण) मैं मुनि हूँ। (संजओ—संयतः) सावद्य व्यापार से सदा निवृत्त हूँ। (बंभयारी—ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी अर्थात् कुशील का

---

१. यह वही यक्ष है जो मुनिका सेवक था और उसीने उनके शरी[illegible] किया था।

त्यागी हूँ, नववाड़ से विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला हूँ। (पणपयणपरिग्गहाम्रो विरम्रो—पनपचनपरिग्रहात् विरत) धन चतुष्पदादिमे, पचन-माहारादिक के निर्माण से, एव परिग्रह से विरक्त हू। और (भिक्खकाले—भिक्षाकाले) भिक्षा के समय मे (परप्पवित्तस्स उ अन्नस्स—परप्रवृत्तस्य तु अन्नस्य) पर के लिए निष्पादित भोजन को (अट्ठा—प्रर्थाय) लेने के लिए[1] (इह—इह) इस यज्ञशाला मे (भ्रागम्रोमि भ्रागतोऽस्मि) आया हू। (भवयाणमेयं अन्न-भवतो एतम् अन्न) आप लोगो की यह चतुर्विध आहार सामग्री (पभूय—प्रभूतम्) पर्याप्त है। इसमे से आप लोग कुछ (वियरिज्जइ—वितीर्यते) दीन अनाथजनो को देते हैं। (खज्जई-खाद्यते) अन्य ब्राह्मणों को खिलाते हैं। (य—च) और (भोज्जई—भुज्यते) स्वय खाते हैं (जायणजीविणु मे जाणाहि—याचना जीविन मा जानीत) मैं याचना से प्राप्त भोजन से ही अपना निर्वाह करता हूँ ऐसा आप निश्चित रूप से समझें (त्ति—इति) इसलिए (सेसावसेस लभउ तवस्सि—शेषावशेष तपस्वी लभताम्) वितरण से तथा खाने से बचे हुए इस भोजन मे से आप लोग कुछ मुझ तपस्वी को भी दें। इन दो गाथाओं द्वारा "कयरे तुम" इस सातवी गाथा का उत्तर दिया गया है ॥९।१०॥

उवक्खडं भोयणं माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वयं एरिसमन्नपाणं, दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओ सि ॥११॥

अन्वयार्थ (माहणाण—ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों के निमित्त (उवक्खड—उपस्कृतम्) तैयार किया गया (भोयण—भोजन) यह अशनपानादिक (अत्तट्ठिय—आत्मार्थिकम्) ब्राह्मणो के लिए ही है, अत वह ब्राह्मणों को देने के पहिले किसी और को नहीं दिया जा सकता है। (इहेगपक्खं सिद्धम्—इह एकपक्षसिद्धम्) इस भोजन मे केवल एक ही पक्ष-ब्राह्मणरूप पक्ष हो प्रधान है, इसलिए (एरिसमन्नपाण—ईदृश मन्नपानम्) इस प्रकार के अन्नपान को (वय—वयम्) हम लोग (तुज्झ न दाहामु—तुभ्य न दास्याम)किसी को भी नहीं दे सकते तो स्वयपाकनोऽन्य तुमको कैसे दे सकते है अर्थात् नहीं देते। कहा भी है—

'न शूद्राय मति दद्यान्नोच्छिष्टं न हविः कृतम् ।
न चास्योपदिशेत् धर्मं, न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

अर्थात् शूद्र को न बोध देना, न उच्छिष्ट देना, न यज्ञावशिष्ट देना, न

---

[1] जैन साधु दूसरों के निमित्त बनाये गये अन्न को ही भिक्षा लेते हैं, अपने लिये तयार की गई रसोई वे ग्रहण नहीं करते।

धर्म का उपदेश देना और न उनको व्रत में आरोपण करना। इसलिए हम तुमको नहीं देंगे, अर्थ में तुम (इह) यहां पर (कि ठियोसि - किं स्थितोऽसि) क्यों खड़े हो ?

थलेसु बीयाइं ववंति कासया, तहेव निन्नेसु य आससाए।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुन्नमिणं खु खेत्तं ॥१२॥

अन्वयार्थ—जैसे (कासया—कर्षकाः) कृषक जन (आससाए—आशंसया) धन प्राप्ति की इच्छा से (निन्नेसु थलेसु— निम्नेषु स्थलेषु) नीचे की भूमि में (बियाइं ववंति—बीजानि वपन्ति) बीजों को बोते हैं उसी तरह वे (य—च) ऊपर की भूमि में भी बीज बोते हैं। इस तरह से बीजों को बोने में केवल उनका यही अभिप्राय रहा करता है कि यदि अतिवृष्टि हुई तो निम्न भागों में धान्योत्पत्ति की असम्भवता रहती है, क्योंकि वहां पानी अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाया करता है अतः बीज सड़ जाता है तथा अल्पवृष्टि हुई तो उच्च भागों में उस समय धान्योत्पत्ति की सम्भवना रहती है, क्योंकि अल्पवृष्टि में जल वहां ठहरता नहीं है, वह तो बहकर नीचे की ओर चला जाता है। फिर भी ऊँचे-नीचे सभी स्थलों में बीज बोये जाते हैं। इसी तरह हे ब्राह्मणो ! तुम सब भी (एयाए सद्धाए-एतया श्रद्धया) इसी श्रद्धा से (मज्झं दलाह—मह्यं दत्त) मुझे आहारादिक सामग्री दो अर्थात् जिस तरह तुम लोग अपने आपको निम्न क्षेत्ररूप मानते हो और मुझे स्थलरूप मानते हो तो भी कृषक की तरह आप लोग निम्न क्षेत्र जैसे ब्राह्मणों के लिए जिस श्रद्धा से देते हो—उसी श्रद्धा से (मज्झं—मह्यं) मुझे भी आहारादिक दो (इदम्) यह मेरा शरीर रूप (खेत्तं—क्षेत्रम्) क्षेत्र (खु—खलु) निश्चय से (पुण्णं—पुण्य) पुण्य रूप है, इसलिए आप पुण्य रूप क्षेत्र की आराधना में यह आपके लिए पुण्य का सम्पादन करानेवाला होगा; तात्पर्य यह कि मेरे लिए दिया गया आहार आपके लिये पुण्यजनक होगा।

खित्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा।
जे माहणा जाईविज्जोववेया, ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं ॥१३॥

अन्वयार्थ—(लोए—लोके) इस संसार में (खित्ताणि अम्हं विइयाणि—क्षेत्राणि अस्माकं विदितानि) क्षेत्रतुल्य पात्र हमलोगों को विदित हैं। (जहिं पकिन्ना पुण्णा विरुहंति—यत्र प्रकीर्णानि पुण्यानि विरोहन्ति) जहां पर आहारादिक के वितरण से पुण्य प्राप्त हुआ करते हैं, वे कौन से हैं उनको वे ब्राह्मण प्रदर्शित करते हैं। (जे जाइविज्जो ववेया माहणा-ये जाति विद्योपपन्ना ब्राह्मणाः) जो ब्राह्मणत्व जाति से विशिष्ट एवं चौदह विद्याओं के निधान ब्राह्मण हैं। (ताइं

तु —नानि तु) वे ही (सुपेसलाइं – सुपेशलानि) सुन्दर सुनद पुण्यांकुर के उत्पादक (खित्ताइं —क्षेत्राणि) क्षेत्र हैं तुम्हारे जैसे नहीं।[1]

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहो य।
ते माहणा जाई विज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥१४॥

अन्वयार्थ— (कोहो य माणो य क्रोधश्च मानश्च) क्रोध, मान और लोभ तथा (वहो य—वधश्च) यज्ञों में प्राणियों का वध तथा (मोसं मृषा) असत्य (अदत्तं च—अदत्तं च) अदत्त का आदान 'च' शब्द से मैथुन का सेवन और (परिग्गहो य—परिग्रहश्च) परिग्रह ये (जेसिं येषाम्) जिनके पास में हैं (ते माहणा—ते ब्राह्मणा.) वे आप लोग ब्राह्मण (जाई विज्जाविहूणा —जाति विद्याविहीना) जाति और विद्या से विहीन मानने योग्य हैं, क्योंकि ब्राह्मणोचित कर्म का अभाव आप में हैं, चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था क्रिया कर्म के विभाग से ही मानी जाती है।[2] कहा भी है।

"एकवर्णमिदं सर्वं, पूर्वमासीत् युधिष्ठिर।
क्रियाकर्मविभागेन, चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थितम् ॥
ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण, यथाशिल्पेन शिल्पिकाः।
अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत् ॥

हे युधिष्ठिर! पहले एक ही वर्ण था। पश्चात् क्रिया और कर्म के विभाग से यही वर्ण चार रूप में विभक्त हो गया। ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण कहा जाता है, शिल्पकर्म से शिल्पी कहा जाता है। कर्म के बिना वह नाममात्र का ब्राह्मण है। वास्तविक ब्राह्मण नहीं। जैसे कि किसी कीट विशेष को इन्द्रगोप कहते हैं किन्तु इन्द्र का रक्षक वह बेचारा कीट क्या हो सकता है वह तो नाममात्र से ही इन्द्रगोप है, इसी तरह आप सब क्रोधादिकों से युक्त होने से तथा ब्रह्मचर्य के अभाव में आप लोग जाति से भी ब्राह्मण कहे जाने योग्य नहीं हैं। भले ही आप इन्द्रगोप कीड़े की तरह नाम से ब्राह्मण रहें, तथा बालक्रीड़ा की तरह इन अग्निहोत्र आदि हेय कर्मों में निरत होने के कारण आप लोग सम्यग्ज्ञान रूप पारमार्थिक विद्या से भी विहीन हैं, इसलिए जाति और विद्या से विहीन होने के कारण केवल नाममात्र के ब्राह्मणों को ब्राह्मण—सद्गुणों से युक्त एवं सुपेशल मानना उचित नहीं है। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि आप

---

१. वस्तुतः उक्त वचन मुनि मुख से यक्ष ही कह रहा था।
२. ये वचन यज्ञ शाला में स्थित क्षत्रियों के हैं।

लोग पुण्यांकुर जनन के योग्य क्षेत्र हैं। ऐसी स्थिति सम्पन्न लोग केवल पापों के ही उत्पादक क्षेत्र माने गये हैं और सम्यक्ज्ञान का फल विरति ही होता है। क्रोधादिकों से युक्त आप में विरति का उदित होना सम्भव ही नहीं, अतः इसके अभाव में विद्यमान ज्ञान भी निष्फल होने से अज्ञान के तुल्य ही माना गया है, इसलिए आप लोग विद्याविहीन ही हैं।[1]

तुब्भेत्य भो भारहरा गिराणं, अट्ठं न जाणाह अहिज्जवेए।
उच्चावचाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥१५॥

अन्वयार्थ—(भो-भो) हे ब्राह्मणों! (तुब्भेत्य—यूय अत्र) आप इस लोक मे (गिराणं भारहरा—गिरां भारधरा) केवल वेद सम्बन्धी वाणी के भार को ही ढोने वाले हैं, क्योंकि आप लोग पारमार्थिक अर्थ के ज्ञाता नहीं हैं। अग उपांग सहित होने से वेदों का वजन बहुत भारी हो जाता है तथा उनमें पारमार्थिक अर्थ विहीनता भी प्राधान्य रूप से ही रही हुई है—इसलिए वे एक तरह के भार ही हैं। उन्हें आप अपने दिमागमें धारण करने से मानो उनका भार ही उठा रहे हैं। अतः आप सब एक तरह से भारवाहक ही हैं।

इस पर यदि वे कहें कि वेदों में पारमार्थिक अर्थ नहीं है सो यह बात नहीं है, पारमार्थिक अर्थ भी वहाँ है, इसलिए आप हमे भारवाहक क्यों कहते हैं इस प्रकार आपका यह कहना आपके अज्ञानता का द्योतक है सो। इस प्रकार की आशंका का समाधान सूत्रकार आगे के पदों द्वारा करते हुए कहते हैं।

"अट्ठं" इत्यादि।

हे ब्राह्मणों! आप लोगों ने यद्यपि (वेए अहिज्ज—वेदान् अधीत्य) वेदों का अध्ययन किया है तो भी (अट्ठं न जाणाह—अर्थं न जानीथ) ऋग्वेदादिकों में यत्र कुत्रचित् स्थलों में छिपे हुए अर्थ को—पारमार्थिक तत्त्व को आप लोग जानते नहीं है। यदि जानते हो तो "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" किसी भी जीव को मत मारो इस वेदमंत्र का अध्ययन करके भी आप लोग क्यों इस हिंसामय यज्ञ-कर्म मे प्रवृत्तियुक्त हो रहे हो? इससे यह कहा जा सकता है कि आप लोग परमार्थतः वेदार्थविज्ञ नहीं है। अतः वेदविद्या सम्पन्न भी नहीं हैं। इस तरह ब्रह्मचर्य का अभाव होने से और वेदविद्या से रहित होने से आप लोग पुण्यांकुरप्ररोहण के योग्य क्षेत्रस्वरूप नहीं हैं।

---

१. उस समय कुछ ब्राह्मण अपने धर्म से पतित होकर महाहिंसाको ही धर्म मनवाने का प्रयत्न करते थे। ऐसे ब्राह्मणों को लक्ष्य करके ही यह श्लोक यक्ष की प्रेरणा से मुनि के मुख से कहलाया गया है।

जब इस प्रकार यक्षाविष्ट मुनिराज ने कहा तब उन लोगों ने पूछा की महाराज अब आप बतलाइये कि पुण्यांकुर के उत्पादन योग्य क्षेत्र कौन है—इस प्रकार ब्राह्मणों के वचनों को सुनकर मुनिराज ने उनसे कहा कि सुनो हम बतलाते हैं जो (सुणिणो—मुनय) मुनिजन षट्काय के जीवों की रक्षा करने के लिए (उच्चावयाइं उच्चावचानि) छोटे-बड़े घरों में भिक्षा के लिए (चरन्ति—चरन्ति) भ्रमण करते हैं। (ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं-तानि तु क्षेत्राणि सुपेशलानि) वे ही-मुनिजन लोक में सुन्दर क्षेत्र हैं अर्थात् पुण्यांकुर को गुण-पूर्वक बढ़ाने के योग्य सर्वोत्तम क्षेत्र स्वरूप हैं। ऐसे मुनिजनों के लिए ही दिया गया अन्नपानादिक सामग्री पुण्यजनक हुआ करती है, जो षट्काय के जीवों की विराधना करने में तल्लीन तुम्हारे जैसे ब्राह्मण हैं उनको दिया हुआ आहार पुण्यजनक नहीं होता है। छोटे बड़े सब घरों से भिक्षा लेना वेदान्तियों को भी सम्मत है। उन्होंने कहा भी है

"चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि।

एकान्नं नैव भुंजीत, बृहस्पति समादपि ॥

अज्झावयाणं पडिकूलभासी पभाससे किं तु सगासि अम्हं।

अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दाहामु तुमं नियंठा ॥१६॥

अन्वयार्थ (नियंठा—निर्ग्रन्थ) हे निर्ग्रन्थ! तुम (अम्ह अज्झावयाणं सगासि पडिकूलभासी अस्माकं अध्यापकानाम् सकाशे प्रतिकूलभाषी) हमारे अध्यापकों के समक्ष में भी विरुद्ध बोलने के स्वभाववाले हो। इसीसे (अम्ह सगासि किं तु पभाससे-अस्माकं सकाशे किं नु प्रभाषसे) हमारे समक्ष भी तुम ऐसा प्रतिकूल क्यों बोल रहे हो? तुम्हारी इस तरह की प्रवृत्ति देखकर हमने तो यही निश्चय कर लिया है कि चाहे (अवि एयं विणस्सउ—अपि एतद् विनश्यतु) हमारा यह अन्नपान सब का सब भले ही खराब हो जावे - परन्तु (तुमं दाहामु—तुभ्यं नैव दास्यामः) तुम्हारे लिए तो बिलकुल ही नहीं देंगे। निर्ग्रन्थ' इस पद से मुनि हरिकेशबलकी निष्किञ्चनता अपरिग्रहिता सूचित की है। मुनिजन ज्ञान धन विशिष्ट होते हैं। तुम्हारे भीतर तो लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है, इसका यही आशय निकलता है।

समिईहिं मज्झं सुसमाहियस्स, गुत्तीहिं गुत्तस्स जिइंदियस्स।

जइमं न दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमज्ज जन्नाण लभित्थ लाभं ॥१७॥

अन्वयार्थ —(समिईहिं—समितिभिः) ईर्यासमिति आदि पांच समितियों से (सुसमाहियस्स—सुसमाहिताय) अच्छी तरह समाधियुक्त तथा (गुत्तीहिं-गुप्ति-

भि:) मनोगुप्ती आदि तीन गुप्तियों से (गुत्तस्स—गुप्ताय) सहित (जिइ दियस्स-जितेन्द्रियाय) एवं जितेन्द्रिय ऐसे (मज्झ—मह्यं) मेरे लिए (इम एसणिज्ज-इमम् एषणीयम्) इस निर्दोष आहार को (यत्) जिस कारण से (न दाहित्थ-न दास्यथ) नहीं दे रहे हो उस कारण से (अज्ज—अद्य) इस यज्ञावसर में *(जन्नाण लाभं लभित्थ किं—यज्ञानां लाभं लप्स्यध्वे किम्)* आप लोग यज्ञों के फल को पुण्य प्राप्ति को प्राप्त कर सकोगे क्या ? अर्थात् नहीं प्राप्त कर सकोगे ।

भावार्थ—पात्र दान से ही दाता को विशिष्ट पुण्य प्राप्ति हुआ करती है यह सिद्धान्त है। सो आपलोग मेरे जैसे निर्ग्रन्थ दानपात्र साधु के लिए एषणा विशुद्ध जो अन्नपानादिक नहीं दे रहे हो सो आप लोग क्या यज्ञ के फल को पा सकोगे अर्थात् नहीं पा सकोगे। अपात्र के लिये दान की निष्फलता होने के लिये किया गया दान और दाता दोनों ही हानि को पाते हैं। कहा है

"दधि मधु घृतान्यपात्रे क्षिप्तानि यथाऽऽशु नाशमुपयान्ति ।"

"व्यर्थस्त्वपात्रे व्यय." इसलिये अपात्रको दिया गया दान केवल नाश को ही प्राप्त होता है।

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खंडिएहिं ।
एवं खु दंडेण फलेण हंता, कंठम्मि घित्तूण खलेज्ज जोणं ॥१८॥

अन्वयार्थ—(इत्थ-अत्र) इस यज्ञशालामें (के खत्ता—केऽपि क्षत्राः) क्या कोई ऐसे भी क्षत्रिय हैं (वा—वा) अथवा (उवजोइयावा—उपज्योतिष्का. वा) कोई ऐसे हवन करने वाले पुरुष हैं या कोई ऐसे भी अध्यापक हैं (जो खु—ये खलु) जो (खडिएहिं सह—खडिकै सह) छात्रों के सहित होकर (एवं—एतम्) इस निर्ग्रन्थ साधु को (दंडेण फलेण हुता—दण्डेन फलेन हत्वा) दण्डोंसे एवं बिल्वादिक फलों से मारकर और (कंठम्मिघित्तूण—कण्ठे गृहीत्वा) इसकी गर्दन पकड़कर (नणु) निश्चय से यहाँ से (खलेज्ज—निष्कासयेयुः) निकाल सके।

अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दंडेहिं वेत्तेहिं कसेहिं चेव, समागया तं इसि तालयंति ॥१९॥

अन्वयार्थ (अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता अध्यापकानां वचनं श्रुत्वा) इस प्रकार अध्यापकों के वचन सुनकर (तत्थ—तत्र) उसी समय (उद्धाइया-बहुकुमारा—उद्धाविता बहव कुमारा.) दौड़ते हुए अनेक कुमार (समागया-समागता) उस ऋषि के पास आये और (दंडेहिं वेत्तेहिं कसेहिं चेव—दंडै. वेत्रैः कशाभिश्चैव) दण्डों से बेंतों से तथा कोड़ों से *(त इसि—तम् ऋषिम्) उस*

ऋषिको (तालयन्ति—ताडयन्ति) ताडने लगे ।

रण्णो तहिं कोसलियस्स धूया, भद्दत्ति नामेण अणिदियंगी ।
तं पासिया संजयं हम्ममाणं, कुध्दे कुमारे परिनिव्ववेई ॥२०॥

अन्वयार्थ—(तहिं—तत्र) उस यज्ञशाला में (कोसलियस्स रण्णो धूया-कौशलिकस्य राज्ञ दुहिता) कौशल राजा के पुत्री ने (अणिदियंगी—अनिन्दितांगी) कि जो विशिष्ट सौंदर्य सम्पन्न थी और (भद्दत्ति नामेण-नाम्ना भद्रेति) नाम जिसका भद्रा था (हम्ममाणं त संजयं पासिया-हन्यमानं तं संयतं दृष्ट्वा) उन क्रुद्ध कुमारों द्वारा पिटते हुए उन मुनिराज को देखकर (क्रुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ-क्रुद्धान् कुमारान् परिनिर्वापयति) क्रोधाविष्ट बने हुए उन कुमारों को शांत किया ।

देवाभिओगेण निओइएणं, दिन्ना मु रण्णा मणसा न झाया ।
नरिंद देविंद ऽ भिवंदिएणं जेणाभिवंता इसिणा स एसो ॥२१॥

अन्वयार्थ—(देवाभिओगेण निओइएण रण्णा—देवाभियोगेन नियोजितेन राज्ञा) यक्ष के बलात्कार से वशीकृत हुए मेरे पिताने (दिन्नाम-दत्ताऽस्मि) मुझे पहले इन मुनिराज को दिया था परन्तु (मणसा न झाया—मनसा न ध्याता) इस मुनिराज ने मुझे मनसे भी ग्रहण करने की अभिलाषा नहीं की है । (स एसो—स एव) वे ही ये हैं । (नरिंद देविंद अभिवंदिएणं जेण-नरेन्द्र, देवेंद्राभिवंदितेन येन) (इसिणा वन्ता—ऋषिणा वान्ताऽस्मि) नरेन्द्रों, देवेन्द्रों द्वारा नमस्कृत हुए इन ऋषिराज ने जैसे कोई वमन का परित्याग कर देता है, वैसे ही मेरा परित्याग कर दिया है । इसलिए आप लोग इन्हें मत मारो ।[1]

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइंदिओ, संजओ बंभयारी ।
यो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रन्ना ॥२२॥

अन्वयार्थ—देखो जिन्हें आप लोग मार रहे हो वे कोई साधारण व्यक्ति

---

१. इस यक्षने मेरा मार्ग में बहुतेरा ध्यानस्थ मुनीश्वरका अपमान किया था । और इसका बदला देने के लिए शरीर के साथ (मुनि-शरीरमें प्रवेश करके अपने मुनि के विवाह का आयोजन कराया था । किन्तु जब मुनि ध्यान से उठे तो उसने भद्राको शीघ्र ही अपना संयमी होना सिद्ध कर तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा आशीर्वाद देकर उसे मुक्त कर दिया ।

ऐसा जो बहुवचनान्त यक्ष शब्दका प्रयोग किया गया है वह यक्ष परिवार की बाहुल्यता दिखाता है।[1]

ते घोररूवा ठिप्र अंतलिक्खे असुरा तहिं तं जणं तालयंति ।
ते भिन्नदेहे रुहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥२५॥

अन्वयार्थ — (ते असुरा-ते असुरा) वे यक्ष (घोररूवा-- घोररूपा) भयोत्पादक रूपवाले थे। (अन्तलिक्खे ठिप्र —अन्तरिक्षे स्थिता) आकाश मे ठहरे हुए थे। फिर भी (तहिं—तत्र) उस यज्ञशालामे (तं जणं —तान् जनान्) ऋषिको ताडित करनेवाले उन ब्राह्मण कुमारोंको (तालयन्ति- ताडयन्ति) विविध प्रकारसे कष्ट पहुचा रहे थे। (भिन्नदेहे रुहिर वमंते - भिन्नदेहान् रुधिर वमतः) अनेक विध प्रहारोसे जर्जरित शरीर एव खून को वमन करते जब (ते पासित्तु-तान् दृष्ट्वा) उन कुमारोको देखकर (भुज्जो-भूय) पुन (भद्दा इणमाहु-भद्रा इदमाह) भद्राने इस प्रकार कहा।

गिरिं नहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह ।
जायतेयं पाएहिं हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह ॥२६॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जिन तुम लोगोंने (भिक्खुं—भिक्षुम्) इस भिक्षुका (अवमन्नह—अवमन्यध्वे) अपमान किया है सो मानो तुम सबने (गिरिं नहेहिं खणह—गिरिं नखैः खनथ) पर्वत को नाखूनो से खोदा है। (अयं दंतेहिं खायह-अयो दंतैः खादथ) लोहे को दांतो से चबाया है (पाएहिं जायतेयं हणह—पादाभ्याम् जाततेजस हनथ) दोनों पैरो से जाज्वल्यमान अग्निको ताडित किया है।

आसीविसो उग्गतवो महेसी घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुं भत्तकाले वहेह ॥२७॥

अन्वयार्थ—क्यों कि (महेसी—महर्षिः) ये मुनिराज (आसीविसो—आशीविष) दाहक शक्ति विशिष्ट होनेसे सर्प जैसे हैं। अथवा आशीविष लब्धिवाले हैं—शापानुग्रहकरनेमें समर्थ है। इसका कारण यह है कि ये (उग्गतवो—उग्रतपा) उग्रतपस्वी हैं (य) तथा (घोरपरक्कमो—घोरपराक्रम) घोर पराक्रमशाली हैं-

---

१. इस स्थल पर एक ऐसी परम्परा भी चालू है कि यहां भद्राके पति सोमदेवने इन कुमारो को रोका था और देवों के बदले उसका ऐसा करना अधिक सभव भी है किन्तु मूल पाठ में जक्खा शब्द होने से वैसा ही अर्थ किया है।

करोड़ों मनुष्यों को भस्मसात् करनेकी लब्धिवाले है। इस प्रकार इन मुनि को (जं—ये) जिन तुम लोगों ने (मवसु भिक्षु) इस मुनि को (भत्तकालेवहेह—भक्तकाले व्यथयथ) भिक्षाचर्या के समय मे दण्डादिकों द्वारा व्यथित किया है। सो उन्होंने (पयगसेणा—पतगसेना) शलभ जिस प्रकार अपने नाश के लिए (अगणिवपक्खद—अग्निमिव प्रस्कन्दथ) अग्निमे गिरते हैं वैसा काम किया है।

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा लोयंपि एसो कुविओ डहेज्जा॥२८॥[1]

अन्वयार्थ—(सव्वजणेण समागया तुब्भे—सर्वजनेन समागताः यूयम्) पुत्र कलत्र शिष्य आदि परिवार के साथ सम्मिलित होकर तुम सब (सीसेण—शीर्षेण) मस्तक झुकाकर (एय सरण उवेह—एत शरण उपेत) इसकी शरण को अगीकार करो (जइ—यदि) यदि (जीविय वा धण वा इच्छह—जीवित वा धन वा इच्छथ) अपना जीवन और धन चाहते हो तो। क्यों कि (कुविओ एसो लोयपि डहेज्ज—कुपित. एष: लोकमपि देहत्) ये ऋषि यदि कुपित्त हो जाते हैं तो *समस्त जगत को भी जला सकते हैं। अतः आप लोग अभिमान का परित्याग* कर इस ऋषि के चरणों की शरण अगीकार करो। उनके चरणो मे अपना मस्तक झुकाओ इसी मे तुम्हारी भलाई है।

अवहेट्ठियपिट्ठिस उत्तमगे, पसारिआ बाहू अकम्मचिट्ठे।
निब्भेरियच्छे रुहिर वमते, उड्ढंमुहे निग्गय जीह नेत्ते ॥२९॥[2]
ते पासिआ खंडिअ कट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसिं पसाएइ सभारियाओ हीलं च निंदं च खमाह भंते ॥३०॥

अन्वयार्थ—(अह सो माहणो—अथ स ब्राह्मण) इसके बाद रुद्रदेव पुरोहित ने (अवहेट्ठियपिट्ठिस उत्तमगे—अवाध: कृत पृष्ठसोत्तमाङ्गान्) अधोनमित है पीठ से लेकर मस्तक तक के अग जिन्हों के तथा (पसारिया बाहू—प्रसारितबाहून्) फैलाये हैं दोनों बाहू जिन्होंने (अकम्मचिट्ठे—अकर्मचेष्टान्) तथा

---

१. भद्रा इन तपस्वीराजके प्रभावको जानती थी। अभी तो यह दैवी प्रकोप है किन्तु जो अब भी क्षमा मागोगे और उनकी शरण मे नहीं जाओगे तो सभव है कि ये तपस्वी क्रुद्ध होकर सारे ससार जलाकर भस्म कर डालेंगे— ऐसी मेरे मन मे शका है सब को लक्ष्य कर उसने इसलिए ऐसा कहा है।

२. यह सब देव प्रकोप से हुआ।

[illegible] करते हैं [illegible] (विणीयविणयो [illegible]) तथा निर्दोष होनेसे [illegible] हैं जेव किसी के [illegible] (कसिणं [illegible] कसिणं [illegible]) [illegible] करने वाले [illegible] (जिदइन्दिओ [illegible]) [illegible] (जितइन्द्रियः) [illegible] [illegible] (विणीयविणया [illegible]) [illegible] (बिनयी विनय) जो [illegible] होकर (समाहियप्पा [illegible] समाहितात्मा) [illegible] होकर [illegible] (दंसिणना-इद—ऋषि प्रसादयति) मुनिराज को प्रसन्न करते लगे। और कहा [illegible] (भंते-भदन्त) हे भदन्त (हीला य निंदा य खमाह — हीलां च निंदां च क्षमस्व) [illegible] मेरे द्वारा हुई होना अवज्ञा एवं निंदा को आप क्षमा करें।

बालेहि मूढेहि अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भंते ।
महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ॥३१॥[1]

अन्वयार्थ—हे मुने ! (बालेहि-बालैः) बाल्यावस्थापन्न (मूढेहि - मूढैः) तथा कषाय मोहनीयके उदयसे ज्ञान शून्य हैं इसीलिए(अयाणएहिं -अजानद्भिः) हित और अहित के विवेकसे सर्वथा विकल इन मेरे छात्रों ने (जं हीलिया — यत् हीलितम्) जो आपकी होलना-अवज्ञा की है। सो(भंते --भदन्त)हे भदन्त! (तस्स खमाह—तस्य क्षमस्व)आप उसको क्षमा करें। क्योंकि(इसिणो महप्पसाया हवंति—ऋषय महाप्रसादा भवन्ति) ऋषिजन अपने शत्रुओं पर भी सदा कृपालु रहा करते हैं। (मुणी कोवपरा न हु हवन्ति—मुनय कोपपराः न खलु भवन्ति) मुनिजन अपराधी जनों पर भी क्रोध नहीं किया करते हैं।

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च, मणप्पओसो न मे अत्थि कोई ।
जक्खा हि वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥३२॥

---

१. कौशल राजने तपस्वी से त्यक्ता भद्रा कुमारीका विवाह सोमदेव नामक ब्राह्मण के साथ कर उसे ऋषि—पत्नि बनाया था। उस जमाने में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कर्म भेद थे ये किन्तु आज के समान जाति भेद न थे इसीलिए परस्पर में बेटी व्यवहार छूट के साथ होता था ऐसा अनुमान है।

२. अपना कार्य करके यक्ष चला गया। इसके बाद मुनि श्री सावधान हुये और यह विचित्र दृश्य देखकर विस्मित हुये। उन्होंने विनयवत उन ब्राह्मणों से कहा—

अन्वयार्थ—हे पुरोहित ! (पुव्वि च—पूर्वं च) जिस समय तुम्हारे शिष्यों ने मेरी तर्जना की और मुझे ताडित किया उस समय (इण्हि च—इदानीं च) और इस समय तथा (अणागय च—अनागते च) आगे भविष्यत् काल में भी (मे कोई मणप्पओसो न—मे कोऽपि मन प्रद्वेष नास्ति) मेरे हृदयमें तुम लोगों के प्रति किसी भी प्रकार का द्वेष नहीं है। तात्पर्य यह है कि आप लोगों के ऊपर न मुझे पहिले कोई द्वेष था और न अब है न आगे भी रहेगा। यदि तुम ऐसा कहो कि जब तुम इतने हमारे प्रति समभाव सम्पन्न हो तो फिर हमारे इन कुमारोंको क्यों ताडित किया है इसका उत्तर यह है कि (हि जक्खा वेयावडियं करेंति—यक्षा मम वैयावृत्य कुर्वन्ति) यक्ष लोग मेरी वैयावृत्य (सेवा) करते हैं (तम्हा हु एए कुमारा निहया-तस्मात् एते कुमारा निहता.) इस कारण उन यक्षोंने ही तुम्हारे इन कुमारों को ताडित किया है। मेरा इसमें किसी भी प्रकार का सहयोग तक भी नहीं है।

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे णवि कुप्पह भूइपण्णा ।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे ॥३३॥

अन्वयार्थ—हे मुनि ! (अत्थं अर्थम्) शास्त्रों के रहस्य को (च) और (धम्म च—धर्मं च) क्षान्त्यादिक रूप दश प्रकार के धर्म का (वियाणमाणा-विजानन्तः) जानते हुए (तुब्भे—यूयम्) आप लोग (णविकुप्पए—नापि कुप्यथ) कभी भी कुपित नहीं होते हैं, क्यों कि (भूइपण्णा—भूतिप्रज्ञा) आप षट्काय के जीवों की रक्षा करने वाली बुद्धिसे सम्पन्न हैं। इसलिए हे भदन्त ! (सव्वजणेण समागया अम्हे—सर्वजनेन समागताः वयम्) स्त्री पुत्र एवं शिष्यादिकों के साथ आए हुए हम (तुब्भ तु पाए सरणं उवेमो—युष्माकं तु पादौ शरणं उपेमः) आपके चरणों की शरणमें आये हैं।

अच्चेमु ते महाभाग ! न ते किंचि न अच्चिमो ।
भुंजाहि सालिमं कूरं नाणावंजणसंजुयं ॥३४॥

अन्वयार्थ—(महाभाग) हे महाभाग ! (ते अच्चेमु—ते त्वां अर्चयामः) हम लोग आपका सम्मान करते हैं (ते किंचि न अच्चिमोय—ते किंचिद् न अर्चयाम)

---

१. जैन दर्शन में सहनशीलता के हजारों ही ज्वलन्त दृष्टान्त भरे पड़े हैं। त्यागी पुरुष की क्षमा तो मेरु के समान अडिग है। उसमें क्रोध या कषमता आती ही नहीं। कुमारोंकी यह दशा देखकर ऋषिराजको बहुत ही दया आई। योगी पुरुष दूसरों को दुःख नहीं देते। यही नहीं किन्तु दूसरों को दुःखी होते भी देख नहीं सकते।

आपकी कोई भी वस्तु ऐसी नही है जो हमारे लिये सम्माननीय नही हो, अर्थात् आपकी चरणधूली तक भी हमारे पूजनीय हैं। हे भदन्त ! (नाणावजणसंजुअ सालिम क्कूर भुजाहि—नाना व्यजन-सयुत शालिमय कूर भुड्क्ष्व) नानाव्यजनो से युक्त इस शालिमय ओदन को जो हम आपको दे रहे हैं अनुग्रह करके लीजिये।

इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं तं भुंजसु अम्हमणुग्गहट्ठा।
बाढंति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स उ पारणए महप्पा ॥३५॥

अन्वयार्थ—(इम—इदम्) यह जो आपके समक्ष रखा हुआ (अन्नम्) अन्न है वह (मे पभूय अत्थि—मे प्रभूत अस्ति) हमारे यहाँ बहुत है। इसलिए आप (अम्हमणुग्गहट्ठा—अस्माकमनुग्रहार्थम्) हम पर दया करनेके लिए (तद) उस अन्नको (भुजसु—भुड्क्ष्व) भिक्षारूपमें ग्रहण करें। इस प्रकार उनकी भक्ति देखकर (महप्पा—महात्मा) उन महात्मा ने (मासस्स पारणए—मासस्य पारणके) एक मास के पारणाके दिन (बाढति—बाढमिति) 'ऐसा ही हो' ऐसा कह कर (भत्तपाण पडिच्छइ—भक्तपान प्रतीच्छति) रुद्रदेव पुरोहित द्वारा दिये गये भक्तपानको स्वीकार किया।

तहियं गंधोदयपुप्फवासं दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा।
पहयाओ दुंदुभीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्ठं ॥३६॥

अन्वयार्थ—मुनि के पारणा के समय मे (तहिय—तत्र) उस यज्ञशालामें (गंधोदयपुप्फवास—गधोदक पुष्पवर्षम्) गधोदक-अचित्त सुरभित जल की एव अचित्त पुष्पोंकी वृष्टि देवताओंने की तथा (तहिं—तत्र) उसी यज्ञशाला मे (वसुहाराय वुट्ठा—वसुधारा च वृष्टा) उन्हीं देवताओंने धारारूपसे सौनैयोंकी वृष्टी की। तथा उन्हीं देवताओंने (दुंदुभीओ पहयाओ—दुन्दुभय: प्रहता:) दुन्दुभी भी बजायी एव (आगासे—आकाशे) आकाशमे उन्हीं देवताओंने (अहो दाणं च घुट्ठं—अहोदान च घुष्टम्) 'अहो दान अहो दान ऐसी घोषणा की।

सक्खं खु दीसई तवो विसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएसमाहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥३७॥

अन्वयार्थ—अरे ! (सक्ख—साक्षात्) प्रत्यक्ष (तवोविसेसो—तपोविशेष: तु) यह विशेष-ही तपस्या की विशिष्टता ही (दीसइ—दृश्यते) दीखलाई देती

देवो द्वारा बरसाए गये पुष्प तथा जलधारा निर्जीव होती है।

लोग इन कर्मोंका परित्याग नहीं करते हो। प्रत्युत इन्हीं कर्मोंमें ही रत होकर (पाव पकरेह—पापं प्रकुरुथ) पापोंका उपार्जन किया करते हो।

कहं चरे भिक्खु ! वयं जयामो ? पावाइं कम्माइं पणोल्लयामो।
अक्खाहि णो संजय ! जक्खपूइया ! कहं सुजट्ठं कुसला वयंति ॥४०॥

अन्वयार्थ - (भिक्खु—भिक्षो) हे भगवन् ! (कह चरे—कथं चराम) यह तो कहिये कि हम लोग यज्ञके निमित्त किस तरह प्रवृत्त हों (वयं जयामो—वयं यजाम) कैसे यज्ञ करें, (कहं पावाइं कम्माइं पणोल्लयामो—कथं पापानि कर्माणि प्रणोदयाम) कैसे पापकर्मोंको दूर करें। (जक्खपूइया संजय—यक्षपूजित संयत) यक्षोंसे पूजित और संयत सावद्यकर्मनिवर्तक हे मुनिराज ! (कुसला—कुशला) यज्ञके ज्ञाता पुरुष (सुजट्ठं—स्विष्टम्) इस यज्ञको शोभन (कहं वयंति—कथं वदन्ति) कैसे कहते हैं यह सब (णो अक्खाहि—नःमाख्याहि) आप हमें कहिये।

छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माणमायं, एयं परिण्णाय चरंति दंता ॥४१॥

अन्वयार्थ—हे ब्राह्मणों ! मैं तुम्हारे "कहचरे" इस प्रश्न का पहले उत्तर देता हूं, वह इस प्रकार है—जो मनुष्य (दंता—दान्ता.) जितेन्द्रिय हैं वे (छज्जीवकाए—षड्जीवकायान्) पृथिवी आदिक षट्कायके जीवोंकी (असमारभंता—असमारभमाणा) रक्षा करते हुए-उनकी विराधना न करते हुए (मोस अदत्त च असेवमाणा—मृषा अदत्त च असेवमानः) मृषावाद अदत्तादान का नहीं सेवन करते हुए (परिग्गह इत्थिओ माणमाय—परिग्रह स्त्रिय मान मायाम्) परिग्रह, स्त्री, मान एव माया (एय—एतत्) इनका सब ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से त्याग करे (चरंति) यज्ञ में प्रवृत्ति करते हैं। अर्थात् जिस यज्ञ मे हिंसादिक की अल्प भी सम्भावना नही है उसी यज्ञमे दान्त पुरुष प्रवृत्ति किया करते हैं।

सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणा।
वोसट्ठकाया सुइचत्तदेहा, महाजयं जयई जन्नसिट्ठं ॥४२॥

अन्वयार्थ—(पचहिं सवरेहिं—पचभिः सवरैः) प्राणातिपात विरमण आदि पाच प्रकारके सवरोंसे (सुसवुडा—सुसवृता) जिन्होंने कर्मोंके आगमनरूप द्वार को बन्द कर दिया है तथा (इह) इस सांसारिक (जीवियं अणवकंखमाणा—जीवित मनवकाक्षन्त) असंयम जीवनको जो नही चाहते हैं इसीलिए (वोसट्ठकाया—व्युत्सृष्टकायाः) जिनका शारीरिक ममत्त्व परीषह एवं उपसर्गोंके आने

पर भी जागृत नहीं हो सकता है—परीषहादिक के आनेपर भी जो शरीर के विनाश की चिन्ता से रहित रहते हैं, और इसीलिये जो (सुदपत्तदेहा—शुचि त्यक्तदेहाः) शुचि अतिचार रहित व्रतोंको पालन करनेमें विशेष उत्साहयुक्त रहा करते हैं, तथा निष्प्रतिकर्म होनेसे देहको जिन्होंने छोड़ा हुआ सा कर रखा है ऐसे मुनिराज (महाजय जन्नसिट्ठं—महाजयं यज्ञश्रेष्ठम्) कर्मशत्रुओंके महान् पराजयकारक यज्ञ श्रेष्ठ को-सब यज्ञों की अपेक्षा महत्तम यज्ञ को (जयइ—यजन्ति) किया करते हैं। ऐसा यज्ञ ही पापकर्मोंरूप रजमैल दूर करनेमें समर्थ है। तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् ऐसे ही यज्ञको सुयज्ञ कहते हैं। इसलिए आप लोगोंको-भी ऐसा यज्ञ करना चाहिए। "सुसंवुडा" इत्यादि पदों द्वारा 'कह चय जयामो' इस प्रश्नका समाधान तथा 'महाजयं' इस पद द्वारा "पावाइं कम्माइं पणोल्लयामो" इस प्रश्न का समाधान किया गया है।

के ते जोई ? किं व ते जोइठाणं ?

का ते सुया ? किं व ते कारिसंगं

एहा य ते कयरा संति भिक्खु ?

कयरेण होमेण हुणासि जोइं ॥४३॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू—भिक्षो) हे मुने! आपने जिस यज्ञ को करने के लिए कहा है उस यज्ञमें (ते) आपके मतमें (जोई के—ज्योतिः किम्) कौनसी अग्नि है (व) तथा (ते) आपके यहां (जोइठाणं के—ज्योतिः स्थानं किं) अग्निकुण्ड क्या है (ते) आपने (सुया का—स्रुचः का) अग्नि में हव्यको प्रक्षेपण करनेके लिये स्रुवा किसको बनाया है। (कारिसंगं किं—किं करीषांगम्) किस आपने अग्नि को प्रज्वलित करनेके लिये [illegible] के स्थानापन्न माना है (एहा य ते कयरा—एधाश्च ते कतरे) किनको आपने इसमें जलानेके लिये इन्धन स्वरूप माना है (संति का—शांतिः का) तथा [illegible] पर क्या है और (कयरेण होमेण जोइं हुणासि—कतरेण होमेन ज्योतिः जुहोषि) किस हवनीय द्रव्य से आपने [illegible] करते हो। यह सब ब्राह्मणोंके [illegible] इसलिये पूछा कि [illegible] [illegible] है और [illegible] तो आप जिस यज्ञ को करनेका [illegible] कर रहे हो वह भी [illegible] हो सकता है ? [illegible] ही [illegible] है।

एतत् स्नानम्] इसी पूर्वोक्त स्नानको (इसिणं पसत्थं—ऋषीणां प्रशस्तम्) ऋषियोंको मान्य (महासिणाणं महास्नानम्) महास्नानस्वरूप (दिट्ठं—दृष्टम्—दिष्टम्] देखा है और कहा है (जहिं—यस्मिन्) जिसमें स्नान से (सिणाया-स्नान करने पर स्नाता) (महारिसी--महर्षय) महर्षिजन (विमला विसुद्धा—विमला, विशुद्धाः) विमल एवं विशुद्ध होकर (उत्तमं ठाणपत्ते—उत्तम स्थान प्राप्ताः) मुक्तिरूप उत्तम स्थानको प्राप्त हो जाते हैं। (त्ति बेमि—इति ब्रवीमि) ऐसा मैं महावीर भगवान के वचनानुसार कहता हूं, अर्थात् ऐसा ही वीरप्रभू ने कहा है। उसीके अनुसार मैंने कहा है। इस प्रकार हरिकेशबल मुनि ब्राह्मणों को प्रतिबोधित करके अपने स्थान पर चले गये और वहां विशिष्ट तपस्या की आराधना से कर्मों का क्षय कर वे मुक्तिको प्राप्त हुए तथा ब्राह्मणों ने भी वास्तविक ज्ञान प्राप्तकर आत्मकल्याण का मार्ग ग्रहण कर लिया।

हरिकेशबल नामक बारहवां अध्ययन समाप्त हुआ।

और उसने नमुचि को अपने ही घर में गुप्त रूप से रखलिया, नमुचि चित्र और सम्भूत को शिक्षा देने लगा।

विकृत-हृदय नमुचि भूतदत्त की पत्नी पर आसक्त हो गया, चाण्डाल को इसका आभास हो गया और वह उसका वध करने के अवसर की ताक में रहने लगा। चित्र और सम्भूत को पिता का यह आशय ज्ञात हो गया और उन्होंने पिता की आंख बचाकर नमुचि को वहां से भगा दिया।

भागा हुआ नमुचि हस्तिनापुर जा पहुँचा और किसी प्रकार से वहां के राजा सनत्कुमार का मन्त्रित्व पाने में सफल हो गया।

उधर चित्र और सम्भूत नृत्य वाद्य और गायन कला के अद्वितीय कलाकार बन गए। वाराणसी के एक वसन्तोत्सव में उनके गान पर जनता इतनी मुग्ध हुई कि स्पृश्यास्पृश्य के विचार को भूलकर उनके चारो ओर मण्डराने लगी। उच्च जातियों के अन्य कलाकारों से द्वेषवश रहा न गया और उन्होंने राजा शंख के कान भरकर उन्हें देश-निकाला दिलवा दिया।

वाराणसी में अगले वर्ष पुन. वसन्तोत्सव की जब धूम मच रही थी, तब अपने उन्मत्त प्रेम के वशीभूत होकर चित्र और सम्भूत छद्म वेश में आकर वसन्तोत्सव में गाने लगे। पहले तो जनता उनके गन्धर्व-कण्ठ पर लट्टू हो गई किन्तु उनके मुख पर पड़े सफेद कपड़े को हटाकर जब कुछ दर्शनार्थी लोगों ने उन्हें पहचाना तो उन्होंने उन्हें मारपीट कर वहां से भगा दिया।

तिरस्कार जनित वेदना से पीड़ित दोनों भाइयों ने एक पर्वत से गिरकर आत्महत्या करने का निश्चय किया और वे एक पर्वत-शिखर की ओर चल दिए। मार्ग में उन्होंने ध्यान-निरत एक जैन-मुनि के दर्शन किए और उनके तेज से प्रभावित होकर वन्दना के अनन्तर हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गए।

करुणा-सागर मुनिराज ने उन्हें धर्मध्यान का उपदेश दिया और उनके आत्महत्या के निश्चय को उन्होंने बदल दिया। चित्र और सम्भूत मुनिराज से इतने प्रभावित हुए कि वे संसार की असारता को भली प्रकार समझकर उनसे दीक्षा ग्रहण कर मुनि-मार्ग चलते हुए पूर्ण तपस्वी मुनीश्वर बन गए। वे दोनों मुनीश्वर विहार करते हुए हस्तिनापुर में आ पहुंचे। एक दिन सम्भूत मुनि गोचरी के लिये नगर में गए, वहां नमुचि ने जो इस समय वहां मन्त्री था उनको देख लिया। इस आशंका से कि कहीं वे मुनि सम्भूत मेरे पूर्व रहस्य को प्रकट न करदें, उसने अपने सेवकों द्वारा उनकी खूब पिटाई करवाई।

। दपिटाकर जब सम्भूत मुनि चित्र मुनि के पास पहुचे तो वहाँ आते ही उनका कुष्ण क्रोध जागृत हो उठा और उन्होंने तप द्वारा प्राप्त तेजोलेश्या नामक शक्ति के द्वारा सारे हस्तिनापुर को सन्तप्त कर दिया।

सन्तप्त प्रजा और राजा सनत्कुमार उद्यान मे मुनिराजों के पास आए, आकर क्षमा याचना की और नमुचि को बधवाकर मुनिराजों के समक्ष उपस्थित किया।

मुनिराज चित्र ने सम्भूत मुनि को शान्त किया, प्रजा को सान्त्वना दी, राजा को धर्मध्यान का आदेश दिया और दया पूर्वक नमुचि को बन्धन-मुक्त किया। इसी अवसर पर महारानी सुनन्दा ने भाव-विभोर होकर मुनिराज सम्भूति के चरणो पर शिर रखकर वन्दना की। महारानी की कोमल-कान्त कुंचित केश राशि के स्पर्श ने मुनि सम्भूत के हृदय को विचलित कर दिया और वे मन ही मन कुछ सोचने लगे।

मुनिराज चित्र सम्भूत मुनि के हार्दिक विकार को तुरन्त समझ गए और उन्होंने उनको पर्याप्त समझाया, किन्तु काम-विकार के प्रबल आवेश में सम्भूत एक ही कामना कर रहे थे—'भावी जन्म मे इसी प्रकार के कोमल केशो वाली कामनियो का सुख-स्पर्श करनेवाला चक्रवर्ती बनू।'

मुनिराज चित्र और सम्भूत मुनि मरकर सौधर्म स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में अनन्त वर्षों तक रहे और पुन. मुनिराज चित्र के जीव ने पुरिमताल नामक नगर के धनसार श्रेष्ठी के पुत्र के रूप मे जन्म लिया और उनका नाम गुणसार रखा गया, जो पूर्व जन्म के पावन सस्कारों के कारण पुन: प्रव्रजित होकर मुनिराज के रूप में तप करने लगा।

मुनि सम्भूत के जीव ने काम्पिल्य नगर के राजा ब्रह्म की महारानी चुलुनी के गर्भ से जन्म लिया और पूर्व तपस्या के फल से पिता की मृत्यु के अनन्तर अनेक विवाह करके चक्रवर्ती सम्राट् बना।

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त को एक बार नाटक देखते हुए एक दासी ने अद्‌भुत सुगन्धवाला एक पुष्पों का गुलदस्ता भेंट किया जिसे सूंघते ही वे सोचने लगे "ऐसा नाटक मैने पहले भी देखा है, ऐसे फूल भी सूंघे हैं—पर कहां ? कब ?? और सोचते ही सोचते मूर्छित हो गए। सचेत होने पर पूर्वतप के प्रभाव से उन्हें अपने पूर्वजन्मों का स्मरण भी हो आया और वे यह भी जान गए कि चित्र इसी पृथ्वी पर पुनः मुनिराज के रूप में विद्यमान हैं। चक्रवर्ती ब्रह्मद

तेरहवां अध्ययन

जाइपराजियो खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीइ बंभदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ ॥१॥[1]

अन्वयार्थ - (जाइपराजियो—जातिपराजित) पूर्व जन्म में चाण्डाल जाति में उत्पन्न होने के कारण वाराणसी के लोगों द्वारा तिरस्कृत सम्भूत मुनि ने (हत्थिपुरम्मि नियाण कासि—हस्तिनापुरे निदानम् अकार्षीत्) हस्तिनापुर में वंदना के समय चक्रवर्ती की स्त्री के केशों के स्पर्शजन्य सुख को अनुभव करने के कारण "मैं आगामीभव में चक्रवर्ती होऊं" इस प्रकार का निदान बन्ध किया था। पश्चात् मरकर वे सम्भूत मुनि पद्मगुल्म विमान में देवकी पर्याय से उत्पन्न हुए, सो उस (पउम गुम्माओ-पद्मगुल्म विमान से पुन. पृथ्वी पर जन्म ले कर वे (चुलणीए बंभदत्तो उववन्नो—चुलन्यां ब्रह्मदत्त उत्पन्नः) ब्रह्मराज की पत्नी चुलनी रानी की कुक्षि से 'ब्रह्मदत्त' इस नाम से पुत्र रूप में अवतरित हुए।

कंपिल्ले संभूओ चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥२॥[2]

अन्वयार्थ—(कंपिल्ले—काम्पिल्ये) काम्पिल्य नाम के नगर मे (संभूओ—सम्भूत) मुनि का जीव ब्रह्मराज और चुलनी के सबन्ध से ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध पुत्र के रूप उत्पन्न हुआ तथा (चित्तो—चित्र.) चित्र का जीव प्रथम देवलोक नलिनी गुल्म के विमान से चव कर (पुरिमतालम्मि—पुरिमतालनगरे) पुरिमताल नामक नगर मे (विसाले सेट्ठि कुलम्मि—विशाले श्रेष्ठीकुले) बहुधन एव परिवार सपन्न एव विशाल धनसार नामक श्रेष्ठि के कुल में गुणसार नामक पुत्र

---

1. पहले स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में दोनों भाई साथ साथ थे। इसके बाद ही सभूति जुदा हो गया। इसका कारण यह था कि उसने निदाण किया था। निदाण करनेसे यद्यपि उसे महाऋद्धि मिली तो सही, परन्तु समृद्धि के क्षणिक सुख कहां ? और आत्मदर्शन का सुख कहां ? इन दोनोंकी समानता कभी हो ही नहीं सकती।

2. यद्यपि चित्त का जन्म भी अत्यन्त धनाढ्य घर मे हुआ था, किन्तु अनासक्त होनेसे वह काम भागोंसे शीघ्र ही विरक्त हो गया।

आपसमे अतुल प्रेम रखनेवाले एवं (अन्नमन्नहिएसिए —अन्योन्यहितैषिणौ) एक दूसरेके सदा हितेच्छु (भायरा आसिमो—भातरौ आस्व) भाई भाई थे।

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे।
हंसा मयंगतीरे य, सोवागा कासिभूमीय ॥६॥
देवा य देवलोगम्मि, आसी अम्हे महिड्ढिया।
इमा णो छट्ठिया जाइ, अन्नमन्नेण जा विणा ॥७॥[1]

अन्वयार्थ—हम दोनो पहले (दसण्णे—दशार्णे) दशार्णदेशमे (दासा—दासौ) शाण्डिल्य ब्राह्मण की यशोमती दासी के पुत्र हुए वहां से मरकर (कालिंजरे—कालिंजरे) कालिंजर पर्वतपर (मिया—मृगौ) मृग हुए। इस जन्म मे निकलकर (मयगतीरे हसा—मृतगगातीरे हसौ) हम मृत-गगा नदी के किनारे हसो के रूप मे उत्पन्न हुए, पुन. (कासिभूमीय—काशिभूमौ) काशी नगरी मे (सोवागा—श्वपाकौ) चाडाल (आसी-आस्व)हुए। उस जन्मको छोडकर फिर (देवलोगम्मि महिड्ढिया देवाय आसी—देवलोके महद्धिकौ देवौ च आस्व) सौधर्म स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान मे महद्धिक देव हुए फिर वहां से पृथ्वी पर आकर (णो—नौ) अपनी (एसा—एषा) यह (छट्ठिया जाइ—षष्ठिका जाति:)छटवा जन्म है। इस जन्म मे हम दोनो (अन्नमण्णेण जा विना—अन्योन्येन बिना) एक दूसरे से अलग हो गए हैं।

कम्मा नियाणप्पगडा, तुमे राय ! विचिंतिया।
तेसिं फलविवागेण विप्पयोगमुवागया ॥८॥[2]

---

१. ऐसा कहकर सभूति ने छटे भवमे दोनोने जुदे जुदे स्थानोमें जन्म क्यों लिये इसका कारण पूछा।

२. तपश्चर्या से पूर्व कर्मों का क्षय होता है। कर्म-क्षय होनेसे आत्मा भार-मुक्त होती है और उसका विकास होता है। पुण्य-कर्म से सुन्दर सम्पत्ति मिलती है, किन्तु उससे आत्माके पापी बनने की समावना है।

इसीलिए महापुरुष पुण्य की कभी भी इच्छा नहीं करते। केवल पापकर्म का क्षयही चाहते हैं। क्योंकि पुण्य सोनेकी साकल के समान है, परन्तु साकल चाहे वह किसी भी धातुकी क्यों न हो बधन तो है ही।

जिसको बंधन रहित होना हो उसको सोनेकी साकल को भी छोड़ देने की कोशिश करनी चाहिये और अनासक्त भावसे कर्मोंको भोग लेना चाहिये।

अन्वयार्थ—(राय—राजन्) हे राजन्। सभूत के भवमें (तुमे—त्वया) तुमने (नियाणप्पगडा—निदानप्रकृतानि) सांसारिक पदार्थोंको भोगनेके अभिलाषारूप निदान सम्बन्धसे सपादित (कम्मा विचिन्तिया—कर्माणि विचिन्तितानि) निदान रूप कर्मोको उपार्जित किया। अतः (तेसि फलविवागेण—तेषां फलविपाकेन। उन कर्मोंके फलरूप विपाकसे (विप्पयोगमुवागया—विप्रयोगम् उपागतौ) हम तुम दोनो इस जन्म मे वियुक्त हुए हैं।

सच्चसोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा।
ते अज्ज परिभुंजामो, किं नु चित्ते वि से तहा ॥९॥

अन्वयार्थ – हे मुने! (मए—मया) मैंने (पुरा) सभूतकी मुनि के रूप मे जो (सच्च सोयप्पगडा कम्मा कडा—कडासत्यशौचप्रकृतानि कर्माणि कृतानि) असत्यभाषण का त्यागरूप तथा मायाचारी के वर्जन रूपसे प्रसिद्ध शुभ कर्म किये हैं (तानि कम्मा अज्ज परिभुजामो—तानि कर्माणि अद्य परिभुंजे) उन कर्मोके फलको मैं इस चक्रवर्तीके पर्यायरूपमें भोग रहा हूँ। सो (चित्ते वि—चित्र अपि) चित्रके जीवरूप आप भी (से—तानि) उन चक्रवर्तीके सुखोको (तथा) मेरी तरह (किं नु परिभुञ्जे—किं नु परिभुक्ते) क्यो नही भोगते हैं।

सव्वं सुचिण्ण सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहिं, आया ममं पुण्णफलो ववेए ॥१०॥

अन्वयार्थ—राजन् (नराण—नराणा) मनुष्योका (सव्व सुचिण्ण सफल भवइ—सर्व सुचीर्णं सफल भवति) समस्त सुन्दर रीति से आचरित तप आदि कर्म सफल होते हैं (कडाण कम्माण मोक्खो न अत्थि—कृतेभ्य कर्मभ्य मोक्ष नास्ति) आचरित कर्मोसे मनुष्योका छुटकारा नही होता है, अर्थात् कृतकर्मो का फल उनको अवश्य मिलता है वे विफल नहीं होते हैं। लौकिक जनोका भी इस विषयमें ऐसा ही मन्तव्य है—

"कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥"

कृतकर्म कभी भी कोटीशतकल्पकालोंमें भी नष्ट नहीं होता है। चाहे वह शुभ हो चाहे अशुभ, उसका फल तो अवश्य ही भोगना पडता है, इसलिये हे चक्रवर्तिन् (मम आया—मम आत्मा) मेरा भी आत्मा (उत्तमेहिं अत्थेहिं कामेहि—उत्तमं. अर्थं कामैश्च) उत्तम द्रव्य कामरूप तथा शब्दादिकोंको भोगने से (पुण्णफलोववेए—पुण्यफलोपेतः) पुण्यफलसे युक्त है।

जाणासि संभूय ! महाणुभागं, महिड्ढीयं पुण्णफलोववेयं ।
चित्तंपि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढि जुई तस्स वि य प्पभूया ॥११॥[1]

अन्वयार्थ—जन्मान्तर के नामसे सबोधित करते हुए मुनिराज कहते हैं कि (संभूय—संभूत) हे संभूत । जैसे तुम अपनेको (महाणुभाग—महानुभागम्) अतिशय समृद्धिसे सपन्न एव (महिड्ढिय—महर्द्धिकम्) चक्रवर्ती पदकी प्राप्तिसे अतिशय विभूति विशिष्ट मानकर (पुण्णफलोववेय जाणासि—पुण्यफलोपपेतम् जानासि) सुकृतके फलका भोक्ता जान रहे हो । (तहेव—तथैव) उसी तरह (राय—राजन्) हे राजन् ! चित्त पिजाणाहि—चित्रमपिजानिहि) मुझ चित्र के जीवको भी इसी तरह समझो (तस्स वि इड्ढीजुई य प्पभूया—तस्यापि ऋद्धि द्युतिः च प्रभूता) इस चित्र के जीवको भी ऋद्धि—दासी, दास, हस्ति, अश्व, मणि, सुवर्ण धनधान्य आदि माद्-एव तेजप्रतापरूप द्युति अत्यधिक थी ।

महत्थरूवा वयणप्पभूया गाहाणुगीया नरसंघमज्झे ।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहज्जयंते समणोम्हिजाओ ॥१२॥[2]

अन्वयार्थ –(महत्थरूवा वयणप्पभूया—महार्थरूपा वचनाल्पभूता) अनन्त द्रव्य रूपात्मक वस्तुको विषय करने वाली होने से विस्तृत अर्थवाली तथा स्वल्प अक्षर वाली ऐसी गाथा—सूत्रपद्धति (नरसंघमज्झे—नरसंघमध्ये) स्थविरोंके विपुलजनसमुदायके बीचमें (अणुगीया – अनुगीता) गाई गई (जं सोच्चा—यां श्रुत्वा) जिस गाथा को सुनकर (भिक्खुणो—भिक्षव.) भिक्षुजन (सीलगुणोववेया—शीलगुणोपेता.) चारित्र एवं ज्ञानगुणसे युक्त बनकर (इह) इस जैनशासनमें (जयंते-यतन्ते) मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनते हैं सो मैं भी "तामेव गाथां श्रुत्वा" (समणोम्हि जाओ—श्रमणो जातोऽस्मि) उसी गाथा को सुनकर संसार शरीर एवं भोगोंसे विरक्त बनकर मुनि हो गया हूं । दरिद्री होने से मुनि नहीं बना हुआ हूं ।

---

१. उपरोक्त दो श्लोक चित्त मुनिने कहे थे और आज वह मुनि रूपमें था । यद्यपि इन्द्रिय निग्रह नियमादि कठिन तपश्चर्या तथा आभूषण आदि शरीर विभूषाके त्यागसे आज उसकी देह कान्ति बाहरसे खाली दिखती थी फिर भी उसका आत्मकोषस् तो भरपूर ही था ।

२. समृद्धि पाकर भी सन्तोष न था किन्तु यह गाथा सुनकर तो सांसारिक बंधन तत्काल दूर हो गये और त्याग ग्रहण किया ।

उच्चोदए महु कक्के य बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्त धणप्पभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥१३॥

अन्वयार्थ—(उच्चोदए महु कक्के य बंभे—उच्चोदय. मधु कर्क. ब्रह्मा) उच्चोदय, मधु, कर्क मध्य एव ब्रह्मा ये पांच प्रधान प्रसाद जो मेरे लिये देव कारीगरोंने बनाये हैं सो इनको तथा दूसरे(रम्मा आवसहा—रम्याः आवसथा) और भी जो सुन्दर सुन्दर भवन हैं उनको एवं (धणप्प भूयं—धनप्रभूत) प्रचुर मणि माणिक्य आदि रूप धनसे ठसाठस भरा हुआ ऐसा(इम गिहं—इदम् गृहम्) यह जो मेरा भवन है उसको कि जो (पचालगुणोववेय—पाचालगुणोपपेतम्) पचालदेशके विशिष्ट सौंदर्यादि गुणोंसे सम्पन्न है (चित्त-चित्र) हे चित्र ! आप (पसाहि—प्रसाधि) इनका उपभोग करो ।

णट्टेहि गीएहि य वाइएहिं, नारीजणाइं परिवारयंतो ।
भुंजाहि भोगाइं इमाइं भिक्खू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥१४

अन्वयार्थ—(भिक्खू—भिक्षो) हे भिक्षो ! (णट्टेहि गीएहि य वाइएहि—नाट्यै. गीतैश्च वादित्रै)बत्तीस प्रकारके नाटकोंसे विविधप्रकारके गीतोंसे तथा अनेक प्रकारके वादित्रोंसे(नारीजणाइ परिवारयतो—नारीजनान् परिवारयन्) नारीजनोंके साथ बैठकर आप(इमाइं भोगाइ भुंजाहि—इमान् भोगान् भुङ्क्ष्व) इन शब्दादिक विषय भोगोंको आनन्द के साथ भोगो, क्योंकि (मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्ख—मह्य रोचते प्रव्रज्या दुःख)मुझे आपकी दीक्षा दुःखमूल ही प्रतीत होती है ।

तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं नराहिवं कामगुणेसु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयण मुदाहरित्था ॥१५॥

अन्वयार्थ—(पुव्वनेहेण—पूर्वस्नेहेन)पूर्वजन्मके स्नेहसे(कयाणुरागं—कृतानुरागम्)अनुरागके आधीन बने हुए तथा(कामगुणेसु गिद्धं—कामगुणेषु गृद्धम्) सुन्दर शब्दादिक विषयों मे लोलुप हुए ऐसे (त नराहिव—तं नराधिपम्) उस चक्रवर्ती ब्रह्मदत्तको (धम्मस्सिओ—धर्माश्रितः) धर्ममार्गपर आरूढ हुए तथा (तस्स हियाणुपेही—तस्यहितानुप्रेक्षी)चक्रवर्तीके हितकी अभिलाषावाले(चित्तो-चित्र) चित्र नामके मुनिराजने (इमं वयण मुदाहरित्था—इद वचनमुदाहरत्) इस प्रकार वचन कहे—

सव्वं विलवियं गीयं,[1] सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥

अन्वयार्थ—हे चक्रवर्ती ! सुनो (सव्व—सर्वम्) समस्त (गीय—गीत) गीत मेरी दृष्टिमें (विलवीय—विलपितम्) विलाप तुल्य हैं तथा (सव्व नट्ट—सर्व नाट्य) (विडम्बिय—विडम्बितम्) सब नाटक विडबना प्राय है और (सव्वे आभरणा भारा—सर्वाणि आभरणानि भारा) समस्त आभरण भारतुल्य हैं । अधिक क्या कहूं (सव्वे कामा दुहावहा—सर्वे कामा दुखावहा) समस्त इन्द्रियोंके विषय तो दुखदायी ही प्रतीत होते हैं ।

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं ।
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥१७॥

अन्वयार्थ—(राय-राजन्) हे चक्रवर्तिन् । (बालाभिरामेसु—बालाभिरामेषु) अज्ञानीजनोंको ही आनदका आभास करानेवाले आत्मज्ञान-विहीन प्राणियोंको ही सुहावने लगनेवाले तथा (दुहावहेसु—दु:खावहेषु) परिणाम में दुख देनेवाले (कामगुणेसु—कामगुणेषु) मनोज्ञ शब्दादिक विषयो में लीन रहनेवाले को (न तं सुहं—न तम् सुखम्) वह सुख नहीं है । (जं—यत्) जो सुख (सीलगुणे रयाण शीलगुणेरतानाम्) चारित्रमे निरत तथा (विरत्त-कामाण—विरक्त-कामानाम्) कामगुणोंके परित्यागी और (तवोधणाण—तपोधनानाम्) तप ही है धन जिनके ऐसे (भिक्खुण—भिक्षूणाम्) भिक्षुओंको प्राप्त होता है । कहा भी है—

यच्च कामसुखं लोके, यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते, नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

जो सुख काम-जनित होता है एवं जो देवोंका महान् सुख माना जाता है, वे दोनों ही सुख तृष्णाक्षयसे जनित सुखके सामने सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं ।

---

१. यह सारा संसार ही जहां एक महान् नाटक है वहाँ दूसरे नाटक क्या देखें ? जिस जगह कुछ समय पहले संगीत तथा नृत्य हो रहे थे वही कुछ ही समय बाद हाहाकार भरा करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है ऐसी परिस्थिति में संगीत किसे भावे ? आभूषण केवल विलासवृत्तिको पुष्ट करनेवाले खिलौने हैं । उनमें समझदारका मोह कैसा ? भोग तो आधि, व्याधि, एवं उपाधि इन तीनों तापों के कारण हैं (तो ऐसे) दु:खों के मूल में सुख कहाँ से हो सकता है ।

नरिंद ! जाई अहमा नराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं ।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेसा, वसीय सोवागणिवेसणेसु ॥१८॥

अन्वयार्थ—(नरिंद—नरेन्द्र) हे चक्रवर्तिन् ! (नराण अहमा जाई सोवाग जाई—नराणां मध्ये अधमा जातिः श्वपाकजातिः) संसारमें मनुष्य जातिमें यदि कोई अधम-निकृष्ट जाति है तो वह चांडाल जाति है। (जहिं वयं गयाण दुहओ—यस्मिन् गतयोः किं अभूत् इति स्मरसि—उसमें रहनेवाले हम लोगों की क्या दशा थी यह बात आपको ज्ञात नहीं है। वहां हम दोनों (सव्वजणस्स वेसा—सर्वजनस्य द्वेष्यौ) सर्वजनोंके लिये उस समय द्वेषी बने रहते थे और इसी स्थितिमें (सोवागणि वेसणेसु वसीय—श्वपाक निवेशनेषु अवसाव) चांडाल के घरमें रहते थे।

तीसे य जाईय उ पावियाए, वुच्छामु सोवागणिवेसणेसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगुंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं ॥

अन्वयार्थ (य च) पुन (पावियाए तीसे जाई य सव्वस्स लोगस्स दुगुंछणिज्जा सोवागणिवेसणेसु वुच्छामु—पापिकायाम् तस्याम् जात्याम् सर्वस्य लोकस्य जुगुप्सनीयौ आवाम् श्वपाक निवेशनेषु उषितौ) निन्दनीय उसी चांडाल जाति में सब लोगों द्वारा घृणित एवं अस्पृश्य समझे जाते हुए हम लोग घरमें रहे थे (तु) परन्तु (इह—इह) अब इस जन्म में (पुरेकडाइं कम्माइं—पुराकृतानि कर्माणि उदितानि) पूर्वजन्मों में उपार्जित विशिष्ट जात्यादिक के कारणभूत कर्म-शुभ-पुण्यादि हम लोगोंके उदयमें आए हुए हैं।

सो दाणिसिं राय ! महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं, आयाणहेऊ अभिनिक्खमाहि ॥२०॥

---

१७. चाण्डाल जातिका अर्थ यहां चाण्डाल कर्म करनेवाले से है। जाति से तो कोई ऊंच-नीच होता ही नहीं। कर्म (कृति) से ऊंचा नीचापन माना है। यदि उत्तम ब्राह्मण पाकर भी पिछले भवमें की हुई गफलत इस समय पुनः दुहराई तो आत्मविकास के बदले पतित हो जाओगे—इसीलिए पूर्व भवकी बात याद दिलाई है।

इसी चाण्डाल जन्ममें (गंगा पर) जैन साधु का समागम मिलनेसे त्यागी होकर हमने जो शुद्ध कर्म किये थे उन्हीं का यह सुन्दर फल हमको मिला है उस भव में तो ब्राह्मणों ने चाण्डालों के समानता का अधिकार छीन लिया था।

अन्वयार्थ —(राय—राजन्) हे चक्रवर्ती ! जो आप उस समय सभूत नाम के मुनि थे वही आप (दाणिसि—इदानीम्) इस समय (महाणुभागो महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ—महानुभावः महर्द्धिक. पुण्यफलोपपेत) महाप्रभावशाली षट्खड के अधिपति चक्रवर्ती हुए हो, यही पूर्व सुकृत का फल है। जिसको आप इस समय भोग रहे हो। अब आपका कर्तव्य है कि आप (असासयाइं—अशाश्वतान् क्षणभगुर (भोगाइं—भोगान्) इन मनोज्ञ शब्दादिक भोगो का (चइत्तु—त्यक्त्वा) परित्याग कर (आयाणहेऊ—आदानहेतोः) चारित्र धर्म को पालन करने के निमित्त (अभिनिक्खमाहि—अभिनिष्काम) दीक्षा धारण करो।

इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो ।
सो सोयई मच्चू मुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परम्मिलोए ॥२१॥

अन्वयार्थ—(राय—राजन्) हे राजन् ! (असासयम्मि इह जीविए—अशाश्वते इह जीविते) क्षणभंगुर इस जीवन मे जो मनुष्य (धणियं—अधिकम्) निरन्तर (पुण्णाइं अकुव्वमाणो—पुण्यानि अकुर्वाणः) पुण्य कर्मोको नही करता है (सो—सः) वह मनुष्य (मुच्चुमुहोवणीए—मृत्युमुखोपनीतः) मृत्यु के मुख मे जब पहुँचता है तब (अम्मिलोए सोयइ—अस्मिन् लोके शोचति) इस लोकमें तो चिंता एव शोक करता है परन्तु (परम्मि लोए—परस्मिन् लोके अपि) जब परलोक में भी जाता है तब भी (धम्म अकाऊण—धर्म अकृत्वा) मैंने धर्म नहीं किया है ऐसा विचार करके रात दिन वहाँ दुःखी ही होता रहता है।

जहे ह सीहो व मियं गहाय, मच्चू णरं णेइ हु अंतकाले ।
ण तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मं सहरा भवन्ति॥२२।

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (इह) इस ससारमें (सीहो—सिंहः) सिंह (मियं गहाय णेइ—मृग गृहीत्वा नयति) मृगको पकडकर ले जाता है—और उसे मार डालता है वहाँ उसकी रक्षा करनेवाला कोई नही होता है उसी तरह (अन्तकाले—अन्तकाले) मृत्युके अवसरमे (मुच्चू—मृत्युः) काल पुरुषको (णेई—नयति) परलोकमें ले जाता है। (तम्म कालम्मि—तस्मिन् काले) उस समय (माया व पिया व भाया—माता वा पिता वा भ्राता वा) माता पिता एव भाई (तस्स—तस्य) उस म्रियमाण जीवके (अंसहरा भवंति—अंशहरा न भवन्ति) दुःखको दूर करनेवाले नहीं होते हैं- मृत्युभयसे रक्षित करनेमे समर्थ नहीं होते।

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।
इक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं ॥२३॥[1]

अन्वयार्थ-(तस्स—तस्य)मरते हुए व्यक्तिको तत्काल प्राप्त(दुक्खं—दुःखम्) दुःखको—शारीरिक एवं मानसिक क्लेशको (नाइओ न विभयन्ति—ज्ञातयो न विभजन्ति) न अपने जन विभक्त करते हैं (न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा—न मित्रवर्गा न सुता न बान्धवा) न मित्रवर्ग न संतान और न बन्धुजन विभक्त करते हैं, किन्तु (इक्को सयं दुक्खं पच्चणुहोइ—एकः स्वयं दुःखं प्रत्यनुभवति) अकेला वही एक जीव पापकर्म करनेवाला प्राणी ही स्वयं दुःखको अर्थात् कर्म विपाक जनित क्लेशको भोगता है, क्योंकि (कम्म—कर्म) कर्म (कत्तारमेव अणुजाइ—कर्तारमेवानुयाति) कर्ताके साथ ही जाता है, ऐसा नियम है।

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गेहं धण-धन्नं च सव्वं ।
सकम्म बिइओ अवसो पयाइ, परं भवं सुंदर पावगं वा ॥२४॥[2]

अन्वयार्थ—(दुपय—द्विपदम्) भार्या आदिकको (चउप्पय च—चतुष्पदम्) हस्ती अश्व आदिको (क्षेत्र गेह धणधन्न सव्व च चिच्चा—क्षेत्र गेह धनधान्य सर्वंत्यक्त्वा) क्षेत्रको घरको सुवर्णरजत आदि धनको शालि—चावल गेहूं आदि धान्यों को छोड़कर (अवसो—अवश) पराधीन वह जीव (सकम्म बिइओ—स्वकर्म द्वितीय) अपने द्वारा कृत शुभाशुभ कर्मके अनुसार (सुन्दर—सुन्दरम्) देव सम्बन्धी तथा (पावग वा—पापक वा) नारकादि सम्बन्धी (पर भवं पयाइ-पर भव प्रयाति) अन्य जन्मको प्राप्त करता है।

तं इक्कगं तुच्छ सरीरगं से, चिईगयं दहिय उ पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य णायओ य, दायारमण्णं अणुसंकमंति ॥२५॥[3]

---

१. कर्म ऐसी चीज है कि उसका फल उसके कर्ता को ही मिलता है। उसमें अपनी जीवात्मा के सिवाय कोई कुछ भी न्यूनाधिक नहीं कर सकता। इस दृष्टिमें यह कहा गया है कि तुम्ही तुम्हारा बन्ध या मोक्ष कर सकते हो।

२. यदि शुभ कर्म होंगे तो अच्छी गति होती है और अशुभ कर्मों के योग से अशुभ गति होती है।

३. इस संसार में सब कोई अपनी स्वार्थ-सिद्धि तक है। अपना स्वार्थ सिद्ध हुआ कि फिर कोई पास खड़ा नहीं होता। दूसरे की सेवामें लग जाते हैं।

अन्वयार्थ—जो पहिले अतिशय प्रिय था (तस्स—तस्य) मृतक के उस (इक्कग—एककम्) अकेले (तुच्छ सरीरगं—तुच्छ शरीरकम्) निर्जीव शरीरको (चिईगय-चितिगतम्)चितामे रखकर एव(पावगेणं दहिय—पावकेन दग्ध्वा)फिर अग्निसे जलाकर (भज्जाय पुत्ता वि य णायओ य—भार्या च पुत्रोऽपि च ज्ञातयश्च) पत्नी, पुत्र एव स्वजन (अण्णं दायारं अणुसकमन्ति—अन्य दातार अनुसक्रामन्ति) अपने काम आनेवाले अन्यजनका सहारा ले लेते हैं।

उवणिज्जइ जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ णरस्स रायं।
पंचालराया ! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं ॥२६॥[1]

अन्वयार्थ—(राय—राजन्) हे राजन् ! (जीविय—जीवितम्) यह मनुष्य जीवन (अप्पमाय—अप्रमाद) बिना किसी आनाकानीरूप प्रमादके समय-समय मरणरूप अवीचिमरण अर्थात् क्षणक्षणमें आयुष्यका कम होना द्वारा (उवणिज्जइ—उपनीयते) मृत्युके सम्मुख ले जाया जाता है। तथा जीवित अवस्थामें भी (जरा—जरा) वृद्धावस्था (णरस्स वन्न हरइ—नरस्य वर्ण हरति) इस प्रकार मनुष्यके शारीरिक लावण्यको नाश करती रहती है। इसलिए (पचालराया—पचालराज) हे पचाल देश के राजा ! मेरे (वयणं—वचनम्) हितकर वचन (सुणाहि—शृणुष्व) सुनो-वे वचन ये हैं कि आप कमसे कम (महालयाइ कम्माइ मा कासि—महालयानि कर्माणि माकार्षिः) पचेन्द्रिय-वधादिक बुरे कर्मों को मत करो, जो कि भयकर नरक मे पहुँचानेवाले होते हैं।

अहं पि जाणामि जहे ह साहू, जं मे तुमं साहेसि वक्क मेयं।
भोगा इमे संगकरा हवंति, जे दुज्जया अज्जो ! अम्हारिसेहिं ॥२७॥

अन्वयार्थ—(साहू—साधो) मुनिराज! (जहा इह तुम मे साहेसि—यथा इह त्व मे साधयसि) जिस तरह आप सांसारिक पदार्थों की अनित्यताके विषयमे मुझे समझा रहे हैं उस तरह(अहंपि जाणामि—अहमपि जानामि)मैं भी जानता हूँ कि(इमे—इमे) ये (भोगा—भोगा) शब्दादिक भोग (सगकरा हवति—सगकरा भवन्ति) धर्मक्रियाके प्रतिबन्धक हैं। परन्तु (अज्जो—आर्य) हे आर्य! (जे भोगा—ये भोगाः) जो भोग होते हैं वे (अम्हारिसेहि—दुज्जया—अस्मादृशैः दुर्जेया) हमारे जैसो से दुर्जय हुआ करते हैं, अतः मैं उनको छोडने मे असमर्थ हूँ।

---

१. वासना जगने पर भी यदि गम्भीर चिन्तन द्वारा उसका निवारण किया जाय तो पतन नहीं हो सकता।

हत्थिणपुरम्मि चित्ता ! दट्ठूण नरवइं महिड्ढियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं नियाण मसुहं कडं ॥२८॥

तस्स मे अप्पडिकंतस्स, इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणे वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥२९॥

अन्वयार्थ—(चित्ता—चित्र) हे चित्रमुने ! (हत्थिणपुरम्मि महिड्ढिय नरवइं दट्ठूण—हस्तिनापुरे महर्द्धिक नरपति दृष्ट्वा) मैंने सम्भूतमुनिके भवमें सनत्कुमार चक्रवर्तीको महा ऋद्धिमान देखकर (कामभोगेसु गिद्धेण—कामभोगेषु गृद्धेन) कामभोगमें आसक्त बनते हुए उस समय (असुह नियाणं—अशुभ निदानम्) अशुभ निदान (कडं—कृतम्) किया-यद्यपि तब आपने मुझे ऐसा करना तुमको उचित नहीं है" इस प्रकार समझाया भी था, परन्तु (अप्पडिकंतस्स तस्स मे—अप्रतिक्रान्तस्य तस्य मे) मैंने उस निदानसे अपने भावको प्रतिनिवृत्त नहीं किया था। (इमं एयारिसं फलं—इदं एतादृशं फलम्) यह उसका मुझे ऐसा फल मिला है (यत्) जो (धम्मं जाणमाणे वि—धर्मं जानन् अपि) श्रुतचारित्ररूप धर्मको जानता हुआ भी (कामभोगेसु मुच्छिओ—कामभोगेषु मूर्च्छित)मैं कामभोगों में मूर्च्छित बना हुआ हूं।

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं ।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ॥३०॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा)(जैसे पंकजलावसन्नो—पंकजलावसन्न.)जलसहित कीचडमें फंसा हुआ (नागो—गज:) हस्ती (थल—स्थलम्) स्थल देखकर भी (तीरं नाभिसमेइ—तीरं नाभिसमेति) तीर पर आने में असमर्थ होता है (एव) उसी प्रकार(कामगुणेसु गिद्धा—कामगुणेषु गृद्धा) शब्दादिक विषयोंमें आसक्त बने हुए (वयं—वयम्) हम लोग धर्मको जानते हुए भी (भिक्खुणो मग्गं न मणुव्वयामो—भिक्षो: मार्गं न अनुव्रजाम) साधुके मार्गका अनुसरण नहीं कर सकते हैं—

अच्चेइ कालो तरंति राईओ, न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उवेच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥३१॥[1]

अन्वयार्थ—राजन् ! देखो यह (कालो अच्चेइ—काल अत्येति) आयुका समय

---

१. युवावस्था में जो काम-विलास बड़े प्यारे लगते थे, वे ही वृद्धावस्था में नीरस लगते हैं।

निकलता जा रहा है। (राईम्रो तरति— रात्रय त्वरन्ते) ये रातें और दिन भी बड़े वेगसे व्यतीत हो रहे हैं। (खीणफल दुम जहा पक्खी चयति तहा भोगा उवेच्च पुरिसं चयति—क्षीणफल द्रुमं यथा पक्षिणः त्यजन्ति तथा भोगा. उपेत्य पुरुषं त्यजन्ति) जिस प्रकार फलहीन वृक्षका पक्षी त्याग कर देते हैं उसी प्रकार क्षीण पुरुष का ये भोग भी प्राप्त होकर परित्याग कर देते हैं।

काम मे तो सबको आनन्द होता है पर ह्रास मे आनन्द कैसा ? चिन्ता होनी चाहिए कि हमारा एक भी आयुका क्षण व्यर्थ व्यतीत न हो जावे। यदि तुम्हारा इस पर ऐसा कहना हो कि भले आयु व्यतीत होती रहे—रात्रि एव दिवस भी योंही निकलते जायें तो हमको इनसे क्या प्रयोजन, जिनसे हमको प्रयोजन है ये भोग तो हमारे आधीन हैं ए राजन् ! तुम्हारी यह मान्यता बिलकुल गलत है क्योंकि ये भोग भी तो नित्य नही हैं।

क्षण-याम-दिवसमास-च्छलेन, गच्छन्ति जीवितदलानि ।
विद्वानपि खलु कथमिह, गच्छसि निद्रावशं रात्रौ ॥

जब क्षण, याम, दिवस एव मास के बहाने आयु ही व्यतीत होती रहती है तो बड़े अचरज की बात है कि विद्वानो को अपनी इस ऐसी परिस्थिति मे निद्रा भी कैसे आती है।

जइं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं ।
धम्मे ठिम्रो सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इम्रो विउव्वी ॥३२॥

अन्वयार्थ—(रायं—राजन्) हे राजन् ! (जइ भोगे चइउं असत्तो सि—यदि भोगान् त्यक्तु अशक्तः असि) यदि आप शब्दादिक विषयोंको छोड़ने मे अपने आपको अशक्त मानते हो तो (धम्मे ठिम्रो—धर्मे स्थित) सम्यग्दृष्टि आदि शिष्ट जनो द्वारा आचरित आचाररूप गृहस्थ धर्म मे स्थित होते हुए तथा (सव्वपयाणुकंपी—सर्वप्रजानुकम्पी) सर्व प्राणियों पर दयाभाव रखते हुए (अज्जाइं कम्माइं करेहि—आर्याणि कर्माणि कुरुष्व) शिष्ट जनोचित दया आदि सत्कर्मोंको करते रहो। (तम्रो—तत) इससे आप (वेउव्वी) विक्रिया-ऋद्धि विशिष्ट (देवो—देव) देव (इम्रो—इतः) मनुष्य पर्याय को छोड़कर (भविस्सइ—भविष्यसि) हो जाओगे।[१]

---

१. गृहस्थाश्रम मे भी यथाशक्ति त्याग किया जाय तो उससे देवत्व प्राप्त होता है।

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी गिद्धोसि आरंभपरिग्गहेसु ।
मोहं कओ इत्तिओ विप्पलावो, गच्छामि रायं आमंतिओसि ॥३३॥

अन्वयार्थ—(राय-राजन्) हे राजन् ! (तुज्झ बुद्धि भोगे चइऊण न—तव बुद्धि भोगान् त्यक्तु न) आपकी बुद्धि भोगोंको छोडनेकी नहीं है, आप तो (आरंभ परिग्गहेसु गिद्धोसि—आरम्भपरिग्रहेषु गृद्धः असि) आरम्भ सावद्य—व्यापारों में एव सचित्त अचित्त तथा सचित्ताचित्त वस्तुओं की संग्रह करने रूप परिग्रह में ही लोलुप बने हुए हो (इत्तिओ विप्पलाओ मोहं कओ—एतावान् विप्रलाप मोह कृत) अभीतक जो आपको इतना समझाया गया है वह सब व्यर्थ ही सिद्ध हुआ है, अत हे राजन् (गच्छामि) मैं अब यहाँ से जाता हूं ! (आमंतिओसि—आमंत्रितोऽसि) मैं इसके लिये आपसे पूछता हूं ।

पंचाल रायावि य बंभदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं ।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥३४॥

अन्वयार्थ—(पचालरायाविय बभदत्तो—पचालराजा स ब्रह्मदत्त अपि) पचाल देशका अधिपति वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भी (साहुस्स वयण अकाउ—साधो तस्य वचन अकृत्वा) भवान्तरके भ्राता चित्रमुनि के प्रव्रज्याग्रहण तथा गृहस्थ धर्मकी आराधना करनेरूप वचन के पालन करने मे असमर्थ अपने को जाहिर करके एव(अणुत्तरे कामभोगे भुंजिय अनुत्तरान् कामभोगान् भुक्त्वा) सर्वोत्कृष्ट शब्दादिक विषय-भोगों का भोग करके अन्त मे मरकर (अणुत्तरे नरए पविट्ठो—अनुत्तरे नरके प्रविष्ट) सकल नरकों मे प्रधान ऐसे सातवें नरकके अप्रतिष्ठान नामके नरकावास मे जा पहुंचा ।

चित्तो वि कामेहिं विरत्तकामो, उदत्तचारित्ततवो तवस्सी ।
अणुत्तरं संजमं पालइत्ता, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ ॥३५॥ त्तिबेमि

अन्वयार्थ—(कामेहिं विरत्तकामो—कामेभ्य विरक्तकाम) मनोज्ञ शब्दादिक विषयो मे विरक्त(उदत्तचारित्त तवो—उदात्तचारित्रतप) तथा सर्वोत्कृष्ट सर्वविरतिरूप चारित्र एव बारह प्रकारके तपोवाले ऐसे वे (तवस्सी— तपस्वी) तपस्वी चित्रमुनिराज (अणुत्तर संजम पालइत्ता—अनुत्तर सयम पालयित्वा) सर्वसावद्य रहित होने से सर्वोत्कृष्ट सर्वविरतिरूप सयमकी पालना करके (अणुत्तर सिद्धिगइं गओ—अनुत्तरां सिद्धिगतिम्.) लोकोत्तर सिद्धिरूप गतिको प्राप्त हो गये । (त्तिबेमि —इति ब्रवीमि) सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि – हे जम्बू ! मैंने जैसा भगवान महावीर से सुना है वैसा यह तुमसे कहा है ।

'पुरोहित श्रेष्ठ ! तुम्हारे घर में शीघ्र ही दो बालक जन्म लेंगे, किन्तु वे बाल्यकाल में ही जैन मुनि हो जाएंगे, उनके साधना-पथमें आपकी ओर से कोई विघ्न न होना चाहिए। देव चले गए और भृगु पुरोहित उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ ही समय के अनन्तर नन्ददत्त और नन्दप्रिय देव भृगु पुरोहित के पुत्रों के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए। पति-पत्नी दोनों प्रसन्न हो गए। बच्चे बढ़ने लगे और किशोरावस्था में पहुँच गए।

भृगुपुरोहित ने सोचा मैं अपने बच्चों को जैन मुनीश्वरों के सम्पर्क में सदा दूर ही रखूंगा, न वे उनके सम्पर्क में आएंगे और न ही साधु बनेंगे, अतः वह नगर को छोड़कर पास के वर्पट नामक ग्राम में रहने लगा। उसने पुत्रों को यह भी बताया कि—

'बच्चो ! एक जैन साधु होते हैं, जो मुख पर कपड़ा बांधे रहते हैं और रजोहरण लिये रहते हैं, उनके पास एक झोली होती उसमें वे घातक शस्त्र लिए रहते हैं। वे बच्चों को झोली में भरकर ले जाते और मार देते हैं, अतः ऐसे साधुओं से तुम सदा दूर ही रहना। बच्चे मान गए और जैन मुनीश्वरों से भय खाने लगे।

एक दिन दोनों बालक ग्राम से बाहर खेलने के लिये गए हुए थे। इसी समय दो जैन मुनीश्वर विहार करते हुए वर्पट ग्राम में भृगुपुरोहित के द्वार पर ही आ पहुँचे। भृगु ने उनको आहार-पानी देकर सन्तुष्ट किया और यह भी कहा

'इस ग्राम के लोग साधु-द्वेषी हैं, यहाँ के बच्चे साधुओं का निरादर करते हैं, अतः आप शीघ्र ही ग्राम से बाहर चले जाएं, कहीं एकान्त में जाकर आहार पानी कर लेना।'

मुनीश्वर ग्राम से चल दिये, संयोगवशात् वे उधर ही गए जिधर भृगु के बालक खेलने गए थे। दोनों बालकों ने जैन मुनीश्वरों को आते हुए देखा और वे डर के मारे एक वृक्ष पर चढ़ गए। जैन मुनीश्वर भी उसी वृक्ष के नीचे आकर बैठ गए और रजोहरण से स्थान को शुद्ध कर झोली से आहार-पानी निकाल कर आहार करने लगे।

वृक्ष पर चढ़े हुए बच्चों ने उनकी समस्त क्रियाओं को देखा और सोचा हमारे पिता को व्यर्थ का भ्रम हो गया था। इनकी झोली में तो कोई शस्त्र

नहीं। वे वृक्ष से नीचे उतर आए और दोनों ने मुनिश्वरों को सादर वन्दना की और अपने पिता की कही हुई बातें उन्हें बताई ।

मुनीश्वरों ने उन्हें अहिंसा-धर्म का उपदेश दिया और बालक उनसे अत्यन्त प्रभावित हुए और बोले—'सम्भवतः आप इषुकार नगर में जा रहे हैं, हम माता-पिता की आज्ञा लेकर शीघ्र ही आपकी सेवा में उपस्थित होंगे। हमें भी धर्म मार्ग का ज्ञान देकर अपना अनुगामी बनाने की कृपा करें।

मुनीश्वर इषुकार नगर में चले गए। बालक घर आ गए। बालकों ने अपने माता-पिता के साथ जो वैराग्य चर्चा की उनकी वैराग्यवृत्ति से प्रभावित होकर भृगुपुरोहित, उसकी पत्नी यशा भी पुत्रों के साथ ही दीक्षित होकर साधना करने लगे। इस अवसर पर राजा इषुकार और उसकी रानी कमलावती भी प्रव्रज्या ग्रहण कर मुनि जीवन में प्रविष्ट हुए।

इन छः जीवों के इसी आख्यान का वर्णन १४वें अध्ययन में प्रस्तुत किया गया है।
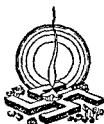
चौदहवाँ अध्ययन

देवा भवित्ताण पुरेभवम्मि केईचुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे इसुयारनामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥१॥

अन्वयार्थ—(पुरे भवम्मि—पुराभवे) पूर्व भव मे (एगविमाणवासी—एक-विमानवासिन) सौधर्मदेवलोकान्तर्गत नलिनी गुल्म नामक विमानके निवास (देवाभवित्ताण—देवा.भूत्वा) हम देव की पर्यायमे थे, वहां के भोगोको भोगकर फिर वहां से (केई—केऽपि) कोई-अर्थात् छह देव (चुया—च्युता:) पृथ्वी पर आए और (सुरलोगरम्मे—सुरलोकरम्ये) देवलोक जैसे मनोरम तथा (समिद्धे—समृद्धे) धनधान्यसे परिपूर्ण ऐसे (इसुयार नामे पुरे—इषुकारनाम्नि पुरे) इषुकार नाम के पुरमें जो (पुराणे—पुराणे) पुराना एव (खाए—ख्याते) प्रसिद्ध शहर था वहां उत्पन्न हुए ।

सकम्मसेसेण पुराकएण, कुलेसुदग्गेसु य ते पसूया ।
निव्विण्ण संसारभया जहाय, जिणिदमग्गं सरणं पवण्णा ॥२॥

अन्वयार्थ—(ते—ते) वे छह ही जीव (पुराकएण सकम्मसेसेण—पुराकृतेन स्वकर्मशेषेण) पूर्व जन्म मे समुपार्जित एव फलभोग से अवशिष्ट शुभकर्मों के प्रभावसे (उदग्गेसु कुलेसु पसूया—उदग्रेषु कुलेषु प्रसूता:) उच्चकुलो में उत्पन्न हुए । पुन (ससारभया निव्विण्ण—ससारभयात् निर्विण्णा) ससार के भयसे उद्विग्न होकर (जहाय—त्यक्त्वा) कामभोगोका परित्याग करके (जिणिदमग्ग सरण पवण्ण—जिनेन्द्रमार्गं शरण प्रपन्ना.) तीर्थंकरोपदिष्ट सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक मोक्षमार्गकी शरणमें आये ।

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो, रायत्थ देवी कमलावई य ॥३॥

अन्वयार्थ—(दो वि—द्वौ अपि) वे दोनो नन्ददत्त और नन्दप्रिय नामक गोपाल-पुत्रों के जीव (पुमत्तमागम्म—पुस्त्वमागम्य) पुरुषत्व प्राप्त कर (कुमारो—कुमारौ) भृगु पुरोहित के पुत्र रूप मे उत्पन्न हुए (पुरोहिओ—पुरोहित.) तृतीय वसुमित्र का जीव ही भृगु पुरोहित के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । चौथा वसु देव का जीव (तस्सजसाय पत्ती—तस्य च यशा पत्नी) उस पुरोहित की

यशा नामकी पत्नी के रूप में उत्पन्न हुआ (विसाल कित्तीय—विशालकीर्तिश्च) पांचवा वसुप्रिय जीव विशालकीर्ति सम्पन्न (इसुयारो राय—इषुकार राजा) इषुकार नामका राजा हुआ और छठवां धनदत्त का जीव (कमलावई देवी—कमलावती देवी) उस राजा की कमलावती नामकी पत्नी के रूप में उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार चार जीव ब्राह्मणकुल में और दो जीव क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए।

जाईजरामच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभिणिविट्ठचित्ता।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥४॥

अन्वयार्थ—(जाईजरामच्चुभयाभिभूया—जातिजरामृत्युभयाभिभूतौ) जन्म, जरा, मरण के भयसे डरे हुए इसीलिए (बहिं विहाराभिणिविट्ठचित्ता बहिर्विहाराभिनिविष्टचित्तौ) संसार से सर्वथा भिन्न जो सादि अपर्यवसान रूप मोक्ष है उसमें मन लगाने वाले (ते—तौ) वे दोनों कुमार (दट्ठूण—दृष्ट्वा) मुनियों को देखकर अथवा 'ये कामगुण अनित्य हैं' इस प्रकार विचार कर (संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा—संसारचक्रस्य विमोक्षणार्थम्) संसार रूप चक्र का परित्याग करने के लिये (कामगुणे विरत्ता—कामगुणे विरक्तौ) कामगुण के विषय में विरक्त हो गये।*

पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स, सकम्म सीलस्स पुरोहियस्स।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं, तहा सुचिण्णं तव संजमं च ॥५॥

अन्वयार्थ (तत्थ—तत्र) इषुकार पुरमें (सकम्मसीलस्स—स्वकर्मशीलस्य) पठन पाठन, यजन, दान, प्रतिग्रह रूप षट्कर्म में लीन (पुरोहियस्स—पुरोहितस्य) पुरोहित—शांति कर्म कराने वाले भृगु नामक (माहणस्स—ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण के (दो वि पियपुत्तगा—द्वौ अपि प्रियपुत्रकौ) ये दोनों प्रिय पुत्र (पोराणियजाइं—पौराणिकीम् जातिम्) पूर्वभव सम्बन्धी अपनी जातिको तथा (सुचिण्णं तव संजमं च सरित्तु—सुचीर्णं तपः संयमं च स्मृत्वा) पूर्व भवमें अच्छी तरह से आचरित तप—अनशनादिक बारह प्रकार के संयम की स्मृति करके (कामगुणे विरत्तौ) कामगुणों के विषयों से विरक्त हो गए।

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्स एसुं जे यावि दिव्वा।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसड्ढा, तायं उवागम्म इमं उदाहु ॥६॥

---

* ब्राह्मण पुत्रों में मुनीश्वरों के दर्शन से पूर्व-भव की स्मृति जागृत हो गई और वे संसार को त्यागकर मोक्षगामी होने की इच्छा करने लगे।

अन्वयार्थ —(माणुस्सएसु—मानुष्यकेषु) मनुष्य भव सम्बन्धी (कामभोगेसु—कामभोगेषु) सुन्दर शब्दादिक विषयों में तथा (जे यावि दिव्वा—ये चापि दिव्या) जो देव सम्बन्धी कामभोग हैं उनमें भी (असज्जमाणा—असज्जमानौ) नहीं फसने की कामनावाले किन्तु (मोक्खाभिकंखी मोक्षाभिकांक्षिणौ) मुक्ति की ही अभिलाषा वाले, इसीलिये (अभिजायसड्ढा—अभिजातश्रद्धौ) आत्मकल्याण की दृढ रुचिवाले वे दोनों कुमार (तायं उवागम्म—तातमुपगम्य) पिता के पास आकर (इम—इदम्) ये वचन (उदाहु—उदाहरताम्) कहने लगे।

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहुअंतरायं न य दीह माउं।
तम्हा गिहंसी न रइं लभामो, आमंतयामो चरिस्सामु मोणं ॥७॥

अन्वयार्थ—(इम इमम्) इस संसार के (विहार—विहारम्) मनुष्य के समस्त निवास स्थान (असासय—अशाश्वतम्) अशाश्वत अर्थात् अनित्य हैं। तथा (बहुअंतराय—बह्वन्तरायम्) प्रचुर आधि एवं व्याधि रूप विघ्नों से युक्त हैं एवं (आउ दीह न—आयु: न दीर्घम्) जीवन का प्रमाण भी अत्यन्त छोटा है ऐसा (दट्ठु—दृष्ट्वा) देखकर हे तात ! हम लोग (गिहंसी रइं न लभामो—गृहे रतिं न लभावहे) गृहस्थाश्रम में शांति प्राप्त नहीं कर सकते हैं, (तम्हा—तस्मात्) इसलिए (आमंतयामो—आमन्त्रयाव:) आपसे आज्ञा चाहते हैं कि (मोणं चरिस्सामु—मौनं चरिष्याव:) हम संयम अंगीकार करेंगे।

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासि।
इमं वयं वेयविओ वयंति, जहा न होई असुयाण लोगो ॥८॥

अन्वयार्थ—(अह अथ) पुत्रों की इस प्रकार भावना प्रकाशित होने पर (तेसिं मुणीण—तयोर्मुन्यो:) उन भावमुनियों के (तायगो—तातक:) पिता भृगु पुरोहित ने (तवस्स वाघायकरं इमं वयं वयासि—तपसो व्याघातकरं इदं वच: अवादीत्) उनके तप एवं संयम को व्याघात पहुँचाने वाले इस प्रकार के वचन कहे कि—हे पुत्रो ! (वेयविओ—वेदविद:) वेदको जाननेवाले विद्वान् (इमं वयं वयंति—इदं वचनं वदन्ति) ऐसा कहते हैं (जहा—यथा) जैसे कि (असुयाण लोगो न होई—असुतानां लोक: न भवति) पुत्र रहितों का परलोक नहीं सुधरता, अर्थात् उन्हें परलोक में सद्गति प्राप्त नहीं होती।

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया ।
भुच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होइ मुणी पसत्था ॥६॥

अन्वयार्थ—हे पुत्रो ! तुम दोनो (वेए अहिज्ज—वेदान् अधीत्य) वेदों को पढ़ करके तथा (विप्पे परिविस्स—विप्रान् परिवेष्य) ब्राह्मणों को भोजन करवा कर एवं (जाया पुत्ते गिहंसि परिट्ठप्प—जातान् पुत्रान् गृहे परिस्थाप्य) अपने पुत्रों को घरमे स्थापित करके—कला सिखलाकर एवं विवाहित कर उनके ऊपर अपना गृहस्थाश्रम का भार रख कर (इत्थियाहिं सह भोए भुच्चाण—स्त्रीभिः सह भोगान् भुक्त्वा) स्त्रियो के साथ मनोज्ञ शब्दादिक भोगोंको भोगकर पश्चात् (आरण्णगा पसत्था मुणी होइ—अरण्यको प्रशस्तौ मुनी भवेतम्) आरण्यवासी व्रतधारी होकर प्रशंसनीय तपस्वी बन जाना।[1] इस गाथा मे "अहिज्ज वेए" पद द्वारा ब्रह्मचर्याश्रम "आरण्णगा" पद द्वारा वानप्रस्थाश्रम एवं "मुणी" पद द्वारा सन्यासाश्रम का संकेत किया गया है ।

सोयग्गिणा आयगुणिंधणेणं, मोहाणिला पज्जलणाहिएणं ।
संतत्त भावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च ॥१०॥

पुरोहियं तं कमसोऽणुणितं, निमंतयंतं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहिं चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥११॥

अन्वयार्थ—(आयगुणिंधणेण—आत्मगुणेन्धनेन) आत्माके कर्मक्षयोपशम आदिसे समुद्भूत जो सम्यग्-दर्शन आदि गुण हैं वे ही जिसके लिए जलाने योग्य इंधन स्वरूप हैं तथा (मोहाणिला पज्जलणाहिएणं—मोहानिलाप्रज्वलनाधिकेन) मोहरूपी पवनसे ही जो अधिक ज्वालायुक्त की जाती है ऐसी (सोयग्गिणा—शोकाग्निना) शोक रूप अग्नि से (संतत्तभाव—संतप्तभावम्) संतप्त हुआ है अन्तःकरण जिसका और इसीलिए (परितप्पमाण—परितप्तमानम्) समस्त शरीरमें शोकके आवेशसे प्रादुर्भूत दाहसे सब ओरसे जलता हुआ तथा (बहुं बहुहा लालप्पमाण—बहु बहुधा लालप्यमानम्) अनेक प्रकार

---

[1] उस समय दान और अध्ययन ये ब्राह्मण धर्म के प्रमुख अंग माने जाते थे। कुल धर्म की छाप सब पर रहती है, इसलिये ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थ और गृहस्थ के बाद वानप्रस्थादि का संकेत किया गया है। वस्तुत. यहा पुरोहित का पुत्र-मोह ही व्यक्त हो रहा है।

से मोहाधीन बनकर दीनहीन वचन बोलनेवाले एवं (सुए मणुगिणतं—सुतौ अनुनयन्तम्) पुत्रोंको विषयमुख प्रदर्शक वचनों द्वारा "घरमें ही रहो" इस प्रकार कहकर मनानेवाले तथा (धणेण निमंतयंत—धनेन निमन्त्रयन्त) उनको धनका प्रलोभन दिखाकर अपने वशमें करने की भावनावाले, तथा (अहक्कम कामगुणेहिं चेव—यथाक्रम कामगुणैश्चैव) यथाक्रम काम भोगों द्वारा भी हे पुत्रों ! वेदों को पढ़ो, ब्राह्मणों को जिमाओ, भोगोंको भोगो, इस प्रकार रिझानेवाले उस अपने पिता (पुरोहियं—पुरोहितम्) पुरोहित को (समिक्ख—असमीक्ष्य) देखकर (ते कुमारगा—तौ कुमारकौ) उन दोनों कुमारों ने इस प्रकार (वक्क—वाक्यम्) वचनों को कहा—

वेया अहीया ण हवंति ताणं, भुत्ता दिया णिंति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ॥१२॥

अन्वयार्थ—हे तात ! (अहीया वेया ण ताणं हवंति—अधीता वेदा त्राणं न भवन्ति) पढ़े गये वेद इस जीवका रक्षण नहीं कर सकते हैं (भुत्ता दिया तमंतमेणं णिंति—भुक्त्वा द्विजा: तमस्तमायां खलु नयन्ति) ब्राह्मणों को भोजन कराने से भी इस जीव की रक्षा नहीं हो सकती, प्रत्युत इस क्रिया में अधिक आरम्भ और समारम्भ होनेसे भोजन करानेवाले जीव मरकर तमस्तमा नामके नरक में ही जाते हैं, क्योंकि दुःशील एवं आचरणहीन ब्राह्मणों को भोजन कराना भी हमारी रक्षा का उपाय नहीं है (जाया य पुत्ता ताणं न हवंति—जाता: पुत्रा: त्राणं न भवन्ति) पुत्र भी उत्पन्न हो गये तो क्या इनसे भी पाप के उदय से नरक में पड़ने वाले आत्माका उद्धार नहीं हो सकता, अत: हे तात ! (को णाम एयं अणुमन्नेज्ज—को नाम एतत् अनुमन्येत्) आपके इस कथन को कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो सत्यार्थरूप से अंगीकार कर सकता है ।[1]

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥१३

अन्वयार्थ—हे तात ! (कामभोगा—कामभोगा:) कामभोगों से (खणमित्त-

---

[1] धर्म के वास्तविक आचरण को त्यागकर केवल ब्राह्मण-भोजन कराने से और अनेक प्रकार के दुराचरण करते हुए भी केवल वेदाध्ययन से मुक्ति नहीं हो सकती । मोक्ष का साधक तो सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र ही हो सकता है ।

सुक्खा—क्षणमात्र सौख्याः) जीवोको क्षणमात्र के लिये ही सुख प्राप्त होता है, अर्थात् सेवन करने के समय में भी इनसे स्वल्प ही सुख मिलता है, बादमे तो (बहुकाल दुक्खा—बहुकाल दुःखाः) इनसे पल्योपम एवं सागरोपम कालतक जीवको नरक निगोदादिकके दुःख ही भोगने पडते हैं। यदि कोई यहा ऐसी आशका करे कि राज्यार्थी की तरह अथवा धान्यार्थी की तरह प्रकृष्ट सुखार्थी के लिए बहुकाल व्यापी दुःख भी ग्राह्य हो जाता है, जबकि वह क्षणमात्र सुख भी प्रकृष्ट—अत्यधिक हो तो। ऐसी आशका के समाधान निमित्त कहते हैं कि ये कामभोग (अनिगामसुक्खा—अनिकाम सौख्या) तुच्छ सुख देनेवाले हैं किन्तु निकाम—अत्यन्त सुखप्रद नही है, तथा (पगामदुक्खा—प्रकामदुःखा) अत्यन्त दुःख देनेवाले हैं नरक वेदना रूप अत्यन्त दुःखोके देनेवाले हैं (ससार मोक्खस्स विपक्खभूया—ससार मोक्षस्य विपक्षभूता.) इसीलिए ये कामभोग ससार से मुक्त होने में अन्तराय रूप हैं। तथा (अणत्थाणखाणी—अनर्थाना खनि.) ऐहलौकिक अनर्थों की ये खान है। तात्पर्य यह है कि ये काम भोग काल एवं परिमाण की अपेक्षा अल्पसुख जनक एवं अनन्त दुःख वर्धक हैं। ससार परिभ्रमण में ये ही प्रधान रूप से कारण है तथा इसलोक सम्बन्धी एव परलोक सम्बन्धी समस्त अनर्थों के खान रूप हैं।

परिव्वयंते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अनियत्तकामे—अनिवृत्तकाम) जिसकी विषयोपभोग तृष्णा निवृत्त नही होती है ऐसा (पुरिसे—पुरुष.) पुरुष (अहो य राओ परितप्पमाणे—अह्नि च रात्री परितप्यमानः) रात दिन उसकी पूर्ति की चिन्तासे सतप्त होता रहता है और (परिव्वयते—परिव्रजन्) इधर उधर विषय भुनों की प्राप्ति के लिये घूमता हुआ वह (धणमेसमाणे—धनमेषयन्) धनकी इच्छा किया करता है तथा (अन्नप्पमत्ते—अन्य प्रमत्तः) अन्य अपने से भिन्न जनोंमे उनके भरण पोषण की चिन्ता मे पडकर ससार मे पार होने रूप आत्मकार्य मे प्रमादी बन जाता है। इस तरह प्रमादी बना हुआ यह मनुष्य (जरं मच्चु च पप्पोति—जरां मृत्य च प्राप्नोति) जरावस्थाको एव मृत्युको प्राप्त कर लेता है।[1]

---

१. आसक्ति मनुष्य को आत्ममार्ग से भ्रष्ट कर देती और आत्मभ्रष्ट मनुष्य असत्य के मार्ग पर भटकता हुआ समस्त जीवन व्यर्थ खो देता है।

इमं च मे अत्थि, इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेव लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाओ ॥१५॥

अन्वयार्थ (इम—इदम्) यह धन धान्यादिक (मे—मे) मेरे हैं और (इम—इदम्) यह स्वजन कुटुम्बादिक भी (मे मे) मेरे हैं (नत्थि—नास्ति) नहीं है। तथा (इम मे किच्च इम अकिच्चं इदं मे कृत्यं इदं अकृत्यम्) यह नवीन मकान जिसमें छहों ही ऋतुओंमें आराम मिल सके मुझे बनवाना है, तथा यह जो मेरे घर पर हानिकारक व्यापार आदि चल रहे हैं उन्हें बन्द करना है क्योंकि वे अकरणी हैं। (एव —एवम्) इस प्रकार के नाना विकल्पों में पड़कर (लालप्पमाण—लालप्यमानम्) व्यर्थ ही बातें बनानेवाले उस मनुष्य को (हरा—हरा) दिन और रात्रियाँ (हरंति—हरन्ति) इस भवसे उठाकर दूसरे भवमें पहुंचा देती है, अत (कह पमाओ—कथ प्रमाद) धर्म में प्रमाद करना कैसे उचित माना जा सकता है ? कभी नहीं ।[1]

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोओ, तं सव्व साहीणमिहेव तुब्भं ॥१६॥

अन्वयार्थ—हे पुत्रो ! देखो (जस्स कए—यस्यकृते) जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए (लोओ—लोक) लोक (तवं तप्पइ—तप. तप्यते) तप द्वारा शरीर को तपते हैं (तंसव्वं -तत्सर्वम्) वह सब (तुब्भ इहेव साहिणं—युवयो: इहैव स्वाधीनम्)तुम दोनो के पास इस घरमें विद्यमान है। (पभूय धणं—प्रभूत धनम्) बहुत धन है तुम कुछ भी न कमाओ तो भी वह समाप्त नहीं कर सकता है आनन्द से बैठे बैठे खा सकते हो। (इत्थियाहिं सह सयणा—स्त्रीभि. सह स्वजनाः) स्त्रियाँ भी हैं माता पिता भी हैं (पगामा कामगुणा—प्रकामा कामगुणाः) सुन्दर शब्दादिक विषय भी हैं। फिर कहो बेटा ! तुम अब किस वस्तुको प्राप्त करने के लिये तपस्यामे उद्यमशील हो रहे हो। इन दोनो भाइयोका इस समय यद्यपि विवाह नही हुआ है फिर भी "स्त्रियाँ है" ऐसा जो कहा गया है वह

---

१. ममत्व के दूषित वातावरण मे अनेक प्राणी घुट रहे हैं, कर्तव्य और अकर्तव्य के विवेक के अभाव मे अपने जीवन के अमूल्य क्षणो को नष्ट कर रहे हैं।

जाते हैं। (नावचिट्ठे—नावतिष्ठन्ते) शरीर नाशके अनन्तर नहीं रहते हैं। अत जब शरीर के नाश होने ही जीव नष्ट हो जाते हैं तो फिर धर्माधर्म के विपाकको अनुभव करने के लिये उनका परलोक मे जाना एक कल्पित बात ही है। अत. इसमे यह बात सिद्ध होती है कि जीव का पुनर्जन्म नहीं होता।

नो इंदियग्गिज्झ अमुत्तभावा अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो।
अज्झत्थहेऊं नियओऽस्सबंधो, संसारहेउं च वयंति बंधं। १६॥

अन्वयार्थ—हे तात! आपका कहना है कि प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्माका ग्रहण नहीं होता, अत वह शशविषाण (खरगोश के सींग) की तरह असत् है सो ऐसा करना आपका ठीक नहीं है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष द्वारा (अमुत्तभावा—अमूर्तभावात्) अमूर्त होने से (नो इन्दियग्गिज्झ—नो इन्द्रियग्राह्यः) किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है। अमूर्त का तात्पर्य-रूपादिक विशिष्टत्व का अभाव है। आत्मा अमूर्त है इसका तात्पर्य है आत्मामें रूपादिक कोई भी गुण नहीं है। तथा (अमुत्तभावा वि निच्चो—अमूर्त भावात् अपि नित्य.) अमूर्त होने पर भी यह नित्य है। (अज्झत्थ हेऊ अस्स बधो नियओ—अध्यात्म हेतु अस्य बधः नियत) मिथ्यात्व आदि कारण ही इसके बधके कारण हैं। (बध ससारहेउं वयंति—बन्धन् संसारहेतु वदन्ति) बधका होना ही ससारका कारण कहा गया है।[1]

जहा वयं धम्ममयाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा।
ओरुज्झमाणा परिरक्खियंता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो ॥२०॥

अन्वयार्थ हे तात! (जहा—यथा) जिस प्रकार (पुरा—पुरा) पहिले (ओरुज्झमाणा—अवरुध्यमाना) घर से नहीं निकलने दिये गये तथा (परिरक्खियंता—परिरक्ष्यमाणाः) साधुओं के विषय मे अहित कारित्व बुद्धि को उत्पन्न कराके उनके दर्शन करने मे भी रोके गये (वय—वयम्) हम लोगों

---

१. दो प्रकार के पदार्थ हैं —नित्य और अनित्य, जो पदार्थ अमूर्त हैं वे नित्य हैं जैसे आकाश अमूर्त है, अत वह नित्य है। जीव भी अमूर्त है, अत. वह भी नित्य है, किन्तु जीवात्मा कर्मबन्ध मे बधा हुआ होने के कारण परिणामी नित्य है अर्थात् यह जैसे कर्म करता है उसीके अनुरूप छोटे-बड़े, ऊंच-नीच शरीर धारण करता रहता है।

ने (धम्ममयाणमाणा—धर्ममजानाना) धर्म को नहीं जानते हुए (मोहा—मोहात्) अज्ञान से (पावं कम्म अकासि—पापकर्म अकार्ष्म) मुनियों के दर्शन आदि नहीं करने रूप पापकर्म किया (त —तत्) वह पापकर्म अब (भुज्जोवि नेव समायरामो—भूयोऽपि नैव समाचरामः) हम लोग फिरसे नहीं करेंगे। अर्थात् जिस प्रकार हमलोगोने आपकी बातोंमे आकर मुनियो के दर्शन सेवा आदिसे अपनेको वंचित रखा है वैसा काम अब हमसे नहीं हो सकेगा।[1]

अब्भाहयंमि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहिं पडंतीहिं, गिहंसि न रइं लभे ॥२१॥

अन्वयार्थ—हे तात! (अब्भाहयंमि—अभ्याहते) प्रत्यक्ष रूप से पीडित तथा (सव्वओ—सर्वत) सब ओरसे (परिवारिए—परिवारिते) परिवेष्टित एव (अमोहाहिं पडंतीहिं—अमोघाभि पतन्तीभिः) अमोघ सफल शस्त्र धार से पीडित (लोगम्मि—लोके) इस लोकमे हम लोग (गिहंसि रइ न लभे—गृहे रतिं न लभामहे) घरमें रहकर कभी भी आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि—जिस प्रकार वागुरामे वेष्टित मृग तीक्ष्ण एव अमोघ बाणों द्वारा व्याध से आहत होकर कहीं पर भी आनन्द नहीं पा सकते हैं।

केण अब्भाहओ लोओ, केण वा परिवारिओ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया! चिंतावरो हुमि ॥२२॥

अन्वयार्थ—जाया—जातौ) हे पुत्रो! यह तो बताओ कि (अय लोओ—अय लोक) यह लोक व्याघ्र के समान (केण अब्भाहओ—केन अभ्याहत) किसके द्वारा पीडित हो रहा है? (केण वा परिवारिओ—केन वा परिवारितः) तथा वागुरा-मृगबधनी के समान किस पदार्थ से पारिवारित-परिवेष्टित है। एव (का वा अमोहा वुत्ता—का वा अमोघा उक्ता) इसमे अमोघ शस्त्र-

---

१. जब तक हम भी वास्तविक ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाए थे। तब तक हम भी लोक-परलोक, पाप-पुण्य आदि की सत्ता को स्वीकार नहीं करते थे, किन्तु अब ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर हमें पाप-पुण्य आदि की सत्ता में पूर्ण विश्वास हो गया है।

तुल्य घातक कौन है? (विजाणओ इवि विजाणओ भणाहि) इसे जानने के लिये मैं चिन्तित हूं अतः तुमसे जानना चाहता हूं।

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय! वियाणह ॥२३॥

अन्वयार्थ—हे तात! इस लोक में व्याधके [illegible] मृत्यु है इसलिये (मच्चुणा लोगो अब्भाहओ—मृत्युना अयं लोकः अभ्याहतः) उस मृत्युसे यह लोक सदा पीड़ित हो रहा है। ऐसा इस लोकमें एक भी प्राणी नहीं, न हुआ, न होगा, कि जिसके पीछे मृत्यु न हो।

तीर्थंकरा गणधरा, सुरपतयश्चक्रि केशवारामाः।
सर्वेऽपि मृत्युवशगा शेषाणामत्र का गणना ॥"

चाहे तीर्थंकर हो, चाहे गणधर हों, चाहे सुरपति-इन्द्र हों, चाहे चक्रवर्ती हो केशव-वसुदेव, राम-बलदेव, कोई भी क्यों न हों सभी मृत्युके वशगत बने हुए हैं। जब ऐसे २ भाग्य शालियों की यह दशा है तो हमारे जैसों की गणना ही क्या है। (जराए परिवारिओ—जरया परिवारितः) मृग वागुरा-जालके तुल्य जरा है। सो यह लोक उस जरा से परिवेष्टित हो रहा है। तथा (अमोहा रयणी वुत्ता—अमोघा रजनी उक्ता) अमोघ-शस्त्रपात के तुल्य यहाँ दिन और रातें हैं। जिस प्रकार शस्त्रों के प्रहार से प्राणियों का घात हो जाता है उसी प्रकार दिवस एवं रात्रिरूप शस्त्रों के निपात से प्राणियों का घात होता रहता है। (ताय एव वियाणह—तात एवं विजानीत) हे तात! इसे आप जानो।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अहला जंति राईओ ॥२४॥

अन्वयार्थ—(जा जा रयणी—या या रजनी) जो जो दिन और रातें (वच्चइ—व्रजति) निकलती जा रही है (सा न पडिनियत्तइ—सा न प्रतिनिवर्तते) वे दिन और रातें फिर लौटती नहीं हैं, अत उन दिन रातो मे (अहम्म कुणमाणस्स—अधर्मं कुर्वतः) अधर्म करनेवाले जो प्राणी हैं उनकी वे (राईओ—रात्रयः) रातें (अहला जंति—अफलाः यान्ति) धर्माचरण से रहित होने के कारण निष्फल ही व्यतीत होती हैं। अर्थात् धर्माचरण शून्य

प्राणियों की दिन रातें बिलकुल ही निष्फल है।

जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तइ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राईओ ॥२५॥

अन्वयार्थ—अर्थ पूर्वोक्त रूप मे ही है। परन्तु इसमे रात्रियों की सफलता बतलाई गई है। उन्हीं की दिनरातें सफल हैं जो धर्मक्रियाओं के आचरण से इनको बिताते हैं। यहां रात्रि के ग्रहण से ही दिनों का ग्रहण हो जाता है।

एगओ संवसित्ताणं, दुहओ सम्मत्तसंजुया।
पच्छा जाया गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥

अन्वयार्थ – (जाया—जातौ) हे पुत्रो! (एगओ—एकतः) पहिले एक स्थान मे (दुहओ—द्वय)हम तुम दोनो (सम्मत्तसंजुया सवसित्ताण —सम्यक्त्व-संयुता· समुष्य) सम्यक्त्व सहित रहकर के अर्थात्—गृहस्थाश्रम का पालन करके (पच्छा—पश्चात्) फिर वृद्धावस्थामें दीक्षा लेकर (कुले कुले भिक्ख-माणा गमिस्सामो—कुले कुले भिक्षमाणा गमिष्यामः) ज्ञान अज्ञात कुलों में विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हुए ग्राम नगरादिकों में विचरेंगे। अर्थात् हे बेटा! अभी ऐसा करो कि हम तुम दोनो अविरत सम्यग्दृष्टि बन जाओ पश्चात् दीक्षा ले लेंगे।

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

अन्वयार्थ—हे तात! (जस्स मच्चुणा सक्खं—यस्य मृत्युना सख्य) जिस मनुष्य की मृत्यु के साथ मैत्री है अथवा (जस्स पलायण अत्थि—यस्य पलायण अस्ति) जिसका मृत्यु से पलायन है जिस समय मृत्यु आवेगी उस समय मे भागकर के अन्यत्र चला जाऊगा ऐसा विचार है अथवा (न मरिस्सामि इइ जो जाणे—न मरिष्यामि इति यो जानाति) मैं नहीं मरूगा ऐसा जो अपने आपको मानता है (सो—स·) वही प्राणी निश्चय पूर्वक (कखे—कांक्षे) इच्छा करता है कि मैं (सुए—श्वः) आगामी दिवस मे (सिया-स्यात्) हो जायेगा। अर्थात् कर लूगा।[1]

---

1. अर्थात् जो व्यक्ति मृत्यु को अपना मित्र मानता है, जो व्यक्ति मृत्यु से भाग कर अन्यत्र जा सकता है और जिसका यह विश्वास है कि मैं कभी न मरूगा। वही व्यक्ति भविष्य मे सत्कर्म करने की योजनाएं बना सकता है।

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवन्ना न पुणब्भवामो।
अणागयं नेव य अत्थि किंचि, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ॥२८॥

अन्वयार्थ — हे तात ! हम आज (अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो — अद्यैव धर्मं प्रतिपद्यामहे) जब कि मृत्यु की अवश्यंभावी गति निश्चित है, तो आज ही साधु धर्म को अंगीकार करेंगे (जहिं पवन्ना — यं प्रपन्नाः) जिसके धारण करने वाले हम (न पुणब्भवामो — न पुनर्भवामः) फिर से इस जन्म जरा और मरण आदि दुखों से संवलित इस चतुर्गति रूप संसार में पुन जन्म नहीं लेंगे। इस अनादि संसार में (अणागयं नेव य अत्थि किंचि — अनागतं नैव चास्ति किंचित्) कोई भी वस्तु अनागत अप्राप्त—अननुभुक्त नहीं है। सभी ही अनुभुक्त है। अत उच्छिष्ट अर्थात् जूठे का पुन सेवन करने की लालसा श्रेयस्कर नहीं है। श्रेयस्कर तो हमें अब एक यही है कि हम (रागं — रागम्) स्वजनादिक का स्नेह (विणइत्तु—विनीय) छोडकर (सद्धाखमं श्रद्धाक्षमम्) श्रद्धापूर्वक धर्मानुष्ठान करें। तात्पर्य यह है कि जब कि संसार में जो कि अनादिकाल से इस जीव के पीछे लगा आ रहा है कोई भी वस्तु अननुभुक्त नहीं हो तो फिर उसको भोगने के लिए गृहस्थावास अंगीकार करना नहीं है। उचित तो यही है कि हम स्वजनों के अनुराग का त्याग करें और शीघ्राति शीघ्र मुनिव्रत धारण करें।

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वासिट्ठिभिक्खायरियाइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहईसमाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥२९॥

अन्वयार्थ —वासिट्ठि—वासिष्ठि) हे वसिष्ठगोत्रोत्पन्ने ! (पहीण पुत्तस्स —प्रहीणपुत्रस्य) पुत्रों से रहित (नत्थि वासो—नास्ति वासः) मेरा घर में निवास योग्य नहीं है (भिक्खायरियाइकालो भिक्षाचर्याया: कालः) यह तो अब मेरे भिक्षाचर्या का काल है अर्थात् पुत्रों के साथ मुझे भी मुनि होने का यह अवसर प्राप्त हुआ है। क्योंकि (साहाहि रुक्खो समाहिं लहई— शाखाभिः वृक्षः समाधिं लभते) शाखाओं से ही वृक्ष सुहावना लगता है। (छिन्नाहि साहाहितमेव खाणु—छिन्नाभि: शाखाभि: त्वमेव स्थाणुम्) जब शाखाएं उसकी कट जाती है तो लोग उसको स्थाणु ठूंठा कहने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वृक्ष की शोभा उसकी शाखाओं से है उसी प्रकार मेरी भी शोभा इन पुत्रों से है। अत मेरा भी घर मे रहना उचित नहीं है। अत मैं भी पुत्रों के साथ २ ही मुनि दीक्षा धारण करू।

पंखा विहूणोव्व जहेव पक्खी, भिच्च विहीणुव्व रणे नरिंदो ।
विवन्नसारो वणि उव्व पोए, पहीण पुत्तोम्हि तहा अहंपि ॥३०॥

अन्वयार्थ—हे ब्राह्मणि ! (जहा इव- यथा इव) जैसे इस लोक में (पंखा विहूणो पक्खी—पक्ष विहीन पक्षी) पर से रहित पक्षी की दुर्दशा होती है अर्थात्—पर विहीन पक्षी जिस प्रकार आकाश मार्ग से जाने में सर्वथा अशक्य हो जाता है और चाहे जिस किसी भी हिंसक प्राणियों द्वारा पीड़ित होता है तथा (रणे भिच्च विहीणुव्व नरिंदो—रणे भृत्य विहीन नरेन्द्र) संग्राम में भृत्यों-सैनिकों से रहित राजा की जैसी दुर्दशा होती है—अर्थात् युद्ध में जिस प्रकार सैनिक विहीन राजा शत्रुओं से तिरस्कृत होता है तथा (पोए विवन्नसारो वणि उव्व—पोते विपन्नसार वणिक्) जहाज के नाश होने पर विनष्ट धनवाले वणिक् की जैसी दुर्दशा होती है (तहा पहीण पुत्तो अहंपि अम्हि —तथा प्रहीण पुत्र: अहमपि अस्मि) उसी प्रकार दुर्दशा मेरी भी पुत्रों के अभाव में होगी। अर्थात् मैं पुत्रों के विरहजन्य दुःख को सहन करने के लिए सर्वथा असमर्थ हूं।

सुसंभिया कामगुणा इमे ते, संपिंडिया अग्गरसा पभूया ।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं ॥ ॥३१॥

अन्वयार्थ—पति के ऐसे वचनों को सुन ब्राह्मणी ने कहा—हे स्वामिन् (ते-ते) आपके घरमें (इमे-इमे) यह प्रत्यक्ष दृश्यमान (कामगुणा कामगुणाः) पंचेन्द्रियसुखद पदार्थ सद्वस्त्र, स्वादिष्ट एवं सरसमिष्टान्न, पुष्पचंदन, नाटक, गीत, तानवेणु वीणादिक ये सब(सुसंभिया—सुसंभृता)खूब २ भरे पड़े हुए हैं तथा (संपिंडिया संपिंडिता.) ये थोड़े बहुत होवें तो बात भी सही है या अलग अलग स्थानों में भिन्न भिन्न रूपसे रखे होवें सो बात नहीं है किन्तु ये सब एक ही जगह समुदाय रूपसे रखे हुए हैं (अग्गरसा—अग्र्यरसाः) ये नीरस भी नहीं हुए हैं, मधुरादि रस संपन्न हैं। अथवा शृंगार रस के ये सब उत्तेजक है। कहा भी है—

रति माल्यालंकारैः, प्रियजनगन्धर्वकामसेवाभिः ।
उपवनगमन विहारैः,शृंगाररसः समुद्भवति ॥

(पभूया—प्रभूता) प्रचुर मात्रा में है। ऐसे (ता काम गुणे भुंजामु—तान् कामगुणान् भुंजीमहि) इन शब्दादिक कामगुणों को आप यथेच्छ भोगो। (पच्छा पहाणमग्गं गमिस्सामु—पश्चात् प्रधान मार्गं गमिष्याव) जब वृद्धावस्था आ जावेगी तब अपने सब —तीर्थंकर गणधरादि सेवित प्रव्रज्यारूप मोक्ष-

मार्ग को स्वीकार कर लेंगे। अभी से उनको क्या आवश्यकता है। ये तो दिन खाने पीने के है।

भुत्ता रसा भोइ! जहाइ णे वओ, न जीवियट्ठा पजहामि भोए।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं॥ ३२॥

अन्वयार्थ हे ब्राह्मणी ! (भोइ भवति) (रसा भुत्ता रसा भुक्ताः) मधुरादिक रस या शृंगार रस एवं शब्दादिक भोग मैंने खूब भोग लिये है। (वओ णे जहाइ वयः नो जहाति) देखो इनको भोगते भोगते मेरी यौवन अवस्था भी बहुत व्यतीत हो चुकी है। अब जब तक तरुणावस्था नहीं चली जाती है तब तक मेरा कर्तव्य यह आदेश देता है कि मैं मुनि दीक्षा अंगीकार करूँ यदि तुम ऐसा कहो कि "भुक्तभोगों के रहने पर भवान्तर सुखप्राप्ति के लिये प्रव्रज्या अंगीकार करना उचित नहीं है" इसका उत्तर कि (ण जीवियट्ठा पजहामि भोए न जीवितार्थं प्रजहामि भोगान्) मैं भव न्तर में "मुझे मनोज्ञ शब्दादिक विषयों की प्राप्ति हो" इस रूप असंयमि जीवन के निमित्त इन भोगों का परित्याग नहीं कर रहा हूँ, किन्तु (ला अलाभ च सुहं च दुक्खं संचिक्खमाणो -लाभ अलाभ च सुखं च दुःखं संवीक्षमाण) वांछित वस्तु की प्राप्ति या अप्राप्ति रूप जो लाभ एवं अलाभ है एवं जो सुख, एवं दुःख है उनमें समताभाव का आलम्बन करके मैं (मोणं चरिस्सामि—मौन चरिष्यामि) मुनि होना चाहता हूँ।[1]

मा हू तुमं सोयरियाण संभरे ? जुण्णो व हंसो पडिसोयगामी।
भुंजाहि भोगाइं मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो॥३३॥

अन्वयार्थ—पति के पूर्वोक्त वचन सुनकर ब्राह्मणी ने कहा—हे स्वामिन् ! (पडिसोयगामी जुण्णो हंसो व तुमं सोयरियाण मा संभरे—प्रतिस्रोतोगामी जीर्णः हंस इव त्वं सोदर्याणां मा संस्मरे) जिस प्रकार प्रतिकूल प्रवाह मे बहता हुआ बुड्ढा हंस अनुकूल प्रवाह की स्मृति करके उस ओर आ जाता है इसी प्रकार तुम भी मुनि होकर अपने भाई बन्धुओं की याद कर पुनः प्रतिकूल प्रवाह जैसे इस मुनि दीक्षा से वापिस होकर भाई बन्धुओं के साथ आकर न मिलो इस भाव से मैं कहती हूँ कि पहले ही इसका अंगीकार करना आपको उचित नहीं। आप तो (मए समाणं —मया समम्) मेरे साथ (भोगाइं

---

१. संसार के समस्त भोग प्राप्त होते हुए भी घोर साधु जीवन के कष्टों को देखते हुए भी प्रव्रज्या ग्रहण मे मेरी रुचि का जागृत होना यह प्रमाणित करता है कि मेरी प्रव्रज्या रुचि जन्म—जन्मान्तरों से प्राप्त स्वाभाविक रुचि है।

मुञ्चाही—भोग न मुञ्च) भोगों को भोगो देखो (भिक्खायरिया विहारं दुक्खं भिक्षाचर्या विहारं दुःखम्) भिक्षावृत्ति करना और एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार करना इसमें कौनसा आनन्द है यह तो एक प्रकार का दुःख ही है। जिनके केशों का लुंचन करना यह भी विहार शब्द से ग्रहण कर लेना चाहिए।

जहा य भोई ! तणुयं भुयंगो, निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेय जाया पयहंति भोए, तेऽहं कहं नाणुगमिस्समेक्को ॥ ३४॥

अन्वयार्थ—(भोई—भवति) हे ब्राह्मणी! (जहा—यथा) जैसे (भुयगो—भुजङ्गः) सर्प (तणुय तणुजाम्) शरीरोद्भव (निम्मोयणि—निर्मोचनीम्) अपनी कांचली को (हेच्च—हित्वा) छोड़कर के (मुत्तो—मुक्त) स्वतन्त्र होकर (पलेइ पर्येति) घूमता फिरता है किन्तु उस कांचली को फिर नहीं ग्रहण करता है (एव) इसी प्रकार (एय जाया—एतौ जातौ) ये दोनों पुत्र (भोए पयहन्ति—भोगान् प्रजहीत) भोगों को छोड़रहे हैं तब(एक्को अहं एकः अहं) अकेला मैं (ते कहं नाणुगमिस्स—तौ कथं नानुगमिष्यामि)उन दोनों का अनुसरण क्यों न करूंगा अर्थात् अवश्य ही करूंगा फिर वापिस नहीं आऊंगा।

छिदित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥३५॥

अन्वयार्थ—हे ब्राह्मणी ! (जहा तथा) जैसे (रोहिया—रोहिता) रोहित जाति के मत्स्य (अवल जाल वा छिदित्तु—अबल जाल वा छित्वा) जीर्ण या अजीर्ण जाल को अपनी तीक्ष्ण पुच्छ दाढ़ आदि द्वारा छेदित करके निर्भय स्थान में सुख पूर्वक विचरते हैं उसी प्रकार (धोरेयसीला—धौरेयशीलाः) भारको वहन करने वालों के जैसे अर्थात् रखे गये भारको वहन करने की शक्ति वालों एवं (तवसा उदारा—तपसा उदाराः) अनशन आदि तपों के आचरण करने से सर्व प्रधान तथा (धीरा धीराः) परीषह और उपसर्ग के सहन करने में धीर वीर व्यक्ति भी (कामगुणे पहाय—कामगुणान् प्रहाय) रमणीय शब्दादिक विषय रूप कामगुणों का परित्याग करके(हु) निश्चय से (भिक्खायरियं चरंति भिक्षाचर्याम् चरन्ति) भिक्षावृत्ति को करते हैं अर्थात् मोक्षमार्ग में विचरते हैं। पुनः लौट कर वापिस घर नहीं आते हैं।

नहेव कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।
पलिंति पुत्ता य पई य मज्झं ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ॥३६॥

अन्वयार्थ--(इव—इव) जैसे (कुंचा—क्रौञ्चाः) क्रौंच पक्षी एवं (हंसः—हंस) हंस पक्षी (तयाणि जालाणि—ततानि जालानि) विस्तृत जालों

वा (दलित्ता दलयित्वा) छेदन करके भिन्न भिन्न देशों का उल्लंघन करते हुए (नहेव गमऽवरमता—नभसि समतिक्रामन्ति) आकाश में स्वच्छन्द उड़ते हैं उसी प्रकार मेरे पति और दोनों पुत्र आत्माराम विषयों से [illegible] छेदन करके उन २ गुणस्थानों को अपनी तरह पालन करते हुए [illegible] विग- लित संयममार्ग में (गमिष्यन्ति) अब विचरण करना चाहते हैं तो (एक्का—एका) असहाय बनी हुई (अहं—अहम्) मैं भी (नेकर मानुगमि- स्सं तान् कथं नानुगमिष्यामि) फिर क्यों न उन्हीं के मार्ग का अनुगमन करू अर्थात् अवश्य करूंगी।

पुरोहियं त ससुयं सदार, सोच्चा-भिनिक्खम्म पहाय भोगे।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं त, राय अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

अन्वयार्थ—(अभिनिक्खम्म—अभिनिष्क्रम्य) घर से निकल कर तथा (भोगे पहाय भोगान् प्रहाय) शब्दादिक भोगों का परित्याग कर एवं (विउलुत्तम कुडुंबसारं—विपुलोत्तम कुटुम्बसार प्रति) बहुत एवं श्रेष्ठ ऐसे कुटुम्ब के आधार भूत धन धान्यादिक का भी परित्याग करके (ससुय सदार — ससुत सदार) पुत्र और स्त्री सहित दीक्षित हुए (त पुरोहियं सोच्चा एतं पुरोहित श्रुत्वा) उस पुरोहित को सुनकर (तत् 'अभिक्खम्') अस्वामिक उसके उस प्रचुर धन धान्यादि के स्वामी बनने की अभिलाषा वाले (राय - राजानम्) राजा से (देवी—देवी) कमलावती ने (अभिक्खं—अभीक्ष्णम्) बारबार (समुवाय—समुवाच) सम्यक् प्रकार से कहा।

वंतासी पुरिसो रायं, न सो होई पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणं आदाउ मिच्छसि ॥३८॥

अन्वयार्थ -(राय -राजन्) हे राजन्! (पुरिसो—पुरुष) जो पुरुष (वंतासी—वान्ताशी) वान्त का खाने वाला होता है (सो—स) वह (पसं- सिओ न होइ—प्रशंसित: न भवति) प्रशंसा के योग्य नहीं होता है। जब आप यह जानते हो तो फिर क्यों (माहणेण परिच्चत्त —ब्राह्मणेन परित्यक्तम्) ब्राह्मण द्वारा परित्यक्त (धणं—धनम्) धनको फिर भी (आदाउ इच्छसि —आदातुं इच्छसि) ग्रहण करने की अभिलाषा करते हो।

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वा वि धणं भवे।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव ॥३९॥

अन्वयार्थ—हे राजन्! (सव्व जग—सर्व जगत्) समस्त लोक (जइ तुहं भवे — यदि तव भवेत्) यदि आपके आधीन हो जाय (वा—वा) अथवा

(सव्वं पसु वि भवे—सर्वं धनमपि भवेत्) तीन लोक का जितना भी रत्न स्वर्ण आदि धन है वह सब आपके खजाने में भर दिया जाय तो भी (सव्व पि ते अपज्जत्तं—सर्वमपि ते अपर्याप्तम्) वह समस्त लोक एवं समस्त धन आपके लिये पर्याप्त नहीं हो सकता है, क्यों कि तृष्णा अपर्याप्त है, उससे भी आपकी वह तृष्णा शान्त नहीं हो सकती है। मान लिजिये उससे तृष्णा शान्त हो भी जाय, तो भी (नं तव ताणाय तेव—न तत् तव त्राणाय नैव) वह समस्त वैभवादि परिकर जन्म जरा एवं मरणादिक से आपकी रक्षा नहीं कर सकता है। अतः इस ब्राह्मण का धन जो वमन जैसा है आप को ग्रहण करना उचित नहीं है।

मरिहिसि राय! जया तया या, मणोरमे कामगुणे पहाय।
एक्को हु धम्मो नरदेव! ताणं न विज्जई अन्नमिहेह किंचि॥४०॥

अन्वयार्थ—हे राजन्! (जया तया वा मणोरमे कामगुणे पहाय मरिहिसि—यदा तदा वा मनोरमान् कामगुणान् प्रहाय मरिष्यसि) जिस किसी भी समय मनोरम शब्दादिक रूप कामगुणों का परित्याग कर आपको अवश्य ही मरना पड़ेगा क्यों कि—"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः" जन्मता है वह अवश्य मरता है.—

"को वि ताव तए दिट्ठो, सुओ संभाविओ वि वा।
लिईए जइवा सग्गे, जो जाओ न मरिस्सइ॥

स्वर्ग या भूमंडल मे कोई भी ऐसा प्राणी न देखने में आया न सुनने मे आया कि जो उत्पन्न हुआ पर मरा न हो। यह विश्वास रखो ये मनोज्ञकामभोग आपके साथ जाने वाले नहीं है।

(नरदेव—नरदेव) हे राजन्! (इह एक्को हु धम्मो ताणं विज्जई—इह एक हु धर्मः त्राणं विद्यते) इस संसार मे मृत्यु के आने पर इस जीवकी रक्षा करने वाले एक आराधित धर्म-सम्यक् दर्शन आदि ही है। (अन्नं किंच ताणं न विज्जई—अन्यत् किंचित् त्राणं न विद्यते) इसके अतिरिक्त और कोई रक्षा करने वाला नहीं है। हां रक्षा करनेवाला यदि कोई है तो वह एक चारित्र धर्म ही है। क्योंकि वही मुक्ति का हेतु होता है। अतः धर्म का सेवन ही उचित है।

नाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा, संताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभ नियत्तदोसा॥४१॥

अन्वयार्थ—हे राजन्! जब धर्म के सिवाय रक्षक इस जीवका कोई और नहीं है तब वा—इव) जैसे (पंजरे - पञ्जरे) पींजरेमें बन्द हुई (पक्खिणी—

पक्षिणी) पक्षिणी (न रमे—न रमते) वहां सुखका अनुभव नहीं करती है उसी तरह (अहं—अहम्) मैं भी जरा एवं मरण आदिके उपद्रव से युक्त इस भव रूपी पींजरे मे (न रमे—न रमे) सुखानुभव नहीं करती हूं। अतः अब मैं (सन्ताण छिन्ना—सन्तानच्छिन्ना) पारिवारिक स्नेह बंधन से रहित तथा (अकिंचणा—अकिञ्चना) द्रव्य एवं भाव पारिवारिक स्नेह बंधन से रहित तथा (अकिंचणा—अकिञ्चना) द्रव्य एवं भाव परिग्रह से परिवर्जित होकर (निरामिसा निरामिषा) शब्दादिक विषय भोगों का सर्वथा परित्याग करती हूं और (उज्जुकडा—ऋजुकृता) माया आदि शल्योंसे रहित तप एवं संयम की आराधना मे तत्पर होना चाहती हूं। इस तरह (परिग्गहारंभ नियत्तदोसा—परिग्रहारंभ निवृत्तदोषा) परीग्रह और आरम्भ से अन्य दोषों से निवृत्त होती हुई मैं (मोणं—मौनम्) मुनि भावका (चरिस्सामि—चरिष्यामि) आचरण करुंगी।

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जंतुसु।
अन्ने सत्ता पमोयन्ति, रागदोसवसंउया ॥४२॥

एवमेव वयं मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया।
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागदोसग्गिणा जगं ॥४३॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (रण्णे—अरण्ये) वनमें (दवग्गिणा—दवाग्निना) दावानल द्वारा (जंतुसु डज्झमाणेसु—जन्तुषु दह्यमानेषु) जन्तुओं के जलते रहते (रागदोस वसगया अन्ने सत्ता पमोयन्ति—रागद्वेष वशगताः अन्ये सत्वाः प्रमोदन्ते) रागद्वेषके वशीभूत हुए अन्य मृगादि प्राणी जो नहीं जलते है वे आनन्द का अनुभव करते हैं। (एवमेव—एवमेव) इसी तरह (मूढा—मूढाः) मोह के वश हम लोग भी कि जो (कामभोगेसु मुच्छिया—कामभोगेषु मूर्च्छिताः) शब्द रूप आदि काममें तथा स्पर्श रस गन्ध रूप भोग में या मनोज्ञ शब्दादिक कामभोगों में गृद्ध बने हुए हैं (रागदोसग्गिणा डज्झमाणं जगं न बुज्झामो रागद्वेषाग्निना दह्यमान जगत् न बुध्यामहे) रागद्वेष रूपी अग्नि से जलते हुए जगत् को देखकर हर्षित मन होते हैं, परन्तु यह नहीं जानते हैं कि हम भी जगत् के भीतर वर्तमान हैं अतः हम भी भस्म होंगे।

भोगे भुच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो।
आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव ॥४४॥

अन्वयार्थ—वे विरले धन्य है जो (भोगे—भोगान्) मनोज्ञ शब्दादिक

विषयों को (भुच्चा—भुक्त्वा) भोग करके पश्चात् विपाक कालमें दारुण जान कर (वमिता—वान्त्वा) उनका परित्याग कर देते हैं और इस प्रकार होकर (लहुभूयविहारिणो—लघुभूतविहारिण) वायु के समान अप्रतिबद्ध विहारी बन जाते हैं, अथवा संयमित जीवन से जो विहार करते रहते हैं वे (आमोयमाणा—आमोदमाना.) आनन्दका अनुभव करते हुए (कामकमा दिया इव गच्छंति—कामक्रमाः द्विजा इव गच्छन्ति) यथेच्छ भ्रमण करनेवाले पक्षीयों की तरह विचरते रहते हैं।

इमे य बद्धा फंदति, मम हत्थज्जमागया।
अयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे ॥४५॥

अन्वयार्थ—(अज्ज—आर्य) हे आर्य! (मम हाथ आगया—मम हस्तम् आगताः) मेरे और आपके हाथों मे प्राप्त हुए और इसीलिये (बद्धा—बद्धा) अनेकविध उपायों द्वारा रक्षित किये गये (इमे—इमे) ये शब्दादिक काम भोग (फदति—स्पन्दन्ते) अस्थिर स्वभाववाले होनेसे सदा स्थायी नही हैं किन्तु अस्थिर ही हैं। यहाँ "च" शब्दसे यह बात भी सूचित की गयी है कि जिस प्रकार कामभोग अस्थिर हैं उसी प्रकार हमलोग भी अस्थायी हैं। क्यो कि इस गति मे हमारा अवरोध का कारण जो आयु कर्म है वह स्वय अस्थाई है। फिर भी (वय—वयम्) हम अस्थायी (कामेसु सत्ता—कामे सक्ता.) इन अस्थिर विषयोंमे मूर्छित हो रहे हैं यह कितने आश्चर्य की बात है। हमारी इस अज्ञानताका भी कही ठिकाना है? इसलिये (जहा इमे भविस्सामो—यथा इमे भविष्याम) जैसे ये पुरोहित आदि बने हैं वैसे ही हमलोग भी बनेंगे। इस प्रकार कमलावती ने राजा से कहा।

सामिसं कुललं दिस्सा, बज्झमाणं निरामिसं।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामो निरामिसा ॥४६॥

अन्वयार्थ—हे राजन्! (सामिस कुलल—सामिष कुललम्) मांसको दबाये हुए गृद्ध पक्षीको(बज्झमाण दिस्स—बाध्यमान दृष्ट्वा)अन्य मास लोलुपी पक्षियों द्वारा दु खित देख करके तथा (निरामिस—निरामिषम्) निरामिष उसी पक्षी को निराकुल देखकर के हमलोग भी (सव्व आमिस उज्झित्ता—सर्व आमिष उज्झित्वा) अभिष्वग के कारणभूत समस्त शब्दादिक विषयो का परित्याग करके (निरामिसा—निरामिषा) अब भोगरूप आमिष से रहित होते हुए (विहरिस्सामो—विहरिष्यामि) विचरण करेंगे।

गिद्धोवमे उ नच्चाणं, कामे संसारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व्व, संकमाणो तणुं चरे ॥४७॥

अन्वयार्थ--हे राजन् ! विचारशील जनों को (गिद्धोवमे--गृध्रोपमान्) गृद्ध पक्षी के सदृश (नच्चा--ज्ञात्वा) जानकर तथा (कामे--कामान्) शब्दादिक विषयों को (संसारवड्ढणे--संसार-वर्द्धनान्) संसार के बढ़ाने वाले (नच्चा--ज्ञात्वा) जानकर और (सुवण्णपासे-उरगो व्व--सौपर्णेयपार्श्वे उरग इव) गरुड़ के समीप में सर्प की तरह (संकमाणो--शंकमानः) भयभीत होकर (तणुं चरे--तनु चरेत्) यतनापूर्वक क्रियाओं में प्रवृत्ति करो ।

नागो व्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।
एवं पत्थं महाराय !, इसुयारित्ति मे सुयं ॥४८॥

अन्वयार्थ--हे राजन् ! (इव-इव) जैसे (नाग--नाग) हस्ती (बंधण छित्ता--बंधन-छित्वा) बंधन को तोड़ कर के (अप्पणो वसहिं वए--आत्मनो वसतिं व्रजति) अपने स्थानभूत विन्ध्याटवी में जाता है इसी तरह आप भी (बंधण छित्ता--बंधन छित्वा) ज्ञानावरणीय कर्म बन्धनको नष्टकर अपने स्थानभूत (वसइ वए--वसति व्रजेत्) मुक्ति में जाओ (महाराय--महाराज) हे महाराज इषुकार ! (एवं पत्थं--एतत्पथ्यम्) इसीमें भलाई है । (त्ति--इति) इसी प्रकार (मे--मया) मैंने (सुयं--श्रुतम्) मुनि जनों के समीप सुना है ।

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा, निप्परिग्गहा ॥४९॥
सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ॥५०॥

अन्वयार्थ--(विउल--विपुलम्) विशाल (रज्ज--राज्यम्) राज्यवैभव तथा (दुच्चए कामभोए य--दुस्त्यजान्-कामभोगान् च) छोड़ने में कठिन ऐसे कामभोगों का (चइत्ता--त्यक्त्वा) परित्याग करके पश्चात् (सम्म धम्म वियाणित्ता--सम्यक्- धर्म विज्ञाय) यथावस्थित-श्रुत चारित्ररूप धर्म के स्वरूप को अच्छी तरह विशेष रीति से समझकर (दुच्चए कामगुणे चइत्ता--दुस्त्यजान् कामगुणान् त्यक्त्वा) श्रेष्ठ शब्दादिकों के विषयों का तीन करण तीन योग से त्याग करके (अहक्खाय--यथाख्यातम्) तीर्थंकरादिकों ने जैसी विधि से आराधन करने को कहा है उसी विधि के अनुसार (घोर--घोरम्) कायरों द्वारा आचरित होने में सर्वथा अशक्य ऐसे (तव--तप) अनशन आदि

मार्गों को (पगिज्झ—प्रगृह्य) स्वीकार करके (निब्बिसया—निर्विषयौ) काम-भोगादिकों से रहित अथवा अपने देश से रहित तथा (निरामिसा—निरामिषौ) भोगरूप आमिष से रहित एवं (निन्नेहा—निःस्नेहौ) स्वजनादिक के प्रेमबंधन से रहित हुए वे दोनों राजारानी (निप्परिग्गहा—निष्परिग्रहौ) बाह्य एवं अभ्यन्तर परिग्रह के त्याग कर देने से (घोरपरक्कमा जाए—घोरपराक्रमौ जातौ) कर्मरूपी शत्रुओं के विजय करने से विशिष्ट बलसम्पन्न बन गए।

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा ।
जम्मणमच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्संत-गवेसिणो ॥५१॥

अन्वयार्थ—(कमसा—क्रमशः) अनुक्रम से (एव—एवम्) इस प्रकार (बुद्धा—बुद्धाः) प्रतिबोधित हुए (सव्वे—सर्वे) वे सबके सब-छहों (जम्मणमच्चु भउव्विग्गा—जन्म मृत्यु भयोद्विग्नाः) जन्म मरण के भय से उद्विग्न बनकर (दुक्खस्संतगवेसिणो—दुःखस्यान्तगवेषिणः) शारीरिक एवं मानसिक दुःखों का अन्त अब किस प्रकार होगा इस बात की गवेषणा करने में तल्लीन बन और इसलिए (धम्म परायणा—धर्मपरायणा जाता) धर्म में ही एक निष्ठावाले हो गये।

सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावण भाविया ।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्संतमुवागया ॥५२॥

अन्वयार्थ—(पुव्विं भावणभाविया—पूर्वं भावना भाविता) पूर्वभव में भावना से भावित अनित्य अशरण, आदि बारह प्रकार की भावनाएँ हैं उनसे भावित अन्तःकरण वाले छहों जीव (विगयमोहाणं—विगतमोहानाम्) वीतराग प्रभु के (सासणे—शासने) शासन में स्थित होते हुए (अचिरेणेव कालेण दुक्खस्संतमुवागया—अचिरेणैव कालेन दुःखस्यान्तमुपागता) बहुत थोड़े समय में ही चतुर्गतिरूप संसार के अन्त को प्राप्त हो गये, अर्थात् मोक्ष में गये।

राया य सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुडात्ति बेमि ॥५३॥

अन्वयार्थ—(देवीए—देव्या) कमलावती देवी के (सह—सह) साथ (राया—राजा) इषुकार राजा (य—च) और (पुरोहिओ माहणो—पुरोहितः ब्राह्मणः) पुरोहित ब्राह्मण तथा (माहणी—ब्राह्मणी) उसकी पत्नी यशा तथा (दारगा चेव—दारकौ चैव) उनके देवभद्र, यशोभद्र दोनों पुत्र (ते सव्वे—ते सर्वे) इन सब छहों ने (परिनिव्वुडे—परिनिर्वृत्ताः) कर्मरूपी अग्नि को उपशमन हो जाने से शीती भूत होकर मुक्ति को प्राप्त किया।

चौदहवां अध्ययन सम्पूर्ण

मझाने बुझाने पर भी जो क्रोध करता है (पावसमणेत्ति वुच्चइ —पापश्रमण इति उच्यते) उसको पापश्रमण कहा गया है।

पडिलेहेइ पमत्तो, अवउज्झइ पायकंबलं ।
पडिलेहणा अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥६॥

अन्वयार्थ—जो साधु (पमत्ते - प्रमत्त) प्रमादी बनकर (पडिलेहेइ—प्रतिलेखयति) वस्त्र, पात्र - मुखवस्त्रिका आदि की प्रतिलेखना करता है कितनेक उपकरणों का प्रतिलेखन करता है कितनेक का नहीं करता है अथवा विधिपूर्वक प्रतिलेखना नहीं करता है तथा (पायकम्बल अवउज्झइ—पात्र कम्बल अपोज्झित पात्र एव कम्बल आदि अपनी उपकरण की सभाल नहीं रखता किसी को कहीं पर किसी को कहीं पर इस तरह से उनको जहा तहा रख देता एव (पडिलेहणा अणाउत्ते —प्रतिलेखनायामनुपयुक्त) प्रतिलेखन क्रिया में जो अनुपयुक्त अर्थात् उपयोगी नहीं रहता हो प्रतिलेखन क्रिया करता तो है पर उसमे उसका उपयोग न लगा हो ऐसा साधु पापश्रमण कहा गया है।

पडिलेहेइ पमत्तो से, जं किं चि हु णिसामिया ।
गुरु परिभाए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१०॥

अन्वयार्थ—जो साधु (ज किंचि णिसामिया—यत् किंचित् अपि निशम्य) इधर उधर की बातों को सुनता हुआ (पडिलेहेइ —प्रतिलेखयति) वस्त्रपात्रादिकों की प्रतिलेखना करता है वह (पमत्ते—प्रमत्त.) प्रमत्त है तथा प्रतिलेखन क्रिया के समय मे भी जो दूसरो से वार्तालाप करता है और प्रतिलेखना करता जाता है वह भी प्रमत्त है तथा (णिच्च गुरु परिभावए—गुरुपरिभावक) हमेशा जो गुरुदेव की आशातना करता रहता है वह र है ऐसा साधु (पावसमणेत्ति वच्चई—पाप-श्रमण इत्युच्यते) पापगया है।

द्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
समणे त्ति वुच्चइ ॥११॥

) प्रचुर मायाचार सपन्न हो वाला हो (थद्धे —स्तब्ध) अहकारी हो

(पडिकूलए—प्रतिकूलक) पपने ऊपर उपकार करने वाले गुरिजनों का भी जो प्रत्युपकार नहीं करता है तथ (पइं-थद्ध) जो ग्रहंकार में ही मस्त बना रहता है वह मुनि पापश्रमण है ग्रर्थात दर्शनाचार से शिथिल होने से वह साधु के कर्तव्य से बहुत दूर है वास्तविक साधु नहीं है।

सम्मद्दमाणे पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य।

असंजए संजयमन्नमाणो, पावसमणे-त्ति वुच्चइ ॥६॥

अन्वयार्थ—जो साधु (पाणाणि बीयाणि सम्मद्दमाणे प्राणान् बीजानि सम्मर्दयन्) द्वीन्द्रियादि जीवों का शाली ग्रादि बीजों को, दूर्वादिक हरित ग्रंकुरों को तथा उपलक्षण से समस्त एकेन्द्रिय जीवों को चरण ग्रादि द्वारा पीड़ित करता हुआ (असजए—असंयत) संयम भाव से वर्जित हो रहा है, फिर भी अपने ग्रापको संयत (मुनि) मान रहा है ऐसा साधु पापश्रमण कहलाता है।

संथारं फलगं पीढं, निसिज्जं पायकंबलं।

अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे-त्ति वुच्चइ ॥७॥

अन्वयार्थ जो साधु (संथारं फलगं पीढं निसिज्जं पायकंबलं—सम्स्तारम् फलक पीठ निषद्या पादकम्बलम्) संस्तारक—शयनासन को फलक पट्टक ग्रादि को पीठ—बाजोठ को, निषद्या स्वाध्यायभूमिको, पाद-कम्बल चरण पोंछने का ग्रथवा उर्णामय छोटे वस्त्र को (अप्पमज्जिय अप्रमार्ज्य) रजोहरण ग्रादि से प्रमार्जित न करते हुए तथा न देखकर इनपर (आरुहइ आरोहति) बैठता है वह (पावसमणे त्ति वुच्चइ—पापश्रमण इत्युच्यते) पापश्रमण कहा जाता है।

दवदवस्स चरइ, पमत्ते य अभिक्खणं।

उल्लंघणे य चंडे य, पावसमणे-त्ति वुच्चइ ॥८॥

अन्वयार्थ-जो साधु (दवदवस्स चरइ—द्रुत द्रुतं चरति) भिक्षा ग्रादि के समय में जल्दी जल्दी चलता है तथा (अभिक्खणं अभीक्ष्णम्) बार बार (पमत्ते-प्रमत्त) साधुक्रियाओं के करने में प्रमादी बनता है। तथा (उल्लंघणे - उल्लंघन) साधुमर्यादा का उल्लंघन करता है (चंडे—चण्ड) क्रोध न करने के लिए बार-बार

समझाने बुझाने पर भी जो क्रोध करता है (पावसमणेत्ति वुच्चइ—पापश्रमण इति उच्यते) उसको पापश्रमण कहा गया है।

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पायकंबलं।
पडिलेहणा अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥९॥

अन्वयार्थ—जो साधु(पमत्ते—प्रमत्त) प्रमादी बनकर (पडिलेहेइ—प्रतिलेखयति) वस्त्र, पात्र मुखवस्त्रिका आदि की प्रतिलेखना करता है कितनेक उपकरणों का प्रतिलेखन करता है कितनेक का नहीं करता है अथवा विधिपूर्वक प्रतिलेखना नही करता है तथा(पायकम्बल अवउज्झइ—पात्र कम्बल अयोजित पात्र एव कम्बल आदि अपनी उपकरण को सभाल नही रखता किसी को कहीं पर किसी को कहीं पर इस तरह से उनको जहां तहा रख देता एव (पडिलेहणा अणाउत्ते—प्रतिलेखनायामनुपयुक्त) प्रतिलेखन क्रिया मे जो अनुपयुक्त अर्थात् उपयोगी नही रहता हो प्रतिलेखन क्रिया करता तो है पर उसमें उसका उपयोग न लगा हो ऐसा साधु पापश्रमण कहा गया है।

पडिलेहेइ पमत्ते से, जं किं चि हु णिसामिया।
गुरु परिभवाए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१०॥

अन्वयार्थ—जो साधु (जं किंचि णिसामिया—यत् किंचित् अपि निशम्य) इधर उधर की बातों को सुनता हुआ (पडिलेहेइ प्रतिलेखयति) वस्त्रपात्रादिकों की प्रतिलेखना करता है वह (पमत्ते—प्रमत्तः) प्रमत्त है तथा प्रतिलेखन क्रिया के समय में भी जो दूसरों से वार्तालाप करता है और प्रतिलेखना करता जाता है वह भी प्रमत्त है तथा (णिच्च गुरु परिभावए—नित्य गुरुपरिभावक) हमेशा जो गुरुदेव की आशातना करता रहता है वह भी प्रमत्त है ऐसा साधु (पावसमणेत्ति वच्चई—पाप-श्रमण इत्युच्यते) पापश्रमण कहा गया है।

बहुमायी पमुहरी, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥११॥

अन्वयार्थ—जो साधु (बहुमायी—बहुमायी) प्रचुर मायाचार मग्न हो (पमुहरी—प्रमुखर:) प्रचुर बकवाद करनेवाला हो (थद्धे—स्तब्ध) अहकारी हो

ससरक्खपाओ सुवइ, सेज्जं न पडिलेहइ ।
संथारए अणाउत्तो, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१४॥

अन्वयार्थ—जो साधु (ससरक्खपाओ—सरजस्कपाद) सचित्त धूलिसे धूसरित पैर होनेपर (सुवइ—स्वपिति) सो जाता है तथा (सेज्जं न पडिलेहइ—शय्यां न प्रतिलेखयति) अपनी वसति की प्रतिलेखना नहीं करता है तथा (संथारए अणाउत्तो—सम्स्तारके अनायुक्तः) दर्भादिक के संस्तार में अनुपयुक्त रहता है कारणके बिना रात्रि के प्रथम याम (प्रहर) में ही सो जाता है तथा कुक्कुटी (कुकडी—मुर्गी) के समान पैर पसारकर सोता है वह साधु पापश्रमण कहा गया है ।

दुद्धदही विगइओ, आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवोकम्मे पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१५॥

अन्वयार्थ—जो साधु कारण विना (अभीक्खणं—अभीक्ष्णम्) पुन पुन (दुद्धदही—दुग्धदधिनी) दुग्ध दहीरूप (विगइओ—विकृति) विकृतियो को तथा उपलक्षण से घृतादिक अशेष विकृतियों को (आहारेइ—आहारयति) आहार करता है तथा (तवोकम्मे अरए—तप कर्मणि अरत) अनशन आदिक तपस्या में लवलीन नहीं रहता है तपस्याओं को नहीं करता है वह साधु पापश्रमण है ।

अत्थंतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१६॥

अन्वयार्थ—जो साधु (अत्थंतम्मि य सूरम्मि—अस्तान्ते च सूर्ये) सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक (अभीक्खणं - अभीक्ष्णम्) पुन-पुन, बिना विशेष कारण के (आहारेइ—आहारयति) खाता रहता है (चोइओ—नोदित) श्रुत अध्ययन, वाचन आदि रूप ग्रहण शिक्षा में तथा यथावस्थित साध्वाचारपालनरूप तथा यथाकाल प्रतिलेखना-प्रतिक्रमण करना आदि रूप आसेवन शिक्षा में गुर्वादिकों के द्वारा प्रेरित होने पर (पडिचोइए—*प्रतिनोदयति) जो स्वयं गुरुओं के साथ* वादविवाद करने लग जाता है—जैसे आप उपदेश देने में इतने बडे दक्ष हैं उतने क्रिया में दक्ष नहीं हैं—यदि ऐसी ही बात है तो आप ही क्यों नहीं कर लेते इत्यादि । इस प्रकार का साधु पापश्रमण कहा गया है ।

आयरिय परिच्चाइ, परपासंडसेवए।
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१७॥

अन्वयार्थ—जो साधु (आयरिय परिच्चाइ—आचार्यपरित्यागी) आचार्य का परित्याग कर देता है अर्थात् जब वे कुछ काम करने के लिए कहते हैं तब उनसे ऐसा कहता है कि आप इन समर्थ वृद्धादिक साधुओं से तो काम कराते नहीं, केवल मुझे ही कार्य करने के लिए प्रेरित किया करते हैं। स्वाध्याय करने में समर्थ इन वृद्धादिक मुनियों को तो आप स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित नहीं करते मुझे ही—जो इस काममें समर्थ नहीं हूं तब भी प्रेरित किया करते हैं। भिक्षा में लभ्य अन्नादिक सामग्री आप बालग्लान मुनियों को तो देते हैं—मुझे तो नहीं, उल्टा मुझसे आप यही कहते रहते हैं कि आप तप करो। भला यह भी कोई बात है? इस प्रकार दोष देकर के वह पापश्रमण साध्वाचार पालन करने में असमर्थ होने की वजह से तथा आहार आदिक में लोलुपी होने की वजह से आचार्यका परित्याग कर देता है। तथा (परपासडसेवए—परपासडसेवक) जिनोक्त धर्म को छोड़कर वह परधर्म का आराधक हो जाता है (गाणगणिए—गाणगणिक) तथा स्वच्छन्द होने से वह छ. माह के भीतर ही अपने गच्छ का परित्याग कर दूसरे गच्छ में चला जाता है। इसीलिए (दुब्भूए—दुर्भूत.) दुराचारी होने के कारण अतिनिन्दा का पात्र बनता है। ऐसा साधु पापश्रमण कहलाता है।

सयं गेहं परिच्चज्ज परगेहंसि वावरे।
निमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१८॥

अन्वयार्थ—जो साधु (सयं गेहं—स्वक गेहं)अपने घरको छोड़कर मुनिव्रत धारण कर (परगेहंसि वावरे—परगेहे व्याप्रियते) गृहस्थ के घरपर आहारार्थी होकर उसका कार्य करता है और (निमित्तेण य ववहरइ—निमित्तेन व्यवहरति)शुभ और अशुभ के कथनरूप निमित्त से द्रव्य को एकत्रित करता है अथवा गृहस्थ आदि के निमित्त क्रय-विक्रयादि करता है (पावसमणे त्ति वुच्चइ—स पापश्रमण इत्युच्यते) वह पापश्रमण कहलाता है।

सनाइपिंडं जेमेइ, निच्छइ सामुदाणियं।
गिहिनिसिज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१९॥

अन्वयार्थ—जो साधु (सनाइपिंड—स्वज्ञातिपिण्डम्) स्वज्ञातिपिण्ड को अगारावस्था के अपने बन्धुओं द्वारा प्रदत्त भिक्षा को (जेमेइ—जेमति) खाता

है और (सामुदाणिय निच्छइ—सामुदानिकम् नेच्छति) अनेक गृहों से लायी हुई भिक्षा नही करता तथा (गिहि निसज्ज च वाहेइ—गृहिनिपद्या च वाहयति) गृहस्थजनों की शय्या पर बैठता है वह साधु पापश्रमण कहलाता है।

एयारिसे पंचकुसीलऽसंवुडे, रूवंधरे मुणिवराण हिट्ठिमे ।
एयंसिलोए विसमेव गरहिए, न से इहं नेव परत्थ लोए ॥२०॥

अन्वयार्थ—जो (एयारिसे—एतादृश) ऐसा साधु होता है वह (पचकु-सीलऽसवुडे—पचकुशीलासवृत्त) पंचकुशीलो के समान अनिरुद्ध आस्रव द्वारवाला होता है पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, ससक्त और यथाच्छन्द ये पचकुशील साधु हैं जो अपने आचार मे शिथिल होता है वह पार्श्व है। साधु-क्रियाओं की आराधना जो खेद खिन्न होता है वह अवसन्न है। उत्तरगुणो की प्रतिसेवा से जिसका आचार दुष्ट होता है वह कुशील है। दधिदुग्ध आदि विकृतियो मे जो आसक्तचित्त रहता है अथवा उत्कृष्ट चारित्रियों मे जो उत्कृष्ट चारित्र का पालन करता है एवं शिथिलाचारियों मे शिथिलाचारी भी बन जाता है इस प्रकार बहु-रूपी जो साधु होता है वह ससक्त है। शास्त्रीय मर्यादा का परिहार कर अपनी इच्छानुसार जो चलता है वह यथाच्छद है। ये पांच कुशील जिनमत मे अवन्दनीय कहे गए हैं।

उक्तंच—"पासत्थो आसन्नो होइ, कुसीलो तहेव संसत्तो ।
अहच्छंदो वियएए, अवंदणिज्जा जिणमयम्मि ॥

(रूवधरे—रूपधर.) तथा मुनिवेषका ही वह धारक होता है। इसलिए (मुणिवराण हिट्ठिमे—मुनिवराणामधस्तन) वह सदा मुनियों के बीच में अत्यन्त निकृष्ट माना जाता है तथा वह (एयंसि लोए—अस्मिन् लोके) इस लोक में (विसमेव गरहिए—विषमिव गर्हितः) विष के समान गर्हित होता है. (से—स) ऐसा वह साधु (इह परत्थलोए नेव—इहपरलोके न भवति) न तो इस लोक का रहता है न परलोक का। अर्थात् उसके ये दोनो भव बिगड जाते हैं। क्योंकि वह इस लोक मे चतुर्विध सघ के द्वारा अनादरणीय होता है तथा श्रुतचारित्र का विराधक होने से परलोक मे वह स्वर्गमोक्ष आदि के सुखो का भी अधिकारी नही रहता। अतः उसका जन्म निरर्थक ही जाता है।

जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे ।
अयंसि लोए अमयंव पूइए, आराहए लोगमिणं तहा परं त्तिबेमि ॥२१॥

अन्वयार्थ—(जे—य)जो साधु (एए दोसे—एतान् दोपान्) इन ज्ञानातिचा-रादिक ज्ञानाचार आदि सम्बन्धि दोषों को (सया उ वज्जए—सदा तु वर्जयति

सदैव दूर कर देता है, उनका सदा के लिये परित्याग कर देता है।(से मुनीण मज्झे गुरुवए होइ — स मुनीनां मध्ये गुरुको भवति) वह मुनियों के बीच महान् ग-धारी माना जाता है। तथा वह (अच्चि लोए — अर्च्यते लोके) इस लोक में (अमयं व — अमृतमिव) अमृत के समान पुरुष-पूजित आदरणीय होता है। चतुर्विध संघ के द्वारा आदरणीय होकर वह (इमं लोग तहा परं लोग आराहइ— इम लोक तथा परलोक आराधयति।) अर्थात् इस लोक तथा परलोक को भी सफल बना लेता है।(त्ति बेमि — इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ—अर्थात् सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कह रहे हैं कि जैसा मैंने श्री वीर प्रभु से सुना है सो तुम से कहा है। अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा है।

इति पापश्रमण नामक सत्रहवाँ अध्ययन समाप्त।

अठारहवाँ अध्ययन

कंपिल्ले नयरे राया, उदिन्नबलवाहणे ।
णामेण संजए णामं, मिगव्वं उवणिग्गए ॥१॥

अन्वयार्थ—(उदिन्नबलवाहणे—उदीर्णबलवाहन) शरीर के सामर्थ्य अथवा चतुरग सैन्य का नाम बल है, गज, अश्व, शिविका आदि का नाम वाहन है। ये दोनों जिसके विशिष्ट उदयको प्राप्त हो चुके हैं ऐसा,(नामेण सजए—नाम्ना सजय) सजय नाम का प्रसिद्ध राजा (कम्पिल्ले नयरे—काम्पिल्ये नगरे) काम्पिल्य नगर मे था। वह राजा एक दिन (मिगव्व उवणिग्गए—मृगव्यमुपनिर्गत) शिकार खेलने के लिए नगर से निकला।

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ॥२॥

अन्वयार्थ—वह राजा (महया हयाणीए—महता हयानीकेन) विशाल अश्वसेना से, (गयाणीए - गजानीकेन) गज सेना से, (रहाणीए-रथानीकेन) रथसेना से, तथैव (पायत्ताणीए—पादातानीकेन) पदातिसेना से (सव्वओ—सर्वतः) चारों ओर से (परिवारिए—परिवारित)परिवृत होता हुआ घिरा हुआ (विनिग्गए—विनिर्गत) नगर से शिकार खेलने के लिए निकला।

मिए छुभित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाण केसरे ।
भीए संते मिए तत्थ, बहेइ रसमुच्छिए ॥३॥

अन्वयार्थ—(रसमुच्छिए—रसमूर्च्छित) मृग-मास के स्वाद का लोलुप वह सजय राजा (हयगओ—हयगत) घोडे पर सवार होकर (कम्पिल्लुज्जाण-केसरे—काम्पिल्योद्यानकेशरे) काम्पिल्य नगर के केशर नामक उद्यान मे पहुँचा और वहाँ पहुँचकर उसने (मिए छुभित्ता—मृगान् क्षोभयित्वा) मृगों को प्रेरित किया। जब वे (भीए—भीतान्) उसको मरणभय से त्रस्त (सते—श्रान्तान्) श्रान्त हुए, उनमें से इसने (मिए—मितान्)कितनेक मृगोको (बहेइ-हन्ति) मारे।

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणसजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायइ ॥४॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) जब राजा मृगों का शिकार कर रहा था उस समय (केसरम्मि उज्जाणे—केशरे उद्याने) उस केशर नाम के उद्यान में (सज्झायज्झाणसजुत्ते—स्वाध्यायध्यानसयुक्त) स्वाध्याय—शास्त्राध्ययन में एवं धर्म-ध्यान में तत्पर (अणगारे—अनगार) एक मुनिराज (तवोधणे—तपोधन) तप ही जिसका धन है (धम्मज्झाणं झियायइ—धर्मध्यान ध्यायति) आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय एवं संस्थानविचय रूप धर्म-ध्यान का चिन्तन कर रहे थे ।

अप्फोवमंडवम्मि, झायइ खवियासवे ।
तस्सगए मिगे पासं, वहेइ से णराहिवे ॥५॥

अन्वयार्थ—(खवियासवे—क्षपितास्रवः) आस्रवों को दूर करनेवाले वे गर्दभालि अनगार (अप्फोवमण्डवम्मि—अप्फोवमण्डपे) वृक्षादि से व्याप्त तथा नागवल्लि आदिसे आच्छादित मंडपमें (झायइ—ध्यायति) धर्म-ध्यान कर रहे थे, (तस्स पास आगए मिए से णराहिवे वहेइ—तस्य पार्श्वं आगतान् मृगान् स नराधिप हन्ति) इन मुनिराज के पासमें आए हुए उन मृगोंको उस राजाने मारा ।

अह आसगओ राया खिप्पमागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता अणगारं तत्थ पासई ॥६॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) जब मृग मर चुके तब (आसगओ—अश्वगत) घोड़े पर चढ़ा हुआ । (सो राया—स राजा) वह राजा (खिप्प—क्षिप्र) शीघ्र ही (तहिं—तत्र) उस स्थान पर (आगम्म—आगम्य) आकर (हए मिए उ पासित्ता—हतान् मृगान् दृष्ट्वा) मरे हुए मृगों को देखने लगा । इतनेमें ही (तत्थ अणगार पासई—तत्र अनगार पश्यति) उसकी दृष्टि एक मुनिराज पर पड़ी जो वहीं बैठे हुए थे ।

अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणा हओ ।
मए उ मंद पुन्नेणं रसगिद्धेण घित्तुणा ॥७॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) इसके बाद (तत्थ—तत्र) उस मुनिराज के दिखने पर (संभंतो—संभ्रान्तः) भयत्रस्त (राया—राजा) राजाने ऐसा विचार किया कि मुनिराज के मृगों को मार देने से (मदपुन्नेण—मन्दपुण्येन)

पुष्पहीन (रसगिद्धेण—रसगृद्धेन) तथा रसलोलुप मूर्ख (घित्तुणा—घातकेन) घातक ने मृगो को नहीं मारा है किन्तु (मणा—मनाक्) व्यर्थ ही उन (अणगारो—अनगार:) मुनिराज को (आहओ—आहत) मारा है।

अासं विसज्जइत्ताणं अणगारस्स सो निवो ।
विणयेणं वंदइ पाए, भगवं ! एत्य मे खमे ॥८॥

अन्वयार्थ—(सो निवा—स नृप.) उस राजाने (आस विसज्जइत्ताण—अश्व विसृज्य खलु) घोड़े को छोड़कर (विणयेण—विनयेन) बड़े विनय के साथ (अणगारस्स पाए वदइ—अनगारस्य पादौ वन्दते) उन मुनिराज के दोनों चरणों में अपना मस्तक झुका दिया और कहने लगा (भगव —भगवन्) हे नाथ ! (एत्थ मे खमे—अत्र मे क्षमस्व) इस मृगवधसे होने वाले मेरे अपराध को आप क्षमा करें।

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिओ ।
रायाण ण पडिमंतेइ, तओ राया भयद्दुओ ॥९॥

अन्वयार्थ—उस समय (मोणेण—मौनेन) मौन से (भगव अणगारे—भगवान् अनगार:) वे माहात्म्यसम्पन्न मुनिराज(झाणमस्सिओ—ध्यानमाश्रित) धर्म-ध्यानमें लवलीन बने हुए थे। इसलिए (रायाण पडि ण मतेइ—राजान प्रति न मन्त्रयति) राजा की बातों का उन्होंने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। (तओ राया भयद्दुओ—तत: राजा भयद्रुत.) इस परिस्थितिको देखकर राजा भयसे विशेष त्रस्त हो गया।

संजओ अहमस्सीति भगवं वाहराहि मे ।
कुद्धो तेएण अणगारे, दहेज्ज नरकोडिओ ॥१०॥

अन्वयार्थ—पुन राजाने कहा—हे भगवन् ! (अहं संजओ राया अस्सि—अहं संजयो राजा अस्मि) मैं संजय नामका राजा हूँ। अब आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप (मे वाहराहि—माम् व्याहर) मुझसे कुछ कहें। क्योंकि (तेएण कुद्धो अणगारो नरकोडिओ दहेज्ज—तेजसा क्रुद्ध अनगार. नरकोटिर्दहेत्) तेजोलेश्या के द्वारा क्रुद्ध अनगार अनेक कोटि मनुष्यों को भी भस्म कर सकता है, मुझ एककी तो बात ही क्या। आप नहीं बोल रहे, इसलिए मैं भयभीत हूँ ! हे नाथ ! आप क्रोध न करें, यही नम्र प्रार्थना है।

अभओ पत्थिवा ! तुज्झं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥११॥

अन्वयार्थ—राजा की प्रार्थना सुनकर मुनिराजने कहा—(पत्थिवा

मुक्त होकर परभवमें अकेला ही जाता है। अब यह बात सुनिश्चित है कि आत्मा के साथ शुभाशुभ कर्म ही जाते हैं, तो हे राजन्! शुभ कर्महेतुक जो तप है, उसको तुम करो।

सोऊणं तस्स सो धम्मं अणगारस्स अंतिए।
महया संवेग निव्वेयं समावन्नो नराहिवो ॥१८॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उन (अणगारस्स—अनगारस्य) मुनिराज के (अंतिए—अन्तिके) समीप (धम्मं सोऊण—धर्मं श्रुत्वा) श्रुत चारित्र रूप धर्म का उपदेश सुनकर (सो नराहिवो—स नराधिप:) उस संजय राजा को (महया संवेगनिव्वेयं समावन्नो—महासंवेगनिर्वेदसमापन्न) अत्युत्कृष्ट संवेग(मुक्ति-प्राप्तिकी अभिलाषा)तथा निर्वेद(संसार से वैराग्य)प्राप्त हो गया।

संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥१९॥

अन्वयार्थ—(संजओ—संयत) संवेग एवं निर्वेद से युक्त संजय राजाने (रज्जं चइउं—राज्यं त्यक्त्वा) राज्य का परित्याग करके (अणगारस्स गद्दभालिस्स भगवओ—अनगारस्य गर्दभाले: भगवतः) मुनिराज गर्दभालि महाराज के (अंतिए—अन्तिके) पास (जिणसासणे निक्खंतो—जिनशासने निष्क्रान्तः) जिनेन्द्रदीक्षा धारण करली।

चिच्चा रज्जं पव्वइए, खत्तिए परिभासई।
जहा ते दीसइ रूवं, पसन्नं ते तहा मणो ॥२०॥

अन्वयार्थ—(खत्तिए—क्षत्रिय:)क्षत्रियने (रज्जं चिच्चा—राज्यं त्यक्त्वा) राज्य का परित्याग करके (पव्वइए—प्रव्रजित:) दीक्षा धारण की थी। यह क्षत्रिय राजऋषि थे तथा पूर्व जन्म मे वैमानिक देव थे। किसी निमित्त को पाकर इनको जाति-स्मरण ज्ञान हुआ। पूर्वजन्म की स्मृति आ जानेके कारण सर्वविरति का उदय आजाने से शीघ्र ही राज्य का परित्याग करके दीक्षित हुए और विहार करते हुए यहाँ आए थे। सो उन्होंने संयत मुनि को देखकर पूछा—हे मुने! (जहा ते रूवं दीसइ—यथा ते रूपं दृश्यते) जैसा तुम्हारा रूप विकाररहित दिख रहा है। (तहा—तथा) उसी प्रकारसे (ते मणो पसन्नं दीसइ—ते मन. प्रसन्नं दृश्यते) तुम्हारा मन भी विकाररहित प्रसन्न दिखाई देता है।

किं णामे किं गोत्ते, कस्सट्ठाए या माहणे ?
कहं पडियरसी बुद्धे ! कहं विणीयेत्ति वुच्चसि ॥२१॥

अन्वयार्थ—हे मुने ! (किं णामे—किम् नाम) आपका क्या नाम है ? तथा (किं गोत्ते—किं गोत्रः) गोत्र आपका क्या है ? (कस्सट्ठाए व माहणे—कस्मै वा अर्थाय त्व माहन) किस प्रयोजन को लेकर आप दीक्षित हुए हैं ? तथा (बुद्धे कहं पडियरसी—बुद्धान् कथं प्रतिचरसि) आचार्यों की किस तरह से आप सेवा करते हैं ? और आप (कहं विणीएत्ति वुच्चसि—कथं विनीत इत्युच्यसे) विनयवान् हैं, यह बात कैसे घटित हुए हैं अर्थात् आप विनयशील कैसे बने ?

संजओ नाम नामेणं, तहा गोत्तेण गोयमे ।
गद्भाली ममायरिया, विज्जा चरणपारगा ॥२२॥

अन्वयार्थ—हे मुने ! (नामेण संजओ नाम—नाम्ना संजय नाम) मैं नाम से संजय हूं अर्थात् मेरा नाम संजय है तथा (गोत्तेण गोयमे—गोत्रेण गौतम. अस्मि) मैं गोत्र से गौतम हूं अर्थात् गौतम-गोत्री हूँ। तथा (विज्जा चरणपारगा गद्भाली ममायरिया—विद्याचरणपारगा गर्दभालि मम आचार्य. सन्ति) श्रुतचारित्रपारगत गर्दभालि नामक आचार्य मेरे गुरु हैं।

किरियं अकिरियं विणयं, अन्नाणं च महामुणी ।
एतेहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासई ॥२३॥

अन्वयार्थ—हे महामुने ! (किरियं—क्रिया) जीवादिकों की सत्तारूप क्रिया तथा (अकिरियं—अक्रिया) जीवादिक पदार्थों की नास्तित्वरूप अक्रिया तथा (विणयं—विनय) सबको नमस्कार करने रूप विनय एवं (अन्नाणं—अज्ञानम्) वस्तुतत्त्व का ज्ञान (एतेहिं चउहिं ठाणेहिं—एतैः चतुर्भि. स्थानै) इन चार स्थानों द्वारा अपने-अपने अभिप्राय से कल्पित इन चार हेतुओं द्वारा (मेयन्ने—मेयज्ञाः) अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जिन्होंने वस्तुका स्वरूप परिकल्पित किया है ऐसे सर्वज्ञ के सिद्धान्त से बहिष्कृत कुतीर्थि जन (किं पभासइ—किं प्रभाषन्ते) कुत्सित ही तत्वों की प्ररूपणा करते हैं।

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुडे ।
विज्जाचरणसंपन्ने सच्चे सच्चपरक्कमे ॥२४॥

अन्वयार्थ—(बुद्धे—बुद्धः) बुद्ध—तत्त्वज्ञाता (परिनिव्वुडे—परिनिर्वृत.) कषायरूप अग्नि के सर्वथा शान्त हो जाने से सब तरह से शीतीभूत हुए तथा

([illegible]) आदिक चार तर्क वादिन ने कहा, इसलिए (वओ—वचः) [illegible] बोलने वाले [illegible] ([illegible]) [illegible] से ही (इह [illegible]) वे क्रियावादी आदिक [illegible] होते हैं। इनको [illegible] में लेना नहीं कहा है।

पडंति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं ॥२५॥

अन्वयार्थ—(पावकारिणो—पापकारिणः) क्रियावादी आदि वादियों द्वारा की गई असत्प्ररूपणा के सेवन करने में तत्पर (जे—ये) जो (नरा—नराः) मनुष्य हैं वे (घोरे नरए पडंति—घोरे नरके पतन्ति) मर कर भयंकर नरक-स्थान में जाते हैं। (च आरियं धम्मं चरित्ता—च आर्यं धर्मं चरित्वा) जिन-प्रतिपादित धर्म का सेवन करते हैं वे उसके सेवन से (दिव्वं गइं गच्छंति—दिव्यां गतिं गच्छन्ति) देवलोक का अथवा समस्त गतियों में प्रधानभूत सिद्धगति को प्राप्त करते हैं। इसलिए हे मुने ! असत्प्ररूपणा का परित्याग करके आपको सत्प्ररूपणा में लगा रहना चाहिए।

मायावुइयमेयं तु मुसा भासा निरट्ठिया ।
संजममाणो वि अहं, वसामि इरियामि य ॥२६॥

अन्वयार्थ - हे संजय मुने ! क्रियावादी आदि के द्वारा जो प्ररूपणा की जाती है (एय—एतत्) यह सब (मायावुइय—मायोक्तम्) माया से ही कहा गया है तथा (मुसा भासा निरट्ठिया—मृषा भाषा निरर्थिका) इनकी भाषा सर्वथा अलीक (असत्य) है और निरर्थक (अकल्याणकारी) है। इसलिए (अहं संजममाणो वि अहं—संयच्छन्नपि) मैं पाखंडी के सिद्धान्तों को श्रवणादि से दूर होकर निश्चय से (वसामि—वसामि) अपने आत्मभाव में रमण करता हूं। यह बात संयत मुनि की स्थिरता के निमित्त ही क्षत्रिय राजा ऋषि ने कही है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मैं क्रियावादी आदि की असत्प्ररूपणा से परे रहता हूं, उसी प्रकार आपको भी दूर रहना चाहिए। कहा भी है - "ठियो य ठानए पर" जो स्वयं स्थित होता है वही दूसरों को भी स्थिर कर सकता है तथा मैं(य इरियामि -चरामि)संयम मार्ग में विचरण करता हूं।

सव्वे ते विदिता मज्झं मिच्छादिट्ठी प्रणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पगं ॥२७॥

अन्वयार्थ—हे संजय मुने ! (ते सव्वे मिच्छादिट्ठी प्रणारिया मज्झ विदिता ते सर्वे मिथ्यादृष्टय: अनार्या मम विदिता) पूर्वोक्त वे सब क्रियावादी आदि मिथ्यादृष्टि हैं तथा अनार्य हैं; यह मैं अच्छी तरह से जानता हूं । तथा मैं (विज्जमाणे परे लोए—विद्यमाने परे लोके, सब विद्यमान परलोक में अनेक प्रकार की यातनाओं का अनुभव करेंगे, नरक-निगोदादिक के भयंकर कष्टों को सहन करेंगे, यह बात भी मैं (सम्म जाणामि—सम्यक् जानामि) अच्छी तरह जानता हूं. अथवा "परो लोको विद्यमानो" परलोक का अस्तित्व है, यह बात भी मैं अतिशय ज्ञान से जानता हूं तथा जातिस्मरण ज्ञान के साथ मैं (अप्पगं सम्म जाणामि—आत्मानं सम्यक् जानामि) मैं अपनी आत्मा को भी जानता हूं । इसीलिए मैं उनकी संगति से दूर हूं ।

अहमासि महापाणे, जुइमंवरिससग्रोवमे ।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससग्रोवमा ॥२८॥

अन्वयार्थ—हे मुने ! (महापाणे—महाप्राणे) ब्रह्मनामक पांचवें देवलोक महाप्राण नामक विमान में (अह—अहम्) मैं, जुइमं द्युतिमान्) दीप्ति विशिष्ट (वरिससग्रोवमे—वर्षशतोपम अहम्) सौ वर्ष की पूर्ण आयु वाले जीव के समान था, अर्थात् मनुष्य की उत्कृष्ट आयु सौ वर्ष है । यदि वह सौ वर्ष जीता है तो पूर्णायुष्क कहलाता है । इसी प्रकार मैं भी विमान में परिपूर्ण आयुवाला देव था । देवलोक में आयु पल्योपम व सागरोपम प्रमाण की होती है । सो यहां पाली शब्द से पल्यप्रमाण व महापाली शब्द से सागर-प्रमाण स्थिति ग्रहण करनी चाहिए । राजऋषि कह रहे हैं कि वहां पर मेरी (दिव्वा—दिव्या) देव सम्बन्धी स्थिति (वरिससग्रोवमा महापाली—वर्षशतोपमा महापालि·) मनुष्य-पर्याय में सौ वर्ष प्रमाण आयु भोगने वाले जीव के समान दस सागर की पूर्ण स्थिति थी ।

से चुग्रो बंभलोगाग्रो, माणुस्सं भवमागग्रो ।
अप्पणो य परेसिं च, ग्राउं जाणे जहा तहा ॥२९॥

अन्वयार्थ—(सह—प्रय) देवभव सम्बन्धी आयु पूर्ण होने पर (बम्भलोगाम्रो चुग्रो—ब्रह्मलोकात्-च्युत:) उस पंचम देवलोक से चलकर मैं (माणुस्स भवमागग्रो—मानुष्य भवमागत:) मनुष्य सम्बन्धी भव में आया हूं । इस प्रकार

(विज्जाचरणसम्पन्नो —विद्याचरणसम्पन्न) क्षायिक ज्ञान एवं चारित्र से सम्पन्न, इसलिए (सच्चे—सत्य.) सत्य बोलने वाले आप्त तथा (सच्चपरक्कमे —सत्यपराक्रम) अनन्तवीर्यसम्पन्न ऐसे (नायए—ज्ञायकः) ज्ञातिपुत्र महावीर प्रभु ने ही (इइ पाउकरे—प्रादुरकार्षीत्) ये क्रियावादी आदिक कुमत बोलते हैं। हमने अपनी तरफ से ऐसा नहीं कहा है।

पडंति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।
दिव्वं च गइं गच्छन्ति, चरित्ता धम्ममारियं ॥२५॥

अन्वयार्थ—पावकारिणो पापकारिणः) क्रियावादी आदि व्यक्तियों द्वारा की गई असत्प्ररूपणा के सेवन करने में परायण(जे—ये) जो (नरा—नराः) मनुष्य हैं वे (घोरे नरए पडंति—घोरे नरके पतन्ति) मर कर भयकर नरकावास मे जाते हैं। (च आयरियं धम्म चरित्ता—च आर्यं धर्मं चरित्वा) जिन-प्ररूपित धर्म का सेवन करते हैं वे उनके सेवन से (दिव्वं गइं गच्छन्ति—दिव्यां गतिं गच्छन्ति) देवलोक को अथवा समस्त गतियो में प्रधानभूत सिद्धगति को प्राप्त करते हैं। इसलिए हे मुने! असत्प्ररूपणा का परित्याग करके आपको सत्प्ररूपणा मे लगा रहना चाहिए।

मायावुइयमेयं तु मुसा भासा निरट्ठिया।
संजममाणो वि अहं, वसामि इरियामि य ॥२६॥

अन्वयार्थ – हे संजय मुने! क्रियावादी आदि के द्वारा जो प्ररूपणा की जाती है (एयं—एतत्) यह सब (मायावुइयं—मायोक्तम्) माया से ही कहा गया है तथा (मुसा भासा निरट्ठिया—मृषा भाषा निरर्थिका) इनकी भाषा सर्वथा अलीक (असत्य) है और निरर्थक (अकल्याणकारी) है। इसलिए (अहं संजममाणो वि अहं—संयच्छन्नपि) मैं पाखंडी के सिद्धान्तो को श्रवणादि से दूर होकर निश्चय से (वसामि—वसामि) अपने आत्मभाव मे रमण करता हूं। यह बात अपन मुनि की स्थिरता के निमित्त ही क्षत्रिय राजा ऋषि ने कही है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मैं क्रियावादी आदि की असत्प्ररूपणा से परे रहता हू, उसी प्रकार आपको भी दूर रहना चाहिए। कहा भी है—"ठिओ य ठावए परं" जो स्वयं स्थिर होता है वही दूसरों को भी स्थिर कर सकता है तथा मैं(य इरियामि –चरामि)संयम मार्ग में विचरण करता हूं।

सव्वे ते विदिता मज्झं मिच्छादिट्ठी अणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पगं ॥२७॥

अन्वयार्थ—हे संजय मुने ! (ते सव्वे मिच्छादिट्ठी अणारिया मज्झ विदिता – ते सर्वे मिथ्यादृष्टय: अनार्या. मम विदिता पूर्वोक्त वे सब क्रियावादी आदि मिथ्यादृष्टि हैं तथा अनार्य हैं, यह मैं अच्छी तरह से जानता हू । तथा ये (विज्जमाणे परे लोए—विद्यमाने परे लोके, सब विद्यमान परलोक मे अनेक प्रकार की यातनाओ का अनुभव करेंगे, नरक-निगोदादिक के भयकर कष्टो को सहन करेंगे, यह बात भी मैं (सम्म जाणामि—सम्यक् जानामि) अच्छी तरह जानता हू. अथवा "परो लोको विद्यमानो" परलोक का अस्तित्व है, यह बात भी मैं अतिशय ज्ञान से जानता हू तथा जातिस्मरण ज्ञान के लाभ से (अप्पग सम्म जाणामि—आत्मान सम्यक् जानामि) मैं अपनी आत्मा को भी जानता हू । इसीलिए मैं उनकी सगति से दूर हू ।

अहमासि महापाणे, जुइमंवरिससओवमे ।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमा ॥२८॥

अन्वयार्थ—हे मुने ! (महापाणे—महाप्राणे) ब्रह्मनामक पाचवें देवलोक महाप्राण नामक विमान में (अह—अहम्) मैं, जुइमं द्युतिमान्) दीप्ति विशिष्ट (वरिससओवमे—वर्षशतोपम अहम्) सौ वर्ष की पूर्ण आयु वाले जीव के समान था, अर्थात् मनुष्य की उत्कृष्ट आयु सौ वर्ष है । यदि वह सौ वर्ष जीता है तो पूर्णायुष्क कहलाता है । उसी प्रकार मैं भी विमान मे परिपूर्ण आयुवाला देव था । देवलोक मे आयु पल्योपम व सागरोपम प्रमाण की होती है । सो यहाँ पाली शब्द से पल्यप्रमाण व महापाली शब्द से सागर-प्रमाण स्थिति ग्रहण करनी चाहिए । राजऋषि कह रहे हैं कि वहाँ पर मेरी (दिव्वा—दिव्या) देव सम्बन्धी स्थिति (वरिससओवमा महापाली—वर्षशतोपमा महापालि) मनुष्य-पर्याय मे सौ वर्ष प्रमाण आयु भोगने वाले जीव के समान दस सागर की पूर्ण स्थिति थी ।

से चुओ बंभलोगाओ, माणुस्सं भवमागओ ।
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा ॥२९॥

अन्वयार्थ—(अह—अय) देवभव सम्बन्धी आयु पूर्ण होने पर (बंभलोगाओ चुओ—ब्रह्मलोकात्-च्युत:) उस पचम देवलोक से चलकर मैं (माणुस्स भवमागओ—मानुष्य भवमागत.) मनुष्य सम्बन्धी भव मे आया हूं । इस प्रकार

अपने जातिस्मरणात्मक ज्ञान द्वारा बोध करके उस राजऋषि ने संजय मुनि से यह भी कहा कि मैं (अप्पणो परेसि च जहा आउ तहा जाणे—आत्मन परेषां च यथा आयु तथा जाने) अपना तथा दूसरों का आयु कितना है; वह भी मैं जानता हूं। उपलक्षण से गति को भी जानता हूं।

नाणारुइं च छंदं च परिवज्जिज्ज संजए ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ॥३०॥

अन्वयार्थ—हे संजय! (संजए—संयत.) साधु का कर्तव्य यह है कि वह (नाणारुइं च छंद च परिवज्जिज्ज—नानारुचिं च छंद च परिवर्जयेत्) क्रिया-वादी आदि अनेक प्रकार के मिथ्यात्वीयों की मतविषयक अभिलाषा का तथा अपनी बुद्धि द्वारा कल्पित अभिप्राय का परित्याग कर दे। तथा (अणट्ठा जेय सव्वत्था—अनर्था ये च सर्वार्था) समस्त अनर्थों का कारण जो प्राणाति-पातादिक दोषों का परित्याग करे। (इइ—इति) इस प्रकार की यह (विज्जामणु—विद्याम्) सम्यग्ज्ञानरूप विद्या को लक्ष्य में रखकर तुम (संचरे—संचरेः) संयम-मार्ग में रत रहो।

पडिक्कमामि पासिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ॥३१॥

अन्वयार्थ—हे संजय मुने! मैं (पासिणाणं पुणो परमंतेहिं वा—प्रश्नेभ्य पुन परमन्त्रेभ्यो वा) शुभाशुभ सूचक अंगुष्ठादि के प्रश्नों से अथवा गृहस्थजनों के तत्तत्कार्यालोचनरूप जो मन्त्र हैं उनसे (पडिक्कमामि—प्रतिक्रमामि) प्रति-निवृत्त हो गया हूं, अर्थात् अब मैं इस प्रकार के सावद्यरूप कर्म नहीं करता हूं। जो संजय इस प्रकार के सावद्यरूप प्रश्नादिक के व्यापार के परिवर्जन से संयम के प्रति सदा (उट्ठए—उत्थित) उत्थानशील बना रहता है (अहो—अहो) उसके विषय में क्या कहना है—ऐसा तो कोई ही महात्मा होता है। इसलिए हे संजय मुने! तुम इस अनन्तरोक्त अर्थको (विज्जा—विद्वान्) जानो और अहोरायं—अहोरात्रम्) प्रतिक्षण (तव चरे—तपश्चरे) सावद्यव्यापार विरति रूप तप का अनुष्ठान करो। प्रश्नादिक में संयम मत बिताओ।

जं च मे पुच्छसी काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ॥३२॥

अन्वयार्थ—हे संजय! (सुद्धेण चेयसा—शुद्धेन चेतसा) अति निर्मल चित्त से पूछ तुम (मे—माम्) मुझसे (काले पुच्छसी—काले पृच्छसि आयु के

विषय में जो पूछ रहे हो (ताइं—तत्) उस विषयक ज्ञान को (बुद्धे—बुद्ध) सर्वज्ञ महावीर प्रभु ने प्रकट किया है (तं नाणं—तत् ज्ञानम्) वह ज्ञान (जिणसासणे—जिनशासने) जिन प्ररूपित सिद्धान्त में ही है। अन्य सुगतादि प्रणीत शास्त्रों में नहीं है। इसलिए तुम जिनशासन में इस ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त प्रयत्नशील रहो। मैंने यह ज्ञान वहीं से प्राप्त किया है।

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए।
दिट्ठीए दिट्ठीसंपन्ने, धम्मं चरसुदुच्चरं ॥३३॥

अन्वयार्थ—हे संजय! (धीरे किरियं रोयए - धीरः क्रियां रोचयेत्) संयम में धृतिसम्पन्न मुनिका कर्त्तव्य है कि वह सदनुष्ठानात्मक प्रतिक्रमण एवं प्रतिलेखनारूप क्रिया को दोनों समय करे। तथा दूसरों से भी करावे। अथवा—"जीव है अजीव है।" इत्यादिरूप से जीव और अजीव की सत्ता को वह स्वयं स्वीकार करे और दूसरों को भी इसकी स्वीकृति करावे। तथा (अकिरियं परिवज्जए—अक्रियां परिवर्जयेत्) मिथ्यादृष्टियों द्वारा कल्पित अज्ञानरूप कष्ट क्रिया का अथवा जीव नहीं है, अजीव नहीं है इत्यादि जीवाजीव विषयक नास्तित्व क्रिया का परित्याग करे। और (दिट्ठिए—दृष्ट्या) सम्यग्दर्शनरूप बुद्धि के साथ (दिट्ठिसंपन्ने—दृष्टिसंपन्नः) सम्यक् ज्ञान से संपन्न बने। जब मुनि के लिए इस प्रकार का प्रभु का उपदेश है तब तुम भी (सुदुच्चरं धम्मं चर—सुदुश्चरं धर्मं चर) कायरजनों से दुराराध्य इस श्रुत चारित्र रूप धर्म की आराधना करने में सदा सावधान रहो।

एयं पुण्णं पयं सोच्चा, अत्थधम्मोवसोहियं।
भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाइं पव्वए ॥३४॥

अन्वयार्थ—(अत्थधम्मोवसोहियं अर्थधर्मोपशोभितम्) स्वर्ग मोक्षरूप पदार्थ से एवं इस पदार्थ की प्राप्ति में उपायभूत धर्म से शोभित (एयं पुण्णपयं सोच्चा - एतत्पुण्यपदं श्रुत्वा) इस पूर्वोक्त पुण्यपद को सुन करके (भरहो वि—भरतोऽपि) भरत नाम के प्रथम चक्रवर्ती ने भी (भारहं वासं कामाइं चिच्चा—भारतं वर्षं कामान् त्यक्त्वा) भारतवर्ष के समस्त साम्राज्य का तथा शब्दादिक रूप कामभोगों का परित्याग करके (पव्वइए—प्रव्रजित) दीक्षा अंगीकार की।

सगरो वि सागरंतं, भरहवासं नराहिवो।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुए ॥३५॥

अन्वयार्थ—हे संजय मुने! अब मैं तुमको सगर चक्रवर्ती का जो (नरा-

हिवो—नराधिप) नराधिप (सगरोवि—सगरोऽपि) सगरचक्रवर्ती भी (सागरंत सागरान्तम्) सागरपर्यंत तीन दिशाओं में समुद्रपर्यंन्त तथा उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवत्पर्यंन्त (भरहवास—भारतवर्ष का शासन करके पश्चात् उसके (केवल इस्सरिय—केवल ऐश्वर्यम्) असाधारण ऐश्वर्य को (हिच्चा—हित्वा) परित्याग करके (दयाए परिनिव्वुए—दयाय परिनिवृत्त) संयम की आराधना से मुक्ति को प्राप्त किया है।

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढीओ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं नाम महाजसो ॥३६॥

अन्वयार्थ—(महाजसो—महायशा) महायशस्वी—नवनिधि एवं चौदह-रत्नों के अधीश्वर अथवा वैक्रीयलब्धि से युक्त (मघव नाम चक्कवट्टी—मघवा नाम चक्रवर्ती) मघवा नाम के तृतीय चक्रवर्ती ने (भारहं वासं—भारत वर्षम्) भरतक्षेत्र के षट्खण्ड की ऋद्धि को (चइत्ता—त्यक्त्वा) त्यागकर (पव्वज्जमब्भुवगओ—प्रवज्यां अभ्युपगत) संयम लिया।

सणंकुमारो मणुस्सिंदो, चक्कवट्टी महिड्ढीओ।
पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं, सो वि राया तवं चरे ॥३७॥

अन्वयार्थ—लोक में प्रसिद्ध (महिड्ढीओ—महर्द्धिक) महाऋद्धि सम्पन्न (मणुस्सिंदो—मनुजेन्द्र) मनुष्यों में इन्द्र जैसे चतुर्थ (चक्कवट्टी—चक्रवर्ती) चक्रवर्ती (सणंकुमारो—सनत्कुमार अपि) सनत्कुमार ने भी (पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं-पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा) अपने पुत्र को राज्य पर बैठाकर (तवं चरे—तप आचरत्) चारित्र की आराधना की।

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३८॥

अन्वयार्थ—(महिड्ढिओ महर्द्धिक) चौदहरत्न एवं नवनिधि आदि ऋद्धियों से युक्त (चक्कवट्टी चक्रवर्ती) पंचम चक्रवर्ती (लोगसंतिकरे—लोके शान्तिकर) त्रिभुवन में सर्व प्रकार से शान्ति के कर्ता (संति—शान्ति) ऐसे शान्तिनाथ प्रभु जो कि सोलहवें तीर्थंकर हुए हैं (भारहवास—भारत वर्ष) भरत की ऋद्धि (चइत्ता—त्यक्त्वा) परित्याग करके (गइमणुत्तरं पत्तो—अनुत्तरां गतिं प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिरूप गति को प्राप्त किया है।

इक्खागरायवसभो, कुंथू नाम नराहिवो।
विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३९॥

अन्वयार्थ - (इक्खागराय वसभो—इक्ष्वाकुराजवृषभ) इक्ष्वाकुवंशीय—

मुरों में श्रेष्ठ (कुन्थु नाम नराहिवो-कुन्थुर्नामनराधिपः) कुन्थुनाम के छठवें चक्रवर्ती हुए हैं (विस्सुयकित्ती-विश्रुतकीर्ति) तथा वही प्रसिद्ध, कीर्तिमान (भगवं-भगवान्) अष्ट महाप्रतिहार्यों से सुशोभित सत्रहवें तीर्थंकर हुए हैं। इन्होंने (अणुत्तरं गइं पत्तो—अनुत्तरां गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिगति प्राप्त की है।

सागरंतं चइत्ताणं, भरहं नरवरीसरो।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

अन्वयार्थ (नरवरीसरो - नरवरेश्वर) नराधिप (अरो—अर) अर नामक सप्तम चक्रवर्ती ने (अरय पत्तो—अरज प्राप्त) वैराग्य प्राप्त करके (सागरंत भरहं—सागरान्तं भारतम्) इस सागरान्त भरत-क्षेत्र को (य—तु) निश्चय से (चइत्ता—त्यक्त्वा) परित्याग करके (अणुत्तरगइ पत्तो—अनुत्तरा गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिगति को प्राप्त किया। ये १८वें तीर्थंकर हुए हैं।

चइत्ता भरहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
चइत्ता उत्तमे भोगे, महापउमो तवं चरे ॥४१॥

अन्वयार्थ—(महिड्ढिओ- महर्द्धिक) चौदह रत्न एवं नवनिधि—आदि महाऋद्धियों के अधिपति (चक्कवट्टी—चक्रवर्ती) नवम चक्रवर्ती (महापउमो—महापद्म), (भरहं वास चइत्ता—भारत वर्षं त्यक्त्वा) इस समस्त भारतवर्ष का परित्याग करके तथा (उत्तमे भोगे चइत्ता - उत्तमान्भोगान् त्यक्त्वा) उत्तम भोगों का परित्याग करके (तव चरे—तप अचरत्) तपश्चर्यापूर्वक आराधना की और सकल कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारे।

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महीं माणनिसूरणो।
हरिसेणो मणुस्सिन्दो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

अन्वयार्थ—(माणनिसूरणो—माननिसूरण) मदोन्मत्त शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाला (मणुस्सिंदो मनुष्येन्द्र) २१वें तीर्थंकर की मौजूदगी में विद्यमान हरिषेण नाम के दसवें चक्रवर्ती ने (महीं—महीम्) इस पृथ्वी को (एगच्छत्तं—एकछत्री करके) पूर्णरूप से अपने अधीन करके पश्चात् (अणुत्तरं गइ पत्तो—अनुत्तराम् गतिं प्राप्तः) सर्वोत्कृष्ट मोक्ष रूप गति को प्राप्त किया।

अन्निओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४३॥

भूपों में श्रेष्ठ (कुन्थु नाम नराहिवो-कुन्थुर्नामनराधिपः) कुन्थुनाम के छठवें चक्रवर्ती हुए हैं (विस्सुयकित्ती-विख्यातकीर्तिः) तथा वही प्रसिद्ध, कीर्ति-सपन्न (भगवं-भगवान्) अष्ट महाप्रतिहार्यों से सुशोभित सत्रहवें तीर्थंकर हुए हैं। इन्होंने (अणुत्तरगइं पत्तो—अनुत्तरा गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिगति प्राप्त की है।

सागरंतं चइत्ताणं, भरहं नरवरीसरो।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

अन्वयार्थ - (नरवरीसरो – नरवरेश्वर.) नराधिप (अरो—अर) अर नामक सप्तम चक्रवर्ती ने (अरयं पत्तो—अरज प्राप्त) वैराग्य प्राप्त करके (सागरंतं भरहं—सागरान्त भारतम्) इस सागरान्त भरत-क्षेत्र का (ए—खलु) निश्चय से (चइत्ता—त्यक्त्वा) परित्याग करके (अणुत्तरगइ पत्तो—अनुत्तरां गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिगति को प्राप्त किया। ये १८वें तीर्थंकर हुए हैं।

चइत्ता भरहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
चइत्ता उत्तमे भोगे, महापउमो तवं चरे ॥४१॥

अन्वयार्थ—(महिड्ढिओ—महर्द्धिक) चौदह रत्न एवं नवनिधि—आदि महाऋद्धियों के अधिपति (चक्कवट्टी—चक्रवर्ती) नवम चक्रवर्ती (महापउमो—महापद्म), (भारहं वास चइत्ता—भारत वर्षं त्यक्त्वा) इस समस्त भारतवर्ष का परित्याग करके तथा (उत्तमे भोगे चइत्ता - उत्तमान्भोगान् त्यक्त्वा) उत्तम भोगों का परित्याग करके (तवं चरे—तप अचरत्) तपस्यापूर्ण आराधना की और सकल कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारे।

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महीं माणनिसूरणो।
हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

अन्वयार्थ—(माणनिसूरणो—माननिसूदन) मदोन्मत्त शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाला (मणुस्सिदो मनुष्येन्द्र) २१वें तीर्थंकर की मौजूदगी में विद्यमान हरिषेण नाम के दसवें चक्रवर्ती ने (मही—महीम्) इस पृथ्वी को (एगच्छत्तं—एकछत्रां कृत्वा) पूर्णरूप से अपने अधीन करके पश्चात् (अणुत्तर गइ पत्तो—अनुत्तराम् गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट मोक्षरूप गति को प्राप्त किया।

अन्निओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४३॥

अन्वयार्थ—नमिनाथ के शासन में (जयनामो—जयनामा) जय नामक ११वें चक्रवर्ती ने (जिणक्खाय – जिनाख्यातम्) जिनेन्द्र-प्रतिपादित श्रुतचारित्र-रूप धर्म को श्रवण कर (रायसहस्सेहिं अन्निओ—राजसहस्रैः अन्वित.) हजार राजाओं के साथ (सुपरिच्चाइ—सुपरित्यागी) (दम चरे—दमम् अचरत्) इन्द्रियों को उपशमित किया। इससे (अणुत्तरं गइ पत्तो—अनुत्तरां गति प्राप्त) सर्वोत्तम गति मोक्ष को प्राप्त हुए।

दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ता णं मुणी चरे।
दसण्ण भद्दो णिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥४४॥

अन्वयार्थ—(सक्खं सक्केण चोइओ – साक्षात् शक्रेण चोदितः) (मोहित) अधिक सम्पत्ति के दिखाने से धर्म के प्रति प्रेरित किये गये (दसण्णभद्दो—दशार्णभद्र) दशार्णभद्र नामक राजा (मुइयं दसण्णरज्जं चइत्ता—मुदित दशार्णराज्य त्यक्त्वा) दशार्णदेश के राज्य का परित्याग करके (णिक्खंतो—निष्क्रान्तः) दीक्षा अंगीकार करते हुए (मुणी चरे—मुनिः अचरत्) मुनि-अवस्थामें रहकर इस पृथिवीमण्डल पर अप्रतिबद्ध विहारी बने।

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊणं गेहं वैदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥४५॥

अन्वयार्थ—(नमी—नमिः) नमि नामक राजा ने (वैदेही—वैदेह) विदेह देश में उत्पन्न (गेह-गृहम्) गृह को (चइऊण—त्यक्त्वा) त्याग करके (सामण्णे पज्जुवट्ठिओ—श्रामण्ये पर्युपस्थित) चारित्र धर्म के अनुष्ठान करने में (सक्खं सक्केण चोइओ – साक्षात् शक्रेण चोदितः—प्रेरितः) (अप्पाणं नमेइ—आत्मानं नमयति) न्यायमार्ग में ही अपनी आत्मा को झुकाया था।

करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो।
नमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य नग्गई ॥४६॥
एए नरिंद वसहा, निक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥४७॥

अन्वयार्थ—(कलिंगेसु कलिंगेषु) कलिंग देश में (करकंडू—करकण्डू नाम का राजा) था (पंचालेसु दुम्मुहो य—पांचालेषु द्विमुखश्च) (विदेहेसु नमी राया) (गंधारेसु नग्गई—गान्धारेषु नग्नजित्) गंधार देश में नग्नजित। (एए नरिंदवसहा—एते नरेन्द्रवृषभा) (पुत्ते रज्जे ठवेऊण – पुत्रान् राज्ये स्थापयित्वा)

(जिणसासणे—जिनशासने) (निक्खंता—निष्कान्ता) दीक्षा ली। (सामण्णं पज्जुवट्ठिया—श्रामण्यं पर्युपस्थिताः) घोर चारित्र की ग्राराधना से मुक्ति प्राप्त की

सोवीररायवसहो, चइत्ताणं मुणी चरे।
उद्दायणो पव्वइग्रो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४८॥

ग्रन्वयार्थः— (सोवीररायसहो—सौवीरराजवृषभः) सौवीर देश के सर्वोत्तम राजा (उद्दायणो—उदायनः) (चइत्ताण—त्यक्त्वा) समस्त राज्य का परित्याग करके (पव्वइग्रो—प्रव्रजितः) मुनिदीक्षा ग्रंगीकार की ग्रौर उसी (मुणी चरे=मुनि.—चरत्) मुनि ग्रवस्था में रहते हुए उन्होंने (ग्रणुत्तर गइं पत्तो=सर्वोत्कृष्ट गति (मुक्ति) को प्राप्त किया।

तहेव कासीराया, सेग्रो सच्चपरक्कमे।
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं ॥४६॥

ग्रन्वयार्थ :—हे संयत मुने! (तहेव-तथैव) पूर्वोक्त इन भरत आदि राजाओं की तरह (सेग्रो सच्च परक्कमे-श्रेय सत्यपराक्रम) कल्याणकारक संयम में पराक्रमशाली (कासीराया-काशीराजः) काशी राजा मदन नामक जो सातवें बलदेव थे। (कामभोगे परिच्चज्ज-काम-भोगन् (रूपरसादीन्) परित्यज्य करके (कम्म महावण पहणे-कर्म-महावन प्राहन्) कर्मरूप घोर वन को उखाड़ (नष्ट) किया है।

तहेव विजयो राया, ग्राणट्ठाकित्ति पव्वए।
रज्जं तु गुण समिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥ ५० ॥

ग्रन्वयार्थ— (तहेव-तथैव) इसी प्रकार (ग्राणट्ठाकित्ति-आनष्टाकीर्तिः अकीर्ति-अपयश से रहित, अतएव (महाजसो-महायशा) महायशसपन्न (विजयोराया-विजयोराजा) विजय नामक द्वितीय बलदेव ने (गुणसमिद्ध रज्ज पहाय- गुणसमृद्धं राज्य प्रहाय) स्वामी, अमात्य, (मन्त्री) मित्र, खजाना, राष्ट्र, किला एवं सेना इन ७ राज्यांगों का परित्याग करके (पव्वए-प्राव्राजीत्) दीक्षा अंगीकार की।

तहेवुग्गं तवं किच्चा, ग्रव्वाक्खित्तेण चेयसा।
महब्बलो रायरिसो, ग्रादाय सिरसा सिरिं ॥ ५१ ॥

ग्रन्वयार्थ— (तहेव-तथैव) इसी तरह (महब्बलोरायरिसी—महाबल·

राजर्षि) महाबल नाम के राजर्षि ने (सिरि सिरसा आदाय-श्रिय शिरसा-आदाय) संयमरूप लक्ष्मी को शिर से सयान पूर्वक धारण करके (अव्वक्खित्तेण चेयसा-आव्याक्षिप्तेन चेतसा) शान्त मन से (उग्ग-तव किच्चा-उग्र तप कृत्वा) कठोर तप को करके, तृतीयभव में मुक्तिलाभ लिया है।

कहं धीरे अहेऊहिं, उम्मत्तोव्व महिं चरे।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ-- (धीरे-धीरे) प्रज्ञासम्पन्न होकर भी जो (उमत्तोव्व-उन्मत्त इव) मतवाले की तरह (अहेऊहिं-अहेतुभि) थोथी २ युक्तियों द्वारा तत्वों का अपलाप करता व्यर्थ बोलता रहता है। वह साधु (महीं कम चरे-महीं कथ चरेत्) पृथ्वी पर कैसे बिना रोक-टोक विहार कर सकता है? (एए-एते) ये पूर्वोक्त भरत आदि (विसेसमादाय-विशेषम्-आदाय) मिथ्या दर्शन में जैन दर्शन की विशेषता जानकर ही तो (सूरा-शूरा.) संयम के ग्रहण करने में शूर वीर होते हुए उसके परि-पालन करने में (दढ परक्कमा-दृढपराक्रमः) दृढ पराक्रम शील बने हैं।

अच्चन्तनियाणखमा, सच्चामे भासिया वई।
अतरिंसु तरंतेगे तरिस्संति अणागया ॥५३॥

अन्वयार्थ--(अच्चन्तनियाणखमा-अत्यन्ते निदान क्षमाः) कर्ममल--को दूर करने में अत्यन्त समर्थ-समीचीन - युक्त हेतुओं से युक्त "जिन शासन ही आश्रयणीय है" ऐसी यह (सच्चावई--सत्यावाग्) सत्यवाणी ही (मे भासिया मया भाषिता) मैंने कही-है। सो इसको स्वीकार करके बहुत से प्राणी (अतरिंसु-अतरन्)रहने इस संसार सागर से पार हुए हैं। (एगे-एके) कितनेक अभी भी (तरंति-तरन्ति) पार हो रहे हैं और (अणागया-अनागता) कितने भाग्यशील महा पुरुष (तरिस्संति-तरिष्यन्ति) भविष्य मे पार होंगे ॥५३॥

कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे।
सव्वसंगविणिम्मुक्को, सिद्धे भवई नीरए, त्ति बेमि ॥५४॥

अन्वयार्थ (धीरे-धीर.) जो बुद्धिमान है वह (अहेऊहिं-अहेतुभि) मिथ्यात्व के कारणभूत क्रियावादी आदि द्वारा कल्पित कुहेतुओं द्वारा (अत्ताणं कह परियावसे-आत्मानं कथम पर्यावासयेत्) अपने आपको कैसे भावित कर सकता है अर्थात् नहीं। इसीलिए ऐसी आत्मा (सव्वसंगविणिम्मुक्को-सर्व सग

(विनिर्मुक्त.) सर्वसंग अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा धनादि परिग्रह से तथा भाव की अपेक्षा मिथ्यात्वरूप इन विजावाद आदि से रहित होता हुआ (नीरए-नीरजा) कर्मरज से रहित हो जाता है और (सिद्धे भवई सिद्धो भवति) वह सिद्ध हो जाता है ॥५४॥

१८वां अध्ययन समाप्त हुआ—

उन्नीसवां अध्याय

मिया पुत्तीयं एगूणवीसइमं अज्झयणं
मृगापुत्रीयमेकोनविंशतिमम ध्ययनम्

गत अठाहरवें अध्ययन में भोग और ऋद्धि के त्याग के विषय में कहा है। यद्यपि भोग और ऋद्धि के त्याग से श्रमणभाव की उत्पत्ति तो हो जाती है परन्तु साधुवृत्ति में जो शरीर का प्रतिक्रमण नहीं करता वह और भी प्रशंसनीय होता है। अत १६वें अध्ययन में शरीर का प्रतिक्रम न करने वाले महानुभाव मुनि की चर्चा का वर्णन किया जाता है। जिस की प्रथम गाथा इस प्रकार है यथा—

सुग्गीवे नयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए
राया बलभद्दि त्ति, मिया तस्सग्गमाहिसी ॥१॥

अन्वयार्थः—(सुग्गीवे-सुग्रीव नामा) (नयरे-नगरे) सुग्रीव नाम के नगर में। (रम्मे-रमणीय) जो (काणण-कानन) वृक्ष वृक्षों से और (उज्जाण-उद्यान) क्रीड़ा के बगीचों से (सोहिए-सुशोभित) उसमें (राया-राजा) (बलभद्द-बलभद्र) (त्ति-इस नाम वाला) (मिया-मृगा नाम वाली) (तस्स-तस्य) उसकी (अग्गम-हिसी-अग्रमहिषी) पटरानी थी।

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए ।
अम्मापिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥२॥

अन्वयार्थ—(तेसिं-तयोः) उन दोनों के (पुत्ते-पुत्रः) (बलसिरी-बलश्री) नाम का (मियापुत्ते-मृगापुत्रः) त्ति-इस प्रकार (विस्सुए-विश्रुतः) प्रसिद्ध हुआ (अम्मापि ऊण-मातापित्रोः) माता-पिता का (दइए-दयितः) प्यारा था (जुवराया-युवराज) और (दमीसरे-दमीश्वरः) इन्द्रियों को अपने वश में रखने वालों में श्रेष्ठ था।

नन्दणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं ।
देवो दोगुन्दगो चेव, निच्चं मुइयमाणसो ॥३॥

अन्वयार्थ —(नन्दणे-नन्दनः) नामके (पासाए-प्रासादे) राज महल में (सो-स) वह मृगापुत्र (उ-वितर्क) वितर्क अर्थ में है। (इत्थिहिं-स्त्रीभिः) स्त्रियों

के (साथे-मह) (दोगुन्दगो-दोगुन्दकः) दोगुन्दक नाम के देव (चेव-इव) तरह (च-पादपूर्ति में) (निच्चं-नित्यं) सदा (मुईय-मुदितः) प्रसन्न (माणसो-मन) होकर को (नए-क्रीडनि) क्रीडा करता है।

मणिरयणकुट्टिमतले, पमायालोयणे ठिओ ।
आलोएइ नागरस्य, चउक्कत्तियचच्चरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(मणिरयण-मणिरत्न) (कुट्टिमतले-कुट्टिमतल) से युक्त (पासाय-प्रासाद) के (आलोयणे-गवाक्षे) खिड़की में (ठिओ-स्थित.) स्थित होकर। (नगरस्स-नगरस्य) नगर के (चउक्क-चतुष्पथ) चौराहा को (तिय-त्रिपथ) तीराहे को और (चच्चरे-चत्वर) बहुपथो को। (आलोअई-प्रवलोकयति) देखता है।

अह तत्य अइच्छन्तं, पासई समण सज्जयं ।
तवनियमसंजमधरं, सीलड्‌ढं गुणआगरं ॥५॥

अन्वयार्थ:—(अह-अथ) इसके बाद (तत्थ-तत्र) वहाँ (अइच्छन्त-चलते हुए, समण-श्रमणम्) (सजय-संयत) संयत को। जो (तवो-तपः) नियम-नियम् (संजम-सयम) को (धरं-धारकम) धारण करने वाला। (सीलड्‌ढ-शीलयुक्तम) गुण आगरं-गुणाकरम्। गुणों की खान को। (पासइ-पश्यति) देखता है।

तं पेहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाइ उ।
कहिं मन्नेरिसं रूवं दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥६॥

अन्वयार्थ—(त-उस मुनि को) (मियापुत्ते-मृगा-पुत्र) (अणिमिसाइ-दिट्ठीए-एकटकटिया) पेहइ-प्रेक्षते देखता है उ-एवार्थक, निश्चय ही, (कहि-कुत्र) (मन्ने-मन्ये) मैं जानता हूं। (एरिस-एवप्रकारकम्) (रूव-रूप) आकार (दिट्ठपुव्व-पूर्वदृष्टम्) पहले देखा गया। (मए-मया) मैंने (पुरा-पूर्व-जन्मनि) पहले भव मे देखा है क्या ?

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणंमि सोहणे।
मोहं गयस्स सन्तस्स, जाइसरणं समुप्पन्नं ॥७॥

अन्वयार्थ:—(साहुस्स-साधो) साधु के (दरिसणे-दर्शने) दर्शन होने पर (सोहणे-शोभने) (अज्झवसाणंमि-अध्यवसाये) शुभ विचार होने पर (मोह गयस्स-मोहरहितस्य) मैंने कहीं पर इसको देखा है इस प्रकार की चिन्ता मे निर्मोहता को (संतस्स-प्राप्त हो जाने पर (जाइसरण-जाति स्मरण) ज्ञान उत्पन्न हो गया।

के (साथे-मह) (दोगुन्दगो-दोगुन्दकः) दोगुन्दक नाम के देव (विव-इव) तरह (च-पादपूर्ति में) (निच्च-नित्य) सदा (मुईय-मुदितः) प्रसन्न (माणसो-मन) होकर की (नए-क्रीडति) क्रीडा करता है।

मणिरयणकुट्टिमतले, पमायालोयणे ठिओ ।
आलोएइ नागरस्स, चउक्कतियचच्चरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(मणिरयण-मणिरत्न) (कुट्टिमतले-कुट्टिमतल) से युक्त (पासाय-प्रासाद) के (आलोयणे-गवाक्षे) खिड़की में (ठिओ-स्थित.) स्थित होकर। (नगरस्स-नगरस्य) नगर के (चउक्क-चतुष्पथ) चौराहा को (तिय-त्रिपथ) तीराहे को और (चच्चरे-चत्वर) बहुपथो को। (आलोअई-अवलोकयति) देखता है।

अह तत्थ अइच्छन्तं, पासई समण सज्जयं ।
तवनियमसंजमधरं, सीलड्ढं गुणआगरं ॥५॥

अन्वयार्थः—(अह-अथ) इसके बाद (तत्थ-तत्र) वहाँ (अइच्छन्त-चलते हुए, समण-श्रमणम्) (सजम-सयत) सयत को। जो (तवो-तपः) नियम-नियम् (संजम-सयम) को (धर-धारकम) धारण करने वाला। (सीलड्ड-शीलयुक्तम) गुण आगरं-गुणाकरम्। गुणो की खान को। (पासइ-पश्यति) देखता है।

तं पेहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाइ उ।
कहिं मन्नेरिसं रूवं दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥६॥

अन्वयार्थः—(त-उस मुनि को) (मियापुत्ते-मृगा-पुत्र) (अणिमिसाइ-दिट्ठीए-एकदर्ष्टया) पेहइ-प्रेक्षते देखता है उ-एवार्थक, निश्चय ही, (कहिं-कुत्र) (मन्ने-मन्ये) मैं जानता हू। (एरिस-एवप्रकारकम्) (रूव-रूप) आकार (दिट्ठपुव्व-पूर्वदृष्टम्) पहले देखा गया। (मए-मया) मैंने (पुरा-पूर्व-जन्मनि) पहले भव मे देखा है क्या ?

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणंमि सोहणे ।
मोहं गयस्स सन्तस्स, जाइसरणं समुप्पन्नं ॥७॥

अन्वयार्थः—(साहुस्स-साधो.) साधु के (दरिसणे-दर्शने) दर्शन होने पर (सोहणे-शोभने) (अज्झवसाणंमि-अध्यवसाये) शुभ विचार होने पर (मोह गयस्स-मोहरहितस्य) मैंने कहीं पर इसको देखा है इस प्रकार की चिन्ता मे निर्मोहता को (संतस्स-प्राप्त हो जाने पर (जाइसरणं-जाति स्मरण) ज्ञान उत्पन्न हो गया।

देवलोगचुओ संतो, माणुसं भवमागओ ।
सन्नि-नाणम समुप्पन्ने, जाइंसरइ पुराणयं ॥८॥

अन्वयार्थ —(देवलोग देवलोक) से (चुओ च्युतः)(संतो होकर) (माणुस मनुष्य के) (भव-भवम्) में आ गया हूँ। (सन्नि नाणम संज्ञिज्ञान) के (समुप्पन्ने-समुत्पन्ने) उत्पन्न हो जाने पर पुराणिय पूर्व जन्म (जाइं जाति को) (सरइ-स्मरति) याद करता है।

जाईसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ॥९॥

अन्वयार्थ (जाई सरणे जातिस्मरणे) जाति स्मरण के (समुप्पन्ने समुत्पन्ने) उत्पन्न हो जाने पर (मियापुत्तो मृगापुत्र) (महिड्ढिए महर्द्धिक) महती ऋद्धि वाला है। (पोराणिय-पौराणिकीय) पूर्व (जाइ-जाति) का (च-तथा) और पुराकयं-पुराकृतम् पूर्वधारण किये हुए (सामण्ण-श्रमणभावम्) श्रमणभाव को, (सरइ-स्मरति) याद करता है।

विसएसु अरज्जंतो, रज्जंतो संजमम्मि य ।
अम्मापियरमुवागम्म, इमं वयणमब्बवी ॥ १० ॥

अन्वयार्थ--विसएसु-विषयेषु, विषयों-इन्द्रियसुखों में (अरज्जंतो-अरज्यन्) राग न करता हुआ (य-च) और रज्जंतो-रज्जन्, (संजमम्मि-संयमे) संयम में। (अम्मापियर-मातापितरौ) (उवागम्म-उपागम्य) समीप में आकर (इम-इदम्) (वयण-वचनम्) (अब्बवी-अब्रवीत्) कहने लगा।

सुयाणि मे पंचमहव्वयाणि,
नरएसु दुक्खं च तिरिक्खजोणिसु ।
निव्विण्ण कामो मि महण्णवाओ,
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ- (सुयाणि-श्रुतानि) सुने हैं (मे-मया) मैंने (पंचमहव्वयाणि-पंचमहाव्रतानि) ५ महाव्रतों को। (नरएसु-नरकेषु) नरकों के (दुक्खं-दुःखम्) च-और (तिरिक्खजोणिसु-तिर्यग्योनिषु) तिर्यग्योनियों के दुःख। अत. (महण्णवाओ-महार्णवात्) संसार रूप समुद्र से (निव्विण्णकामो-निर्विण्णकाम) (मि-मैं) निवृत्त होने की कामना वाला हो गया हूँ। अत

(अम्म अम्ब) हे माता; (पव्वइस्सामि—प्रव्रजिष्यामि) मैं दीक्षित होऊँगा (अणुजाणह—अनुजानीत) मुझे आज्ञा दीजिए।

भुत्ताणि मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
पच्छा कडुय विवागा, अणुबन्धदुहावहा ॥१२॥

अन्वयार्थः—(अम्म—अम्ब) हे माता (ताय—तात) हे पिता, (मए—मया) मैंने (विसफलोवमा—विषफलोपमा) विषैले फल की तरह भोगा—भोगों को) (भुत्ता—भुक्ता) भोग लिये हैं (पच्छा—पश्चात्) (कडुय—कटुक) (विवागा—विपाक) फल है इनका (अणुबंध—अणुबंध) परिणाम निरन्तर दुःखदायी है।

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाण भायणं ॥१३॥

अन्वयार्थः—(इम—इदम्) यह (सरीर—शरीरम्) (अणिच्चं—अनित्यम्) अनित्य है (असुइ—अशुचि) अपवित्र है और (असुइसंभव—अशुचिसंभवम्) अपवित्र स्थान में उत्पन्न हुआ है (असासयावास—अशाश्वतावासम्) इसमें जीव का वास अनित्य है (इण—इदम्) यह शरीर (दुक्खकेसाणं—दुःखक्लेशानाम्) दुःख और क्लेशों का (भायण=भाजनम्) पात्र—आधार है।

असासए सरीरंमि, रइं नोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसन्निभे ॥१४॥

अन्वयार्थः—(असासए—अशाश्वते) अनित्य (सरीरंमि—शरीरे) देह—पर अहं—अहम्) मैं (रइं—रतिं) प्रसन्नता को, (न—नहीं) (उवलभाम्—उपलभे) प्राप्त करता हूँ। क्योंकि यह शरीर (पच्छा—पश्चात्) (व—अथवा) (पुरा—पूर्वम्) पहले (चइयव्वे—त्यक्तव्ये) छोड़ने योग्य (फेणबुब्बुयसन्निभे—फेनबुद्बुदसन्निभे) फेन के बुलबुले के समान है।

माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए।
जरामरणघत्थम्मि खणंपि न रमामहं ॥१५॥

देवलोगचुप्रो संतो, माणुसं भवमागमो ।
सन्निकाणसं समुप्पन्ने, जाइसरइपुराणयं ॥८॥

अन्वयार्थ —(देवलोग-देवलोक) से (चुप्रो-च्युतः)(संतो-होकर) (माणुस-मनुष्य के) (भव-जन्म) में आ गया हूं। (सन्निणाण-सज्ञिज्ञान) के (समुप्पन्ने-समुत्पन्ने) उत्पन्न हो जाने पर पुराणिय-पूर्व जन्म (जाइ जाति को) (सरइ-स्मरति) याद करता है।

जाई सरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ॥९॥

अन्वयार्थ (जाई सरणे-जातिस्मरणे) जाति स्मरण के (समुप्पन्ने-समुत्पन्ने) उत्पन्न हो जाने पर (मियापुत्तो-मृगापुत्र) (महिड्ढिए-महर्द्धिक) महती ऋद्धि वाला है। (पोराणिय-पौराणिकीम) पूर्व (जाइ-जाति) को (च-तथा और पुरोकय-पुराकृतम पूर्वधारण किये हुए (साम्मण-श्रमणभावम्) श्रमणभावको, (सरइ-स्मरति) याद करता है।

विसएसु अरज्जंतो, रज्जंतो संजमम्मि य ।
अम्मापियरमुवागम्म, इमं वयणमब्बवी ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—विसएसु-विषयेषु, विषयों-इन्द्रियगुणों में (अरज्जंतो-अरज्यन्) राग न करता हुआ (य-च) और रज्जंतो-रज्जन्, (संजमम्मि-संयमे) संयम में। (अम्मापियर-मातापितरो) (उवागम्म-उपागम्य) समीप में आकर (इम-इदम्) (वयण-वचनम्) (अब्बवी-अब्रवीत्) कहने लगा।

सुयाणि मे पंचमहव्वयाणि,
नरएसु दुक्खं च तिरिक्खजोणिसु ।
निव्विण्ण कामो मि महण्णवाम्रो,
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ- (सुयाणि-श्रुतानि) सुने हैं (मे-मया) मैंने (पंचमहव्वयाणि-पंचमहाव्रतानि) ५ महाव्रतों को। (नरएसु-नरकेषु) नरकों के (दुक्खं-दुःखम्) च-और (तिरिक्खजोणिसु-तिर्यग्योनिषु) तिर्यग्योनियों के दुःख। अब (महण्णवाओ-महार्णवात्) संसार रूप समुद्र से (निव्विण्णकामो-निर्विण्णकाम) (मि-मैं) निवृत्त होने की कामना वाला हो गया हूं। अब

(अम्म अम्ब) हे माता; (पव्वइस्सामि—प्रव्रजिष्यामि) मैं दीक्षित होऊँगा (अणुजाणह—अनुजानीत) मुझे आज्ञा दीजिए।

भम्मताय मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
पच्छा कडुय विवागा, अणुबन्धदुहावहा ॥१२॥

अन्वयार्थ—(अम्म—अम्ब) हे माता (ताय—तात) हे पिता, (मए—मया) मैंने (विसफलोवमा—विषफलोपमा) विषैले फल की तरह भोगा—भोगों को) (भुत्ता—भुक्ता) भोग लिये हैं (पच्छा—पश्चात्) (कडुय—कटुक) (विवागा—विपाक) फल है इनका (अणुबंध—अणुबंध) परिणाम निरन्तर दुःखदायी है।

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाण भायणं ॥१३॥

अन्वयार्थः—(इम—इदम्) यह (सरीर—शरीरम्) (अणिच्चं—अनित्यम्) अनित्य है (असुइ—अशुचि) अपवित्र है और (असुइसंभव—अशुचिसंभवम्) अपवित्र स्थान से उत्पन्न हुआ है (असासयावास—अशाश्वत्-आवासम्) इसमें जीव का वास अनित्य है (इण—इदम्) यह शरीर (दुक्खकेसाणं—दुःखक्लेशानाम्) दुःख और क्लेशों का (भायण=भाजनम्) पात्र—आधार है।

असासए सरीरंमि, रइ नोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसन्निभे ॥१४॥

अन्वयार्थः—(असासए—अशाश्वते) अनित्य (सरीरंमि—शरीरे) देह—पर अहं—अहम्) मैं (रइ—रति) प्रसन्नता को, (न—नहीं) (उपलभाम्—उपलभे) प्राप्त करता हूँ। क्योंकि यह शरीर (पच्छा—पश्चात्) (व—अथवा) (पुरा—पूर्वम्) पहले (चइयव्वे—त्यक्तव्ये) छोड़ने योग्य (फेणबुब्बुयसन्निभे—फेनबुद्बुदसन्निभे) फेन के बुलबुले के समान है।

माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए।
जरामरणघत्थम्मि खणंपि न रमामहं ॥१५॥

अन्वयार्थ:—(माणुसत्ते--मनुष्यत्वे) (असारंमि—असारे) असार—निरर्थक मनुष्य जन्म मे (वाही—व्याधि) (रोगाण—रोगाणाम्) (आलए—आलये) स्थान मे (जरा—बुढापा) (मरण—मृत्यु) से (घत्थम्मि—ग्रस्ते) ग्रसे हुए (रणपि—क्षणमपि) क्षणमात्र भी (अहं—अहम्) मैं (रमाम्—रति) आनन्द नही पाता है।

जम्मदुक्खं जरादुक्खं, रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ॥१६॥

अन्वयार्थः—(जमदुक्ख—जन्मदु:खम्) जन्म का दुःख (जरादुक्ख—जरादु:खम्) बुढ़ापे का दुःख (रोगा—रोगा) (य = च) और रोग का दुःख (मरणाणि—तथा मृत्यु का दुःख (य—च) पुन (अहो—आश्चर्य है (हु—निश्चय ही (दुक्खो—दु:खरूप) ससारो—ससार) है जत्थ—यत्र) जहां पर जंतुणो—जीवा [कीसंति—क्लेश्यन्ति] दुःख पाते हैं।

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बांधवाः।
चइत्ताणं इमं देहं, गन्तव्वमवसस्स मे ॥१७॥

अन्वयार्थः—[खेत्त—क्षेत्र] [वत्थु—वास्तु] य = घर अवोर पुत्तदार च = पुत्रदाराश्च] पुत्र-स्त्री [बान्धवा—बान्धवान्] भाइयों तथा [इमदेह-शरीरम्] इस शरीर को [चइत्ता—त्यक्त्वा] छोड कर परलोक में [अवसस्स—अवश्य ही] [गन्तव्व—गन्तव्यम्] जाना पड़ेगा।

जहा किम्पागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो।
एवं भुत्ताणं भोगा, परिणामो न सुन्दरो ॥१८॥

अन्वयार्थः—[जहा—यथा] जैसे [किंपागफलाण—किम्पागफलानाम्] किम्पागनामवृक्ष के फलो का] परिणामो—परिणामः] फल [सुन्दरो न] सुन्दर नहीं [एव—इत्थम्] इस प्रकार [भुत्ताण—भुक्तानाम्] भोगेहुये [भोगाण—भोगानाम्] भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं है।

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जई।
गच्छन्तं सो दुही होइ, छुहातण्हाइ पीडिओ ॥१९॥

अन्वयार्थ.—[जो—य] जो पुरुष [अपाहेज्जो—अपाथेय] पाथेय रहित हुआ [महत —महान्तम्] [अद्धाणं-अध्वानम्] विशालमार्ग पर [पवज्जई-प्रव्रजति] चलता है । तुन्तो वह [गच्छन्त-गच्छन्] चलता हुआ [छुआतण्हाइ-क्षुधातृष्णादि] से [पीडिओ-पीडित.—सन्] पीडित होता हुआ [दुही-दुखी] होइ-भवति होता है ।

एवं धम्मं अकाऊण, जो सो गच्छइ पर भवं ।
गच्छन्तो सो दुही होइ, वाहिरोगेहि पीडिओ ॥२०॥

अन्वयार्थ – एव इस प्रकार [जो-य]पुरुष [धम्म—धर्मम्] [अकाऊण—अकृत्वा] न करके [परभव—परलोवम् गच्छइ—गच्छति जाता है । सो-स (वाहिरोगेहि -व्याधि रोगो) व्याधि-रोगो से (पीडिओ-पीडित) पीडित होने पर अत्यत (दुही-दुखी) होइ भवति होता है ।

अद्धानं महत तु, सपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छन्तो सो सुही होइ,छुहातण्हाविवज्जिओ ॥२१॥

अन्वयार्थ —जो पुरुष, तु-तो महत—महान्तम्, अद्धाण—अध्वानम्, मार्ग मे सपाहेज्जो—सपाथेय , पाथेययुक्त होकर पवज्जइ—प्रव्रजति, गमन करता है, गच्छन्तो—गच्छन्, जाता हुआ सो—स , वह छुहातण्हा वि—वज्जिओ क्षुधातृष्णाविवर्जित , भूख प्यास से रहित होता हुआ सुही—सुखी, होइ भवति होता है ।

एवं धम्म पियाऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो सुही होइ, अपकम्मे अवेयणे ॥२२॥

अन्वयार्थः—एव—इसी प्रकार पि—अपि, भी धम्म—धर्मम्, काऊण—कृत्वा, ;यो—जो पुरुष परंभव—परलोकम्, गच्छइ—गच्छति, जाता है सो—स., वह · गच्छन्तो—गच्छन्· जाताहुआ अपकम्मे—अल्पकर्मा, कर्मोंकि अल्प होने -मे अवेयणे—अवेदन , वेदनारहित होता हुआ सुही—सुखी, होइ—भवति, होता है ।

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥२३॥
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ॥२४॥

अन्वयार्थः— जहा यथा जैसे गेहे गृहे पलित्तम्मि प्रदीप्ते घर मे आग लगजाने पर तस्स तस्य गेहस्स गृहस्य उस घर का जो पहू योप्रभु स्वामी है वह सारभंडाणि सारभाण्डानि सार रत्नादि पदार्थों को नीणेइ निष्कासयति निकाल लेता है और असारं जीर्णवस्त्रादि को अवउज्झइ अपोज्झति छोड़ देता है ।

एव-इसी प्रकार, लोए लोके, लोकमे, जराएमरणेण जन्मजरामृत्यु रूप, आग से पलित्तम्मि प्रदीप्त, [दग्ध] होनेपर इसमे, अप्पाणं आत्मानम्, आत्मा को, तारइस्सामि, तारयिष्यामि तारूँगा, अत तुब्भेहि युष्माभ्याम्, आप दोनों से अणुमन्निओ अनुमत अनुज्ञा मांगता हूँ ।

तं बितम्मा पियरो, सामण्ण पुत्त ! दुच्चरं ।
गुणाण तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणा ॥२५॥

अन्वयार्थ—(त-उस) मृगापुत्रको (अम्मापियरो-अम्बापितरौ) (ब्रिन-ब्रूत) कहने लगे हे (पुत्त: पुत्र !) (सामण्ण-श्रामण्यम्) साधुवृत्ति (दुच्चर-दुष्करम्) अत्यन्त कठिन है क्योंकि (गुणाण तु सहस्साइं—गुणाना तु सहस्राणि) हजारो गुणों को तो निश्चय मे (भिक्खुणा-भिक्षुणा) भिक्षुओ को, धारेयव्वाइ-धारयितव्यानि) धारण करनेपड़ते हैं ।

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाएदुक्करं ॥२६॥

अन्वयार्थः—(जगे-जगति) संसार के (सव्वभूएसु-सर्वभूतेषु) सभीप्राणियों पर अथवा (सत्तुमित्तेसु-शत्रुमित्रेषु) शत्रु—मित्रों पर (समया—समताभाव) रखना. (जावज्जीवाए-यावज्जीव) जीवनपर्यन्त (पाणाइवाई—प्राणतिपात) (हिंसा) से निवृत्ति होना (दुक्करं-दुष्करम्) बहुत कठिन है ।

निच्चकालप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चा उत्तेण दुक्कर ॥२७॥

अन्वयार्थ.—(निच्चकाल-नित्यकाल) सदैव (अप्पमत्तेणं- अप्रमाद से (मुसावाय—भाषितव्यम्) (हिय-हित,सच्च—सत्य) हितकारी सत्य वचन बोलना । (निच्च-नित्यम्) सदा (आउत्तेण-आयुक्तेन) उपयोग के साथ । (दुक्करं—दुष्करम्) अति कठिन है ।

दन्तसोहणमाइस्स, अदत्तास्स विवज्जतं ।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुस्कर ॥२८॥

अन्वायार्थः—(दंतसोहण-दन्तशोधनम्) दाँत खोदने के लिए तृण (आइस्स-आदे) आदि पदार्थ का भी (अदत्तस्स-अदत्तस्य) बिना दिये (विवज्जणं-विवर्जनम्) छोड़ना (अणवज्जं—अनवद्य) निरवद्य (एसणिज्जस्स—एषणीयस्य) निर्दोषपदार्थों का (गिण्हणा अवि—ग्रहणमपि) लेना भी दुष्कर-कठिन है ।

विरई अबमचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा ।
उग्गं महव्वयं बंभ, धारेयव्वं सुदुस्करं ॥२९॥

अन्वयार्थः—(अबमचेरस्स—अब्रह्मचर्यस्य) मैथुन की (विरइ—विरति) नित्य त्याग (कामभोगरसन्नुणा—कामभोगरसज्ञेन) काम भोगों को जानने वाले को (उग्गं-उग्रम्) प्रधान (महव्वयं-महाव्रतम्) महाव्रत (बंभ-ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (धारेअव्व—धारितव्यम्) धारण करना (सुदुक्करं—सुदुष्करम्) अति कठिन है । अर्थात्—काम भोगों के रस को कम या अधिक अनुभव किये हुये पुरुष को सर्वथा इसका त्याग करना बहुत कठिन है ॥

धणधन्नपेसवग्गेसु परिग्गह विवज्जणं ।
सव्वारम्भपरिच्चागो, निम्ममत्तं सुदुक्करं ॥३०॥

अन्वयार्थ —(धणधन्नपेसवग्गेसु—धनधान्यप्रेष्यवर्गेषु) धन, धान्य दास वर्ग में (निम्ममत्त—निर्ममत्वम्) मोह का त्याग तथा (परिग्गहं—परिग्रहम्) "मूर्च्छा को परिग्रह कहा गया है" (विवज्जण—विवर्जनम्) त्याग और (सव्व-रम्भ—सर्वप्रकारेण धनोत्पन्न व्यापार;) सब तरह से धन के कमाने की क्रिया

जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करो मंदरो गिरी ।
तहा निहुय नीसंकं दुक्करं समणत्तणं ॥४२॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (तुलाए—तुलया) तराजू से (मदर गिरी—मदराचल) मन्दर(मेरु) नाम के पर्वत को (तोलेउ—तोलयितुम्) तोलना (दुक्करो—दुष्कर) कठिन है उसी प्रकार (निहुय—निभृतम्) स्थिर और (नीसकं—नि शकम्) शंका रहित (समणत्तण—श्रामण्यम्) साधु-वृत्ति का पालन करना (दुक्करं—दुष्करम्) अति कठिन है ॥

जहा भुयाहि तरिउं, दुक्करं रयणायरो ।
तहा अणुवसन्तेण, दुक्करं दमसागरो ॥४३॥

अन्वयार्थ.—(जहा—यथा) जैसे (भुयाहि—भुजाभ्याम्) भुजाओं से (रयणागरो—रत्नाकर) समुद्र को (तरिउं—तरितुम्) तैरना (दुक्करो—दुष्कर) कठिन है (तहा—तथा) उसी तरह (अणुवसन्तेण—अनुपशान्तेन) उत्कट कषाय वाले आत्मा से (दमसायरो—दमसागर) इन्द्रिय दमन रूप-समुद्र अथवा उपशम रूप समुद्र का तरना (दुक्करं—दुष्करम्) दुष्कर भाव—जिस आत्मा का कषाय उपशम भाव में रहे वही संयमवृत्ति पालन कर सकता है ।

भुंज माणुस्सए भोए, पंचलक्खणए तुमं ।
भुत्त भोगी तओ जाया ! पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥४४॥

अन्वयार्थ—(जाया—जात !) हे पुत्र ! (तुम—तू अभी) (पंचलक्खणए—पंचलक्षणकान्) पांच लक्षणों वाले (माणुस्सए—मानुष्यकान्) मनुष्य-सम्बन्धी (भोए—भोगान्) भोगों के (भुंज—भुंक्ष्व) भोगकर (भुत्त-भोगी—भुक्तभोगी) बनकर (तओ—ततः) (पच्छा—पीछे) उसके बाद (धम्म—धर्मम्) धर्म को (चरिस्ससि—चरिष्यसि) ग्रहण करना ।

सो बितऽम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं ।
इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचिवि दुक्करं ॥४५॥

(सो—स) वह मृगा पुत्र (अम्मापियरो—अम्बापितरौ) मात पिताओं से (बित—ब्रूते) कहने लगा हे माता ! और पिता ! आपने (एव, एम—एवं, एतत्) इसी प्रकार यह प्रव्रज्या आदि का पालन करना (जहा—यथा) जैसे (फुड—स्फुट) सत्य है किंतु (इह—इह) (लोए—लोके) इस संसार में (निप्पिवासस्स—निष्पिपासस्य) तृष्णा से रहित पुरुष के लिए (किंचिवि—किंचिदपि) कुछ भी दुक्करं—कठिन नत्थि—नहीं है ।

कन्दन्तो कंदुकंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलतंमि, पक्क पुव्वो अणंतसो ।।५०।।

अन्वयार्थः—(कन्दन्तो-क्रन्दन्) उच्च स्वर से रोते हुए (कुंदकुंभीसु-कुंदकुम्भी में (उड्ढपाओ-ऊर्ध्वपाद) ऊपर पैर तथा (अहोसिरो-अधःशिर) नीचे सिर करके (जलन्तम्मि-ज्वलति) जलती हुई (हुयासणे-हुताशने) आग में मुझे (अणंतसो-अनन्तशः) अनन्तवार (पक्कपुव्वो-पक्वपूर्वं) पूर्व पकाया गया है।

महादवग्गिसंकासे, मरुंमि वइर वालुए ।
कलम्बवालुयाए उ, दड्ढपुव्वो अणन्तसो ।।५१।।

अन्वयार्थ —(महादवग्गिसंकासे-महादवाग्निसंकाशे) महादवाग्नि के सदृश आग में [मरुंमि-मरौ) मरुभूमि के बालुका के समान (वइरवालुए-वज्र-वालुकायाम् वज्रमय बालुका में अथवा (कलम्ब वालुयाए-कदम्ब वालुकायाम्) कदम्ब बालुका देश में, (उ-तु) तो (दड्ढपुव्वो-दग्धपूर्वो)पूर्व मुझे (अणन्तसो-अनन्तशः) अनन्तवार मुझे दग्ध किया गया और तपाया गया।

रसंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबंधवो ।
करवत्त करकयाईहि, छिन्नपुव्वो अणन्तसो ।।५२।।

अन्वयार्थः—(रसंतो-रसन्) रोते हुए (कंदुकुंभीसु-कन्दुकुम्भीषु) कन्दु-कुम्भी में (अबंधवो-अबान्धवः) परिवार से रहित (असहाय) मुझे (उड्ढं उर्ध्वम्) ऊँचा (बद्धो-बद्ध) बाँधकर (करवत्त-करपत्र) आरा और (करकयाईहि-क्रकचों) आदि हथियारों से (अणन्तसो-अनन्तशः) अनन्तवार (छिन्नपुव्वो-छिन्नपूर्वं) पहले छेदन किया गया है। अर्थात्-नरकगति की यातना के समय सगा भाई-बन्धु कोई सहायक नहीं थे और न हो सकते हैं।

अइतिक्खकंटगाइण्णे, तुंगे सिंबलि पायवे ।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढो कड्ढाहि दुक्करं ।।५३।।

अन्वयार्थः—[अइ-अति] [तिक्ख-तीक्ष्ण] कण्टकैः [कंटगाइण्णे-कंटकाकीर्णे] काँटों से भरे [तुंगे-तुंगे] ऊँचे [सिंबलि-शाल्मलि] [पायवे-पादपे] वृक्षपर मुझे [पासबद्धेण-पाशबद्धेन] रस्सी से बाँधकर यमदूतों द्वारा [खेवियं खेदितम्] खेदित किया गया तथा [कड्ढोकड्ढाहि-कर्षणैः] इधर उधर खींचातानी करके मुझे [दुक्कर-दुष्कर] असह्य कष्ट दिया गया।

महाजतेसु उच्छूवा-आरसंतो सुभेरं ।
पीलिओमि सकम्मेहिं, पावकम्मों अणन्तसो ॥५४॥

अन्वयार्थ —[महाजन्तेसु-महायन्त्रेसु] कोल्हू आदि में [उच्छूवा-इक्षुरिव] गन्नेपेरे जाने की तरह [सुभेरं-सुभैरवम] अतिभयकर शब्द करते हुए [सकम्मेहि-स्वकर्मभि.] अपने किये कर्मों के प्रभाव से [पावकम्मो-पापकर्मा] पापकर्मवाला [अणन्तसो-अनन्तश] अनन्तबार मैं [पीलिओमि-पीडितोऽस्मि] पेला गया हूँ।

कूवंतों कोलसुणएहिं, सामेहि सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरन्तो अणेगसो ॥५५॥

अन्वयार्थ —[कूवतो-क्रजन्] आक्रन्दन करता हुआ [कोलसुणएहि-कोलशुनकै.] शूकर और काले, कुत्त सफेद कुत्ता द्वारा जो [सामेहि-श्यामै] श्याम (य-च) और (सबलेहि-शबलै) शबल हैं इनसे (विप्फुरन्तो-विस्फुरन्) इधर-उधर भागता हुआ मैं (अणेगसो-अनेकश) अनेकबार धरती पर (पाडिओ-पातित:) गिराया गया [फलिओ-स्फटित,] फाडागया [छिन्नो-छिन्न] वृक्ष की तरह काटा गया।

असीहि अयसिवण्णेहि, भल्लीहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नोय, उववन्नो पावकम्मुणा ॥५६॥

अन्वयार्थ.—[अयसिवण्णेहि-अनसीकुसु-मवर्णै] अलसी के फूल के समान रगवाले [असिहि-असिभि:] खड्गो [भल्लीभि] भालाओ य-और [पट्टिसेहि-शस्त्रो] मे [पावकम्मुणा-पापकर्म के प्रभाव से नरक मे [उववन्नो-उत्पन्न] उत्पन्न होने पर मुझे [छिन्नो-भिन्नो, विभिन्नो] छेदन, विदीर्ण और सूक्ष्म टुकडे किया गया।

अवसो लोहरसे जुत्तो, जलते समिलाजुए।
चोइओ तुत्तजुत्तेहि, रोज्झो, वा जह पाडिओ ॥५७॥

अन्वयार्थ—[अवसो-अवश] परवश हुआ मुझे [लोहरहे-लोहरथे] लोहे के रथ मे [जुत्तोयुक्त] जोडा गया [जलते-ज्वलति] अधिक जलते हुए [समिला-समिला] लोहे के कीलो वाले जुए मे [जुए-युगे] जोड दिया गया [चोइओ-नोदित] प्रेरित किया गया [तुत्त-तोत्र] तोत्रों से [जुत्तेहि-योक्त्रै] चर्म-

पय जुए मेरे गले में बांधकर जहाँ-जैसे [रोज्झो-बाक्य] अन्य गाय को [पाडियो-पातित] मार भूमि में गिराया जाता है वैसे मुझे गिरा दिया गया अर्थात् भील गाय की तरह दीन, असहाय मैं भी था।

हुआसणे जलंतम्मि, चिआसु महिसो विव।
दद्धो, पक्को अ अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥५८॥

अन्वयार्थ — (जलतम्मि—ज्वलति) प्रज्वलित (हुआसणे—हुताशने) जलती हुई आग में अथवा (चिआसु-चितासु) चिताओं में (महिसो-महिष) भैंसा की (विव—इव) तरह (दद्धोपक्को अ—दग्ध पक्वश्च) पकाया गया (पावकम्मेहिं—पापकर्मभि) पापकर्मों के प्रभाव से (अवसो—अवश) परवशहुआ मैं इस दशा को (पाविओ—प्राकृत) पाप करने वाला मैं

बला सडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं।
विलुत्तो विलवन्तोऽहं, ढंक गिद्धेहिंऽणंतसो ॥५९॥

अन्वयार्थ—(विलवन्तो—विलपन्) विलाप करता हुआ (अहं-मैं) मैं (बला—बलात्) हठपूर्वक (सडासतुंडेहिं—सट सतुण्डै) सडासी के समान चोंचवाले और (लोहतुंडेहिं—लोहतुंडै) लोहे के समान कठोर चोंचवाले तथा (ढंक-गिद्धेहिं—ढंकगृद्धै) ढंक और गीध (पक्खिहिं—पक्षिभि.) पक्षियोंद्वारा (अणतसो—अनतश) अनन्तबार (विलुत्तो—विलुप्त) विदीर्ण किया गया।

तण्हा किलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं नइं।
जलं पाहिंति चितंतो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥६०॥

अन्वयार्थ — (तण्हा—तृष्णा) प्यास से (किलंतो—क्लान्त) अत्यन्त पीडित होकर (धावंतो—धावन्) दौडता हुआ मैं (वेयरणिं—वैतरणीम्) वैतरणी (नइं—नदीम्) नदी के (जलम्—जलम्) जल को (पाहिंति—पास्यामि) पीऊँगा ऐसा (चिंतंतो—चिन्तयन्) सोचता हुआ (खुरधाराहिं—क्षुरधाराभि) छुरे के समानतीक्ष्ण धाराओं से (विवाइओ—व्यापादितः) विदीर्ण किया गया।

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं।
असिपत्तेहिं पडंतेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

अन्वयार्थ —(उण्हाभितत्तो—उष्णाभितप्त) उष्णता से अतिसतप्त होकर (असिपत्त—असिपत्रम्) असिपत्र नाम (महावणम्—हावनम्) घोरवन को

महाजनेसु उच्छूवा-आरसंतो सुभेरवं।
पीलिओमि सकम्मेहि, पावकम्मो अणन्तसो ॥५४॥

अन्वयार्थ—[महाजनेसु-महायन्त्रेषु] कोल्हू आदि में [उच्छूवा-इक्षुवत्] गन्नेरे जाने की तरह [सुभेरवं-सुभैरवम्] अतिभयंकर शब्द करता हुआ [सकम्मेहि-स्वकर्मभिः] अपने किए कर्मों के प्रभाव से [पावकम्मो-पापकर्मा] पापकर्मवाला [अणन्तसो-अनन्तशः] अनन्तबार मैं [पीलिओमि-पीडितोऽस्मि] पेला गया हूँ।

कूवंतो कोलसुणएहि, सामेहि सबलेहि य।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरन्तो अणेगसो ॥५५॥

अन्वयार्थः—[कूवंतो-कूजन्] आक्रन्दन करता हुआ [कोलसुणएहि-कोलशुनकैः] शूकर और काले, कुत्ते सफेद कुत्तों द्वारा जो [सामेहि-श्यामैः] श्याम (च-च) और (सबलेहि-शबलैः) शबल हैं उनसे (विप्फुरन्तो-विस्फुरन्) इधर-उधर भागता हुआ मैं (अणेगसो-अनेकशः) अनेकबार धरती पर (पाडिओ-पातित.) गिराया गया [फालिओ-स्फाटित,] फाड़ागया [छिन्नो-छिन्न] वृक्ष की तरह काटा गया।

असीहि अयसिवण्णेहि, भल्लीहि पट्टिसेहि य।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नोय, उववन्नो पावकम्मुणा ॥५६॥

अन्वयार्थ.—[असिवण्णेहि-अतसीकुसुमवर्णैः] अलसी के फूल के समान रंगवाले [असीहि-असिभिः] खड्गों [भल्लीभि] भालाओं य-और [पट्टिसेहि-शस्त्रों] से [पावकम्मुणा-पापकर्म के प्रभाव से नरक में [उववन्नो-उत्पन्न] उत्पन्न होने पर मुझे [छिन्नो-भिन्नो, विभिन्नो] छेदन, विदीर्ण और सूक्ष्म टुकड़े किया गया।

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलते समिलाजुए।
चोइओ तुत्तजुत्तेहि, रोज्झो, वा जह पाडिओ ॥५७॥

अन्वयार्थ—[अवसो-अवश] परवश हुआ मुझे [लोहरहे-लोहरथे] लोहे के रथ में [जुत्तो-युक्त] जोड़ा गया [जलते-ज्वलति] अधिक जलते हुए [समिला-समिला] लोहे के कीली वाले जुए में [जुए-युगे] जोड़ दिया गया [चोइओ-नोदित] प्रेरित किया गया [तुत्त-तोत्र] तोत्रों से [तुत्तेहि-योक्त्रैः] चर्म-

मय जुए मेरे गले में बांधकर जहां-जैसे [रोज्झो-वावय] अन्य गाय को [पाडियो-पातित] मार भूमि मे गिराया जाना है वैसे मुझे गिरा दिया गया अर्थात् नील गाय की तरह दीन, असहाय मैं भी था।

हुआसणे जलंतम्मि, चिआसु महिसो विव ।
दड्ढो, पक्को अ अवसो, पावकम्मेहि पाविओ ॥५८॥

अन्वयार्थः— (जलंतम्मि—ज्वलति) प्रज्वलित (हुआसणे—हुताशने) जलती हुई आग मे अथवा (चिआसु-चितासु) चिताओं में (महिसो-महिष) भैंसा की (विव—इव) तरह (दड्ढोपक्को अ—दग्ध पक्वश्च) पकाया गया (पावकम्मेहि—पापकर्मभि) पापकर्मो के प्रभाव से (अवसो—अवश) परवशहुआ मैं इस दशा को (पाविओ—प्रापित) पाप करने वाला मैं

बला सडासतुडेहि, लोहतुंडेहि पक्खिहि ।
विलुत्तो विलवन्तोऽहं, ढंक गिद्धेहिऽणंतसो ॥५९॥

अन्वयार्थ—(विलवन्तो—विलपन्) विलाप करता हुआ (अहं-मैं) मैं (बला—बलात्) हठपूर्वक (सडासतुडेहि—संदंशतुण्डै) सडासी के समान चोंच-वाले और (लोहतुडेहि—लोहतुंडै) लोहे के समान कठोर चोंचवाले तथा (ढंक-गिद्धेहि—ढंकगृध्रै) ढंक और गीध (पक्खिहि—पक्षिभि) पक्षियोंद्वारा (अणंतसो—अनन्तश) अनन्तबार (विलुत्तो—विलुप्त) विदीर्ण किया गया।

तण्हा किलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणि नइं ।
जलं पाहिंति चिंततो, खुरधाराहि विवाइओ ॥६०॥

अन्वयार्थ — (तण्हा—तृष्णा) प्यास से (किलंतो—क्लान्त) अत्यन्त पीड़ित होकर (धावंतो—धावन्) दौड़ता हुआ मैं (वेयरणि—वैतरणीम्) वैतरणी (नइं—नदीम्) नदी के (जलम्—जलम्) जल को (पाहिंति—पास्यामि) पीऊंगा ऐसा (चिंतंतो—चिन्तयन्) सोचता हुआ (खुरधाराहि—क्षुरधाराभि) छुरे के समानतीक्ष्ण धाराओं से (विवाइओ—व्यापादितः) विदीर्ण किया गया।

उण्हाभितत्तो सपत्तो, असिपत्त महावणं ।
असिपत्तेहि पडन्तेहि, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

अन्वयार्थ —(उण्हाभितत्तो—उष्णाभितप्त) उष्णता से अतिसन्तप्त होकर (असिपत्त—असिपत्रम्) असिपत्र नाम (महावणम—महावनम्) घोरवन को

महाजतेसु उच्छूवा-आरसंतो सुभेरवं ।
पीलिओमि सकम्मेहिं, पावकम्मों अणन्तसो ॥५४॥

अन्वयार्थ—[महाजतेसु-महायन्त्रेषु] कोल्हू आदि में [उच्छूवा-इक्षुरस] गन्नेपेरे जाने की तरह [सुभेरवं-सुभैरवम] अतिभयकर शब्द करते हुए [सकम्मेहिं-स्वकर्मभिः] अपने किये कर्मों के प्रभाव से [पावकम्मो-पापकर्मा] पापकर्मवाला [अणन्तसो-अनन्तश] अनन्तबार मैं [पीलिओमि-पीडितोऽस्मि] पेला गया हूँ।

कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहि सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरन्तो अणेगसो ॥५५॥

अन्वयार्थ—[कूवंतो-क्रन्दन्] आक्रन्दन करता हुआ [कोलसुणएहिं-कोलशुनकैः] शूकर और काले, कुत्त सफेद कुत्ता द्वारा जो [सामेहि-श्यामैः] श्याम (य-च) और (सबलेहि-शबलैः) शबल हैं इनसे (विप्फुरन्तो-विस्फुरन्) इधर-उधर भागता हुआ मैं (अणेगसो-अनेकश) अनेकबार धरती पर (पाडिओ-पातितः) गिराया गया [फलिओ-स्फटित,] फाडागया [छिन्नो-छिन्न] वृक्ष की तरह काटा गया।

असीहि अयसिवण्णेहि, भल्लीहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नोय, उववन्नो पावकम्मुणा ॥५६॥

अन्वयार्थ—[अयसिवण्णेहि-अतसीकुसु-मवर्णैः] अलसी के फूल के समान रगवाले [असिहि-असिभिः] खड्गो [भल्लीभि] भालाओ य-और [पट्टिसेहि-शस्त्रो] से [पावकम्मुणा-पापकर्म के प्रभाव से नरक मे [उववन्नो-उत्पन्न] उत्पन्न होने पर मुझे [छिन्नो-भिन्नो, विभिन्नो] छेदन, विदीर्ण और सूक्ष्म टुकडे किया गया।

अवसो लोहरसे जुत्तो, जलते सामिलाजुए ।
चोइओ तुत्तजुत्तेहि, रोज्झो, वा जह पाडिओ ॥५७॥

अन्वयार्थ—[अवसो-अवश] परवश हुआ मुझे [लोहरहे-लोहरथे] लोहे के रथ मे [जुत्तोयुक्त] जोडा गया [जलने-ज्वलति] अधिक जलते हुए [समिला-समिला] लोहे के कीली वाले जुए मे [जुए-युगे] जोड दिया गया [चोइओ-नोदित] प्रेरित किया गया [तुत्त-तोत्र] तोत्रो से [जुत्तेहि-योक्त्रैः] धर्म-

मय जुए मेरे गले मे बाँधकर जहाँ-जैसे [रोज्झो-वानय] अन्य गाय को [पाडियो-पातित] मार भूमि मे गिराया जाता है वैसे मुझे गिरा दिया गया अर्थात् नील गाय की तरह दीन, असहाय मैं भी था।

हुआसणे जलंतम्मि, चिआसु महिसो विव।
दड्ढो, पक्को अ अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥५८॥

अन्वयार्थ — (जलन्तम्मि—ज्वलति) प्रज्वलित (हुआसणे—हुताशने) जलती हुई आग मे अथवा (चिआसु-चितासु) चिताओ मे (महिसो-महिष) भैंसा की (विव—इव) तरह (दड्ढोपक्को अ—दग्ध पक्वश्च) पकाया गया (पावकम्मेहिं—पापकर्मभि) पापकर्मों के प्रभाव से (अवसो—अवश) परवशहुआ मैं इस दशा को (पाविओ—प्रापित) पाप करने वाला मैं

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं।
विलुत्तो विलवन्तोऽहं, ढंक गिद्धेहिंऽणंतसो ॥५९॥

अन्वयार्थ —(विलवन्तो—विलपन्) विलाप करता हुआ (अहं-मैं) मैं (बला—बलात्) हठपूर्वक (संडासतुंडेहिं—सदंशतुण्डै) सडासी के समान चोंच-वाले और (लोहतुंडेहिं—लोहतुंडै) लोहे के समान कठोर चोंचवाले तथा (ढंक-गिद्धेहिं—ढंकगृद्धै) ढंक और गीध (पक्खिहिं—पक्षिभि) पक्षियोंद्वारा (अणंतसो—अनंतश) अनन्तबार (विलुत्तो—विलुप्त) विदीर्ण किया गया।

तण्हा किलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं नइं।
जलं पाहिंति चिंततो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥६०॥

अन्वयार्थ — (तण्हा—तृष्णा) प्यास से (किलंतो—क्लान्त) अत्यन्त पीडित होकर (धावंतो—धावन्) दौडता हुआ मैं (वेयरणिं—वैतरणीम्) वैतरणी (नइं—नदीम्) नदी के (जलम्—जलम्) जल को (पाहिंति—पास्यामि) पीऊँगा ऐसा (चिंततो—चिन्तयन्) सोचता हुआ (खुरधाराहिं—क्षुरधाराभि) छुरे के समानतीक्ष्ण धाराओ से (विवाइओ—व्यापादित) विदीर्ण किया गया।

उण्हाभितत्तो सपत्तो, असिपत्तं महावणं।
असिपत्तेहिं पडन्तेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

अन्वयार्थ — (उण्हाभितत्तो—उष्णाभितप्त) उष्णता से अतिसतप्त होकर (असिपत्त—असिपत्रम्) असिपत्र नाम (महावणम्—महावनम्)

महाजंतेसु उच्छूवा-आरसंतो सुभेरवं ।
पीलिओमि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणन्तसो ॥५४॥

अन्वयार्थ —[महाजंतेसु-महायन्त्रेषु] कोल्हू आदि में [उच्छूवा-इक्षुरिव] गन्नेपेरे जाने की तरह [सुभेरवं-सुभैरवम्] अतिभयंकर शब्द करते हुए [सकम्मेहिं-स्वकर्मभिः] अपने किये कर्मों के प्रभाव से [पावकम्मो-पापकर्मा] पापकर्मवाला [अणन्तसो-अनन्तशः] अनन्तवार मैं [पीलिओमि-पीडितोऽस्मि] पेला गया हूँ ।

कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरन्तो अणेगसो ॥५५॥

अन्वयार्थ —[कूवंतो-कूजन्] आक्रन्दन करता हुआ [कोलसुणएहिं-कोलशुनकैः] शूकर और काले, कुत्त सफेद कुत्ता द्वारा जो [सामेहिं-श्यामैः] श्याम (य-च) और (सबलेहि-शबलैः) शबल हैं इनसे (विप्फुरन्तो-विस्फुरन्) इधर-उधर भागता हुआ मैं (अणेगसो-अनेकशः) अनेकबार धरती पर (पाडिओ-पातित) गिराया गया [फालिओ-स्फाटित,] फाड़ागया [छिन्नो-छिन्न] वृक्ष की तरह काटा गया ।

असीहि अयसिवण्णेहिं, भल्लीहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नोय, उववन्नो पावकम्मुणा ॥५६॥

अन्वयार्थ —[अयसिवण्णेहिं-अतसीकुसुमसवर्णैः] अलसी के फूल के समान रंगवाले [असीहि असिभिः] खड्गों [भल्लीहि भल्लीभिः] भालाओं य और [पट्टिसेहि-शस्त्रों] से [पावकम्मुणा-पापकर्म के प्रभाव से नरक में [उववन्नो-उत्पन्न] उत्पन्न होने पर मुझे [छिन्नो-भिन्नो, विभिन्नो] छेदन, विदीर्ण और सूक्ष्म टुकड़े किया गया ।

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलन्ते समिलाजुए ।
चोइओ तुत्तजुत्तेहिं, रोज्झो, वा जह पाडिओ ॥५७॥

अन्वयार्थ —[अवसो-अवश] परवश हुआ मुझे [लोहरहे-लोहरथे] लोहे के रथ में [जुत्तो-युक्त] जोता गया [जलन्ते-ज्वलति] अधिक जलते हुए [समिला-समिला] जोड़ के कीली वाले जुए में [जुए-युगे] जोड़ दिया गया [चोइओ-नोदित] प्रेरित किया गया [तुत्त-तोत्र] तोत्रों से [जुत्तेहिं-योक्त्रैः] यथा-

मय जुए मेरे गले में बांधकर जहाँ-जैसे [रोज्झो-दावक] अन्य गाय को [पाडियो-पातित] मार भूमि में गिराया जाता है वैसे मुझे गिरा दिया गया अर्थात् नील गाय की तरह दीन, असहाय मैं भी था।

हुआसणे जलंतम्मि, चिआसु महिसो विव ।
दड्ढो, पक्को अ अवसो, पावकम्मेहि पाविओ ॥५८॥

अन्वयार्थ — (जलन्तम्मि—ज्वलति) प्रज्वलित (हुआसणे—हुताशने) जलती हुई आग में अथवा (चिआसु-चितासु) चिताओं में (महिसो-महिष) भैंसा की (विव—इव) तरह (दड्ढोपक्को अ—दग्ध पक्वश्च) पकाया गया (पावकम्मेहि—पापकर्मभि) पापकर्मों के प्रभाव से (अवसो—अवश) परवशहुआ मैं इस दशा को (पाविओ—प्रापृत) पाप करने वाला मैं

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहि पक्खिहि ।
विलुत्तो विलवन्तोऽह, ढक गिद्धेहिऽणंतसो ॥५६॥

अन्वयार्थ —(विलवन्तो—विलपन्) विलाप करता हुआ (अह-मैं) मैं (बला—बलात्) हठपूर्वक (सडासतुडेहि—सद ड़ातुण्डै) सड़ासी के समान चोंच-वाले और (लोहतुडेहि—लोहतुडै) लोहे के समान कठोर चोंचवाले तथा (ढक-गिद्धेहि—ढकगृद्धे) ढक और गीध (पक्खिहि—पक्षिभि) पक्षियोंद्वारा (अणतसो—अनतश) अनन्तबार (विलुत्तो—विलुप्त) विदीर्ण किया गया।

तण्हा किलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं नइ ।
जलं पाहिंति चिंततो, खुरधाराहि विवाइओ ॥६०॥

अन्वयार्थ — (तण्हा—तृष्णा) प्यास से (किलतो—क्लान्त) अत्यन्त पीड़ित होकर (धावतो—धावन्) दौड़ता हुआ मैं (वेयरणि—वैतरणीम्) वैतरणी (नइं—नदीम्) नदी के (जलम्—जलम्) जल को (पाहिति—पास्यामि) पीऊँगा ऐसा (चिंततो—चिन्तयन्) सोचता हुआ (खुरधाराहि—क्षुरधाराभि) छुरे के समानतीक्ष्ण धाराओं से (विवाइओ—व्यापादित) विदीर्ण किया गया।

उण्हाभितत्तो सपत्तो, असिपत्त महावण ।
असिपत्तेहि पडन्तेहि, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

अन्वयार्थ —(उण्हाभितत्तो—उष्णाभितप्त) उष्णता से अतिसन्तप्त होकर (असिपत्त—असिपत्रम्) असिपत्र नाम (महावणम—महावनम्) घोरवन को

(पत्तो—प्राप्त) प्राप्त हुआ वहां (असिपत्तेहिं—असिपत्रैः) असिपत्रों के (पडन्तेहिं—पतद्भि) गिरनेसे (अणेगसो—अनेकशः) अनेकों बार मेरा अंग (छिन्नपुव्वो—छिन्नपूर्व) पहले छेदन हुआ।

मुग्गरेहिं मुसुंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य।
गयासभग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणन्तसो ॥६२॥

अन्वयार्थ—मुग्गरेहिं—मुद्गरों, मुसुंढीहिं—भुशुंडियों, सूलेहिं—त्रिशूलों, य—और, मुसलेहिं—मुसलों द्वारा, तथा गयासभग्गगत्तेहिं—गदा से अंगों को तोड़ने पर, पत्त—प्राप्त किया, दुक्ख—दुःख को, अणन्तसो—अनन्त बार।

भावार्थ—मुद्गरों, भुशुंडियों, त्रिशूलों, मुसलों और गदाओं से मेरे शरीर के अंगों को तोड़ने से मैंने अनन्त बार दुःख प्राप्त किया।

खुरेहिं तिक्खधारेहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो अ अणेगसो ॥६३॥

अन्वयार्थ—(तिक्खधारेहिं—तीक्ष्णधारैः) तेजधारोंवाले (खुरेहिं—क्षुरैः) उस्तरों से (छुरियाहिं—छुरिकाभिः) छुरियों से (य-च) और (कप्पणीहिं—कल्पनीभिः) कैंचियों से (अणेगसो—अनेकशः) अनेकबार मुझे [कप्पिओ—कल्पितः] काटागया [फालिओ-पाटितः] फाड़ागया [छिन्नो—छिन्न] छेदन कियागया और [उक्कित्तो-उत्कृत्तः] चमड़ी उतारी गयी।

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं।
वाहिओ बद्धरुद्धो अ, बहू चेव विवाइओ ॥६४॥

अन्वयार्थ—[पासेहिं—पाशैः] पाश और [कूडजालेहिं—कूटजालैः] कूट जालों से [मिओ-मृग] मृग की तरह [अवसो—अवशः] परवश हुआ अहं—मैं छलपूर्वक [वाहिओ—बद्ध] बांधागया अ-और (रुद्धो-रुद्ध) रोका गया एवं निश्चय ही [बहू-बहुश] बहुतबार [विवाइओ—व्यापादितः] विनाश को प्राप्त किया गया।

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं।
उल्लिओ फालिओ, गहिओ मारिओ य अणंतसो ॥६५॥

अन्वयार्थ—(गलेहिं—गलैः) बंसियों से [मगरजालेहिं—मकरजालैः]

मकरा बार जालों से [मच्छोवा—मत्स्य इव] मछली की तरह यमदूतों से [अवसो—अवश] विवश हुआ [अट्-अट्म्] मैं अनन्त. अनन्तबार [उल्लिओ-उल्लिखित] उल्लि खित किया गया गेरे बाँडशकुरी लगने से [फालिओ—पाटित] फाड़ दिया गया [गहिओ-गृहीत] पकड़ा गया और [मारिओ-मारित] मारागया।

वीदसएहिं जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव।
गहिओ लग्गो बद्धो य, मारियो य अणतसो ॥६६॥

अन्वयार्थ —(वीदसएहि—विदंसकैं) श्येनों बाजों पक्षियो द्वारा [जालेहिं-जालैः) जालों से [लेप्पाहि-श्लेपादि] द्रव्यके द्वारा [सउणो—शकुन] पक्षी की [विव—इव] तरह (अणतसो अनन्तश) अनेकबार [गहिओ लग्गो, बद्धो, मारिओ गृहीतः, लग्न. बद्ध, मारित] पकड़ा गया, चिपटाया गया, बांधागया, मारा गया।

कुहाडफरसुमाईहिं वड्ढईहिं दुमो विव।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो तच्छिओ य अणंतसो ॥६७॥

अन्वयार्थः—(वड्ढईहि—वार्धिकैं) बढ़ईयो (तरखानों) द्वारा (कुहाड—कुठार) कुल्हाडी (फरसु—परशु) फरसा (आईहिं-आदिभि) आदि से (विव-इव) जैसे(दुमो—द्रुम) वृक्ष काटा जाता है, उसी प्रकार अनन्तबार (कुट्टिओ—कुट्टित) छोटा टुकड़ा किया गया (फालिओ—पाटित) फाड़ दिया गया (छिन्नो, तच्छिओ य-छिन्न तक्षित) छेदन किया गया छीला गया।

चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं पिव।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणतसो ॥६८॥

अन्वयार्थ— (चवेड—चपेट) चपेटा और (मुट्ठिमाईहि—मुष्ट्यादिभि) मुष्टि आदि से (कुमारेहि—कुमारैं) लौहकारोंसे (अयपिव—अय इव) लोहे की तरह (अणतसो-अनन्तश) अनतबार (ताडिओ-ताडित) ताडित कियागया (कुट्टिओ-कुट्टित) (भिन्नो-भिन्न) (चुणिव-चूर्णित) पीटा गया, भिन्न भिन्न किया गया, और चूर्ण किया।

तत्ताइ तम्ब लोहाइं, तउयाइ सीसगाणिय।
पाइओ, कलकलंताइ, आरसन्तो सुभेरवं ॥६९॥

अन्वयार्थ.—यमदूतों द्वारा मुझे (तत्ताइ—तप्तानि) तप्त (तम्बलोहाइ-ताम्बलोहादीनि) गरम किया गया ताम्बा लोहा, (तउयाइं, सीसगाणि-त्रपुकानि, सीसकानि) त्रपु लाख; और सीसा ये पदार्थ (कलकलन्ताइ—कल कलायमानानि) कलकलाते हुए (सुभेरव—सुभैरवम्) अतिभयानक (आरसन्तो—आरसन्) शब्द करते हुये (पाइयो—पायितः) पिलाया गया।

तुह पियाइ मसाइ, खण्डाइ सोल्लगाणि य।
खाविओमि समसाइ, अग्गि वण्णाइअणेगसो ॥७०॥

अन्वयार्थः—(तुह—तव) तुझे (पियाइ, मसाइ—प्रियाणि-मांसानि) मांस के (खडाइ-खडानि) टुकडे और (सोल्लगाइ—सोल्लकानि) भुनेहुये मास (कबाब) प्रिय थे अत (समसाइ—स्वमांसानि) मेरे ही मासो को (अग्गिवण्णाइ—अग्निवर्णानि) आग की तरह लालकरके अणेगसो—अनेकबार खिलाया गया ॥

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य।
पज्जिओमि जलतीओ, वसाओ रुहिराणि य ॥७१॥

(तुह—तव) तुझे (सुरा, सीहू, मेरओ, महूणि—सुरा, सीधु, मेरका, मनि) सुरा, सीधू, मुरक और मधु नाम की मदिरा (पिया-प्रिया) अत्यन्त प्रिय थी। अत. मुझे यमदूतो ने (जलतीओ—ज्वलती) अग्नि के समान जलती हुई (वसाओ. रुहिराणिय—वसा, रुधिराणि च) चर्बी और रक्त (पज्जियोमि—पायितोऽस्मि) पिला दिया ॥

नोट—(सुरा-चन्द्रहास्यादि, सीधू-ताड़ी, मेरक दूध आदि उत्तम रस पदार्थो से खीची गई। मधु महुआ आदि के फूलो से बनाई गई।

निच्च भीयेण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेदिता मए ॥७२॥

अन्वयार्थ—(निच्च—नित्यम्) सदा (भीएण—भीतेन) भय से (तत्थेण—त्रस्तेन) त्रास से [दुहिएण—दुखितेन] दुख से [य—और] [वहिएण—व्यथितेन] व्यथा से परमा—अत्यन्त उत्कृष्टा] (दुह सबद्धा—दुखसबद्धा] दुःख सम्बन्धिनी [मए—मया] मैंने [विणा—वेदना) वेदना को (वेइया—वेदिता) भोगी है।

तिव्वचण्डप्प गाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा।
महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु दुहवेयणा ॥७३॥

अन्वयार्थ—[तिव्व-तीव्रा] तीव्र [चण्ड-प्रचण्डा] [गाढाओ—प्रगाढाः] अत्यन्त गाढी [घोराओ—घोरा] अति भयंकर [अइदुस्सहा—अतिदुःसहा] अत्यन्त कठिन [महब्भयाओ—महाभया] [भीमाओ-भीमा] महाभय को उत्पन्न करनेवाली [मए-मया] मैंने [नरएसु-नरकेषु] नरकों में [दुहवेयणा-दुःखवेदना] दुःखरूपवेदनाएँ अनुभव की।

जारिसा माणुसे लोए, ताया ! दीसन्ति वेयणा ।
इत्तो अणंतगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ॥७४॥

अन्वयार्थ—[ताया—तात] हे पिता ! [जारिसा—यादृश] जैसी [वेयणा-वेदना] वेदनाएँ [माणुसे लोके—मनुष्यलोके] संसार में [दीसन्ति—दृश्यन्ते] देखी जाती हैं। [इत्तो इतः] इससे [अणंतगुणिया अनन्तगुणिता] अनन्तगुना अधिक [दुक्खवेयणा—दुःखवेदना] दुःखवेदनाएँ [नरएसु—नरकेषु] नरकों में देखी जाती हैं।

सव्व भवेसु अस्साया, वेयणा वेदिता मए ।
निमिसतर मित्तपि, जे साया नत्थि वेयणा ॥७५॥

अन्वयार्थ—(मए—मया) मैंने (सव्वभवेसु—सर्वभवेषु) सभीजन्मों में (अस्सया—असाता) असातारूप (वेयणा—वेदना) (वेइया—वेदिया) अनुभव की है किन्तु (जे—जो) (साया—सातारूप) सुखरूप (वेयणा—वेदना.) (निमिसत—रमित्तपि—निमेषान्तममात्रमपि) आंखझपने मात्रसमय में भी नत्थि—नास्ति) नहीं अनुभव की है।

तं बितम्मापियरो, छंदेण पुत्त ! पव्वया ।
नवरं पुण सामण्णे, दुक्ख निप्पडिकम्मया ॥७६॥

(त—तम्) मृगापुत्रको (अम्मापियरो—अम्मापितरौ) माता और पिता (बिन—ब्रूतः) कहने लगे (पुत्त ! हे पुत्र !) (छदेण—छंदसा) स्वेच्छा—पूर्वक (पव्वया—प्रव्रजितः) दीक्षित हो जो (नवर—केवलम्) इतना विशेष है (पुण—फिर) (सामण्णे—श्रामण्ये) संयम में (दुक्ख—दुःख) दुःख का हेतु यह है जो कि (निप्पडिकम्मया—निष्प्रतिकर्मता) रोगादि होने पर उसको हटाने के लिए औषधी नहीं की जाती।

नोट—जिनकल्पी—औषधी नहीं करते किन्तु स्थविरकल्पी को निर्दोष औषधी करने का प्रतिषेध नहीं है।

कौन (से—तस्मै) उसके लिए (भत्त—पाण च भत्तम्—पानम्) भोजन, पानी को (आहरित्तु—आनृत्य) लाकर (पणामई—प्रणामयेत्) देता है ॥

जया य से सुही होइ, तया गच्छइ गोयर ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥८१॥

अन्वयार्थ—(य—च) और(जया—यदा) जब(से—स)वह मृग (सुही—सुखी)(होइ—भवति) स्वस्थ हो जाता है, (तया—तदा)तब(गोयर—गोचरम्) गोचरी, को (गच्छइ—गच्छति) चल पडता है (भत्त—भक्तय और पाणस्स—पानस्य) भोजन और पानी के (अट्ठाए—अर्थम्) लिये वल्लराणि (सराणिय—वल्लराणि, सराणि च) वन और तालावों को पहुँच जाता है ॥

खाइय, पाणियं पाउँ, वल्लरेहिं सरेहिं य ।
मिगचारियं चरित्ता ण, गच्छई मिगचारियं ॥८२॥

अन्वयार्थ—वह मृग (वलरेहिं, सरेहिं य—वल्लरेषु सरस्सु च) वनो और तालावों मे घास आदि को (खाइत्ता—खादित्वा) खाकर पाणियं पानीयम् पानी (पाउँ पीत्वा) पीकर (मिगचारियं—मृगचर्याम्) मृगचर्या को चरित्ता चरित्वा आचारण करके मृगचर्या मे अपने स्थान को जाता है ॥

एव समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए।
मिगचारियं चरित्ता णं, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥८३॥

अन्वयार्थ—एवं इसी—प्रकार (भिक्खू—भिक्षु) साधु (समुट्ठिओ—समुत्थित) सयम मे सावधान हुआ (एयमेव—इसी प्रकार) (अणेगए—अनेकग) अनेक स्थानो मे फिरने वाला (मिगचारियं—मृगचर्याम्) मृगचर्या का(चरित्ता—चरित्वा) आचरण करके (उड्ढ—उर्ध्वं) ऊँची (दिस—दिशम्) दिशा को (पक्कमई—प्रकामते) प्राक्रमते करता है ।

भाव—सयम—क्रिया के अनुष्ठान करने का फल मोक्ष और स्वर्ग ये दो हैं ।

जहा मिए एग अणेगचारी,
अणेगवासे धुव गोअरे य

एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे,
नो हीलए नोविय खिसइज्जा ॥८४॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (मिग—मृग) (एग—एक) अकेला होता हुआ य-और (अणेगचारी—अनेकचारी) अनेक स्थानों में वास करता है। तथा (धुवगोअरे—ध्रुवगोचर) सदागोचरी किये हुए आहार का ही आहार करता है (एव—इसी प्रकार) (मुणी—मुनि) मुनि (गोयरियं—गोचर्याम्) गोचरी में (पविट्ठ—प्रविष्ट) प्रविष्ट हुआ (नो हीलए—नो हीलयेत्) य और कदन्न कुत्सित (खराब) आहार मिलने पर (नो विइनोअवि) न खिसइज्जा—खिसयेत्) मिलने पर निन्दा न करे।

मिग चारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता ! जहासुहं।
अम्मापिऊहिं अणुण्णाओ, जहाइ उवहिं तओ ॥८५॥

अन्वयार्थ— मैं (मिगचारिय—मृगचर्या) मृगचर्याका (चरिस्सामि—चरिष्यामि) आचरण करूंगा। (एव—इस प्रकार) (पुत्ता—हे पुत्र!) (जहासुहं—यथासुखम्) जैसे तुमको सुख हो वैसा करो। (अम्मापिऊहिं—अम्बापितृभ्याम्) इस प्रकार माता-पिता की (अणुण्णाओ—अनुज्ञात.) आज्ञा होने पर (उवहिं—उपधिम्) उपाधि— (द्रव्य उपाधि—वस्त्रादि भावउपाधि—मायादि) को (जहाइ—जहाति) छोड दिया (तओ—तत) उसके बाद दीक्षित हो गया॥

मिगचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्ख विमोक्खणिं।
तुब्भेहिं अम्म अणुण्णाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ॥८६॥

अन्वयार्थ— हे अम्ब ! (तुब्भेहिं—युष्माभ्याम्) आप दोनो की आज्ञा होने पर मैं (मिगचारिय—मृगचर्याम्) मृगचर्या (सयमवृत्ति) का (चरिस्सामि—चरिष्यामि) आचारण करूंगा जो कि (सव्वदुक्ख—सर्व—दुःख) सर्व दुःखों से (विमोक्खणिं—विमोक्षिणीम्) मुक्त करने वाली है (तब उसके माता—पिता ने कहा कि) (पुत्त! हे पुत्र) (जहासुहं—यथासुखम्) जैसे तुमको सुख हो, वैसे करो॥

एवं सो अम्मापियरं, अणुमाणित्ताण बहु विहं।
ममत्तं छिन्दई ताहे, महानागो घव्व कंचुयं ॥८७॥

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दा पसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थ—वह मृगापुत्र (लाभालाभे—लाभ और हानि में) (सुहे—सुखे) (दुक्खे—दु:खे) सुख और दु:ख में (तहा—तथा) (जीविए, मरणे—जीवने, मरणे) जीवन और मरण में (निन्दा पसंसासु—निन्दा प्रशंसयो) निन्दा और प्रशंसा में (माणावमाणओ—मानापमानयो) मान अपमान में भी समभाव रखने-वाला हुआ।

गारवेसु कसाएसु दंड सल्लभएसु अ ।
नियत्तो हाससोगाओ, अनियाणो अबन्धणो ॥९२॥

अन्वयार्थ—(गारवेसु—गौरवेभ्य:) ऋद्धि, रस, साता गौरव (गर्व) से (कसाएसु—कषायेभ्य:) कषायों से (दंड सल्ल भएसु—दण्डशल्यभयेभ्य:) मन वचन, काया के दंड, मायादि तीन और मिथ्या दर्शन रूप शल्य अनएव सात प्रकार भयों से (नियत्तो—निवृत्त) रहित तथा (हाससोगाओ—हास्यशोकात्) हास्य और शोक से (अनियाणो—अनिदान:) तथा निदान से रहित (अबन्धणो—अबन्धन:) बन्धन से रहित हो गया।

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासी चन्दण कप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थ—(इह—इह) (लोए—लोके) लोक में (अणिस्सिओ—अनिश्रित) आश्रयरहित (परलोए—परलोके) परलोक में (अणिस्सिओ—आश्रयरहित:) इस लोक व परलोक के सुखों की थोड़ी भी इच्छा जिसके मन में नहीं है उसका शरीर यदि कोई (वासी—परशु:) फरसा से काटता है (य—और) (चंदण—चन्दन) चन्दन से पूजता है किन्तु दोनों पर (कप्प—समकल्प) समभाव है इसी प्रकार अन्न के मिलने और न मिलने पर भी समभाव है।

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थ दम सासणो ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पसत्थेहिं दारेहिं—अप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्य:) मृगापुत्र प्र. न द्वारों, मन, वचन, काया के व्यापारों द्वारा आने वाले कर्मपरमाणु को

(सव्वओ—सर्वतः) सभी प्रकार से (पिहियासवो—पिहिताश्रव) आने के मार्ग को बन्द कर अर्थात् मवरयुक्त होकर (अज्झप्पज्झाणजोगेहि—अध्यात्मध्यान-योगे.)अध्यात्मध्यानयोगों से युक्त हुआ(पमत्थ—प्रशस्त) सुन्दर (दम—उपशम) और (सासणो—शासन) भगवान् के शिक्षारूप आगम का जानकार बन गया।

एवं नाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य।
भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावेत्तु अप्पयं ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थ—(एव—इसप्रकार) (नाणेण—ज्ञानेन) ज्ञान से (चरणेण—चारित्रेण) चारित्र से (दसणेण, तवेण य—दर्शनेन तपसा च) दर्शन और तप से तथा (सुद्धाहि—शुद्धाभि) विशुद्ध (भावणाहि—भावनाभि) १२ भावनाओ में (सम्मं—सम्यक्) भली प्रकार (अप्पय—आत्मानम्) आत्मा को (भवेत्तु—भावयित्वा) भावित कर के-अतिरंजित करके।

बहुयाणि उवासाणि, सामण्णमणु पालिया।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ॥ ९६ ॥

अन्वयार्थ—(बहुयाणि—बहूकानि) बहुत(वासाणि—वर्षाणि) वर्षों तक (सामण्ण—श्रामण्यम) श्रमण धर्म को (अणुपालिया—अनुपाल्य) परिपालन करके (उ—वितर्के-तु) तो (मासिएण, भत्तेण—मासिकेन, भक्तेन) एक मास का उपवास करके (अणुत्तर—अनुत्तराम्) सबसे उत्तम (सिद्धि--सिद्धगतिम्) सिद्धगति (मोक्ष) को (पत्तो—प्राप्त) प्राप्त हुआ।

एवं करन्ति संबुद्धा, पंडियापवियक्खणा।
विणिअट्टन्ति भोगेसु, मियापुत्ते जहा मिसी ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थ—(एवं—इसप्रकार (सबुद्धा—संबुद्धा) तत्ववेत्ता पुरुष जो (पंडियापवियक्खणा—पंडिता प्रविचक्षणा) पंडित और कुशल हैं वे (भोगेसु—भोगेभ्य) भोगो से (मियापुत्ते जहा—मृगापुत्र. यथा) मृगापुत्र (मिसी—ऋषि) की तरह (विणिअट्टंति—विनिवर्तन्ते) निवृत्त हो जाते हैं।

महप्पभावस्स महाजसस्स,
मियाइपुत्तस्स निसम्म भासियं

तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं ।
गइप्पहाणं च तिलोअविस्सुतं ॥९८॥

अन्वयार्थ— (महप्पभावस्स—महाप्रभावस्य) श्रेष्ठ प्रभाववाले (महायसस्स—महायशस) महान् यशवाले (मियाइपुत्तस्स-मृगायाः पुत्रस्य—) मृगा-के पुत्र का (भासियं—भाषितम्) भाषण को (निसम्म) अच्छी तरह सुन कर (तवप्पहाणं, उत्तमं चरियं तप प्रधान उत्तमचारित्रम) तप प्रधान उत्तम चारित्र (गइप्पहाणं—गतिप्रधानम्) और गति प्रधान को तथा (तिलोअविस्सुतं—त्रिलोक विश्रुतम) तीनों लोकों में प्रसिद्ध ऐसे उत्तम पूर्वोक्त भाषणों को विचार पूर्वक श्रवण करके धर्म में पुरुषार्थ करना चाहिए।

वियाणिया दुक्ख विवड्ढण धणं,
ममत्तबंधं च महाभयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं,
धारेह निव्वाण गुणावहं महं ॥९९॥ त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ—(धणं—धनम्) धन को (दुक्खविवड्ढण—दुःखविवर्धनम्) दुःखों को बढ़ाने वाला (च) और (ममत्तबंधं—ममत्वबन्धनम्) ममत्व और बंधन को बढ़ानेवाला (महाभयावहं—महान्) भयको देनेवाला (वियाणिया—विज्ञाय) जानकर (सुहावहं—सुखावहाम्) सुखदेनेवाली (धम्मधुरं—धर्मधुराम्) धर्मधुरा (धर्मरूप भार) को जो (अणुत्तरं—अनुत्तराम्) जो प्रधान है उसको तू (धारेह—धारयत) धारण कर जो कि (निव्वाण गुणावहं—निर्वाणगुणावहाम्) निर्वाणगुणों को धारण करने वाली और (महं—महतीम्) अतः सबसे बड़ी है। (त्तिबेमि—इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥

इति मियापुत्तीयं अज्झयणं समत्तं—इतिमृगापुत्रीयाध्ययनम् समाप्तम्

अह महानियण्ठिज्जं वीसइमं अज्झयणं

अथ महानिर्ग्रन्थीय विंशतितममध्ययनम्

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।
अत्थधम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धाणं—सिद्धान्) सिद्धो को (च—और) (संजयाणं—संयतान्) संयतो को (भावओ—भावत) भावसे (नमो किच्चा—नमस्कृत्य) नमस्कार करके (अत्थधम्मगइं—अर्थधर्मगतिम्) अर्थ, धर्म की गति जो (तच्च—तथ्यम्) तथ्य है। उसकी (अणुसिट्ठिं-अनुशिष्टम्) अनुशिक्षा को (मे-मम) मुझसे (सुणेह-शृणुत) सुनो।

मूलार्थ :— सिद्धो और संयतोको भावसे नमस्कार करके अर्थ, धर्म की तथ्यगति को मुझसे सुनो।

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं निज्जाओ, मण्डिकुच्छिंसि चेइए ॥ २ ॥

अन्वयार्थ:—(पभूय—प्रभूत) (रयणो—रत्न) बहुत रत्नो वाला (राया—राजा) राजा (सेणिओ—श्रेणिक) श्रेणिक (मगहाहिवो—मगधाधिप) मगधदेशका जो अधिपति है वह (विहारजत्तं—विहारयात्राम्) विहारयात्रा के लिये (मण्डिकुच्छिंसि—मण्डिककुक्षौ) मण्डिक कुक्षि नामक (चेइए—चैत्ये) चैत्य (उद्यान) मे (निज्जाओ—निर्यात) गया।

मूलार्थ—प्रभूत रत्नों का स्वामी और मगधदेश का राजा श्रेणिक-मण्डिक कुक्षि नामके उद्यान में विहारयात्रा के लिए गया। नोट— गाव के समीप के बागो को उद्यान कहते हैं।

नाणा दुमलयाइन्नं, नाणापक्खिनिसेवियं ।
नाणाकुसुमसंछन्नं, उज्जाणं नन्दणोवमं ॥ ३ ॥

तवप्पहाण चरियं च उत्तमं ।
गइप्पहाणं च तिलोअविस्सुत ॥६८॥

अन्वयार्थ— (महप्पभावस्स—महाप्रभावस्य) श्रेष्ठ प्रभाववाले (महाजसस्स—महायशस) महान् यशवाले (मियापुत्तस्स-मृगाया पुत्रस्य—) मृगा-के पुत्र का (भासिय—भाषितम्) भाषण को (निसम्म) अच्छी तरह सुन कर (तवप्पहाण, उत्तमं चरियं तप प्रधान उत्तमचारित्रम) तप प्रधान उत्तम चरित्र (गइप्पहाणं—गतिप्रधानम्) और गति प्रधान को तथा (तिलोअविस्सुत —त्रिलोक विश्रुताम्) तीनों लोकों में प्रसिद्ध ऐसे उत्तम पूर्वोक्त भाषणों को विचार पूर्वक श्रवण करके धर्म में पुरुषार्थ करना चाहिए ।

वियाणिया दुक्ख विवड्ढण धण,
ममत्तबंधं च महाभयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं,
धारेह निव्वाण गुणावहं महं ॥६६॥ त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ—(धण—धनम्) धन को (दुक्खविवड्ढण—दुःखविवर्धनम्) दुःखों को बढाने वाला (च) और (ममत्तबंध—ममत्वबन्धनम्) ममत्व और बंधन को बढानेवाला (महाभयावह—महान्) भयको देनेवाला (वियाणिया—विज्ञाय) जानकर (सुहावह—सुखावहाम्) सुखदेनेवाली (धम्मधुर—धर्मधुराम्) धर्मधुरा (धर्मरूप भार) को जो (अणुत्तर—अणुत्तराम्)जो प्रधान है उसको तू(धारेह—धारयत्वम्) धारण कर जो कि (निव्वाण गुणावह—निर्वाणगुणावहाम्) निर्वाणगुणों को धारण करने वाली और (मह—महतीम्) अतः सबसे बड़ी है। त्तिबेमि—इतिब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥

इति मियापुत्तीय अज्झयणं समत्त—इतिमृगापुत्रीयाध्ययनम् समाप्तम्.

अह महानियण्ठज्जं वीसइमं अज्झयणं
अथ महानिर्ग्रन्थीय विंशतितममध्ययनम्

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।
अत्थधम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धाण—सिद्धान्) सिद्धों को (च—और) (सजयाण—सयतान्) सयतों को (भावओ—भावत) भावसे (नमो किच्चा—नमस्कृत्य) नमस्कार करके (अत्यधम्मगइ—अर्थधर्मगतिम्) अर्थ, धर्म की गति जो (तच्च—तथ्यम्) तथ्य है। उसको (अणुसिट्ठि-अनुशिष्टम्) अनुशिक्षा को (मे-मम) मुझसे (सुणेह-शृणुत) सुनो।

मूलार्थ :— सिद्धों और सयतोंको भावसे नमस्कार करके अर्थ, धर्म की तथ्यगति को मुझसे सुनो।

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं निज्जाओ, मण्डिकुच्छिसि चेइए ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(पभूय—प्रभूत) (रयणो—रत्न) बहुत रत्नों वाला (राया—राजा) राजा (सेणिओ—श्रेणिक) श्रेणिक (मगहाहिवो—मगधाधिप) मगधदेशका जो अधिपति है वह (विहारजत्त—विहारयात्राम्) विहारयात्रा के लिये (मणिकुच्छिसि—मडिककुक्षौ) मडिक कुक्षि नामक (चेइए—चैत्ये) चैत्य (उद्यान) मे (निज्जाओ—निर्यात) गया।

मूलार्थः—प्रभूत रत्नों का स्वामी और मगधदेश का राजा श्रेणिक-मडिक कुक्षि नामके उद्यान मे विहारयात्रा के लिए गया। नोट— गाव के समीप के बागों को उद्यान कहते हैं।

नाणा दुमलयाइन्नं, नाणापक्खिनिसेवियं ।
नाणाकुसुमसंछन्नं, उज्जाणं नन्दणोवमं ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(णाणा—नाना) अनेक प्रकार के (दुम—द्रुम) वृक्ष और (लया—लता) लताओं से (आइन्न—आकीर्णम्) व्याप्त (नाणा पक्खि—नानापक्षि) अनेक प्रकारके पक्षियों से (निसेविय—परिसेवितम्) परिसेवित और (नाणाकुसुम—नानाकुसुम) अनेक प्रकार के फूलों से (संछन्न—संछन्नम्) आच्छादित (नन्दणोवम—नन्दनोपमम) नन्दन वन के समान (उज्जाण—उद्यानम्) बगीचा था।

मूलार्थ :—वह मण्डिकुक्षि नामक उद्यान अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप्त, नाना प्रकार के पक्षियों से परिसेवित और नाना प्रकार के पुष्पों से आच्छादित तथा नन्दनवन के समान था।

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(तत्थ—तत्र) उस उद्यान में (सो—स) वह राजा श्रेणिक (संजय—संयतम्) संयत और (सुसमाहिय—सुसमाहितम्) समाधिवाला (सुकुमालं—सुकुमारम्) सुकुमार (सुहोइय—सुखोचितम्) सुखशील (साहु—साधुम्) साधु को (रुक्खमूलम्मि—वृक्षमूले) वृक्ष के नीचे (निसन्न—निषण्णम्) बैठा हुआ (पासई—पश्यति) देखता है अर्थात् देखा।

मूलार्थः—उस मण्डिकुक्षि नामक उद्यान में राजा श्रेणिक ने वृक्षके नीचे बैठे हुए एक साधु को देखा जो संयमशील, समाधिवाला, सुकुमार तथा प्रसन्न-चित्त था।

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइन्नो तम्मि संजए।
अच्चन्तपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(तस्स—तस्य) उस मुनि के (रूव—रूपम्) रूप को (पासित्ता—दृष्ट्वा) देखकर (राइन्नो—राजा) राजाको (तम्मि—तस्मिन्) उस (संजए—संयते) संयमी में (अच्चन्त—अत्यन्त) (अउलो—अतुल) जिसकी बराबरी न की जा सके ऐसा (परमो—परम) उत्कृष्ट (रूवं—रूप) में (विम्हओ—विस्मय) आश्चर्य हुआ, तु-अलङ्कारार्थ में है।

मूलार्थ :—उस मुनि के रूप को देखकर राजा उस संयमी के अतुल और उत्कृष्टरूपमें अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुआ।

अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खन्ती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ :—(अहो—आश्चर्यमय) (वण्णो—वर्ण) वर्ण है अहो-आश्चर्यकारी (रूव—रूप) रूप है (अहो आश्चर्यमयी)(अज्जस्स—आर्यस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (सोमया—सौम्यता) सौम्यता सज्जनता तथा (अहो—आश्चर्यरूप) (खन्ती—क्षान्ति) क्षमा है (अहो आश्चर्यकारी) (मुत्ती—मुक्ति) निर्लोभता है (अहो—आश्चर्यमयी) (भोगे—भोगों में) (असंगया—असंगता) निःस्पृहता है ।

मूलार्थ :— इस गाथा में आश्चर्यमय रूप, आश्चर्यमय वर्ण आश्चर्यकारी सज्जनता तथा आश्चर्यमयी क्षमा और निर्लोभता है । एवं भोगों से इच्छा को हटाना भी आश्चर्यरूप है ।

तस्स पाए उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छई ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ :—(तस्स—तस्य) उसके (पाए—पादौ) चरणों को (उ—तु) (वन्दित्ता—वन्दित्वा) वन्दना करके (य—और (पयाहिण—प्रदक्षिणाम्) उनकी प्रदक्षिणा (काऊण—कृत्वा) करके न तो बहुत दूर न बहुत (अणासन्ने—अनासन्न) (नाइदूर—नातिदूर) न बहुत समीप ही (पंजली—प्राञ्जलिः) हाथ जोड़ कर (पडिपुच्छई—परिपृच्छति) पूछता है ।

मूलार्थ :— राजा उनके चरणों की वन्दना करके और उनकी प्रदक्षिणा करके उनके न तो अति दूर न अति निकट रह कर हाथ जोड़ कर उनसे पूछने लगा ।

तरुणोऽसि अज्जो पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया ।
उवट्ठिओ सि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि ता ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(अज्जो-हे आर्य !) (संजया ! हे संयत) (तरुणोऽसि—तरुणोऽसि) तू तरुण है (पव्वइओ—प्रव्रजित) इसी समय दीक्षित हो गया है (भोगकालम्मि—भोगकाले) भोग काल में (सामण्णे—श्रामण्ये) संयम में (उवट्ठिओ—उपस्थितोऽसि) उपस्थित हुआ है (ता—तावत्) अब मैं (एयमट्ठं—एतदर्थम्) इस अर्थ को (सुणेमि—शृणोमि) सुनना चाहता हूँ ।

मूलार्थ :— हे आर्य ! आप तरुण अवस्था में ही प्रव्रजित हो गये हैं । हे

भदन्त ! आपने भोग काल में ही संयम को ग्रहण कर लिया है। अत
प्रथम इस अर्थ को सुनना चाहता हूँ।

अणाहोमि महाराय! नाहो मज्झ न विज्जई।
अणुकम्पगं सुहिं वावि, कची नाहि तुमे मह ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ :— (महाराय ! हे महाराज ! (अणाहोमि—अनाथोऽस्मि) मैं अनाथ हूँ। (मज्झ—मम) मेरा (नाहो—नाथ) नाथ (नविज्जई—नविद्यते) कोई नहीं है। (वा—अथवा (अणुकम्पगं—अनुकम्पकः) अनुकम्पा करनेवाला (सुहि—सुहृद्) (वि—अपि) भी (कची—कश्चित्) कोई (मह—मम) मेरा नहीं है (तुमे—त्वं) (नाहि—जानीहि) जाने।

भावार्थः—मुनि कहते हैं—हे महाराज! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई भी नाथ नहीं है और न मेरा कोई मित्र है कि जो मेरे ऊपर दया करे ऐसा आप जाने।

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स, कहं नाहो न विज्जई ॥ १० ॥

अन्वयार्थ :— (तओ—ततः) उसके बाद (सो, राया—स राजा) वह राजा (पहसिओ—प्रहसित) जोर से हंसा अथवा आश्चर्य में पड़ा हुआ (सेणिओ—श्रेणिक) (मगहाहिवो—मगधाधिप) मगध देश का राजा विचारने लगा कि (एवं—इस प्रकार (इड्ढिमन्तस्स—ऋद्धिमत) ऋद्धिवाले (ते—तव) आपका कोई (नाहो—नाथ) (न विज्जई—न विद्यते) कैसे नहीं है।

भावार्थ :— उसके बाद प्रहसित और विस्मित हुआ वह मगधराज महाराजा श्रेणिक मन में विचारने लगा कि इस प्रकार की ऋद्धिवाले आपका कोई नाथ कैसे नहीं है।

होमि नाहो भयंताणं, भोगे भुंजाहि संजया।
मित्तनाईपरिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ —(भयंत—हे भदन्त भयत्राणम् भवत्राणाम्,) आपका मैं (नाहो—नाथ) नाथ (होमि भवामि) होता हूँ (मित्तनाई—मित्रज्ञाति) मित्र और ज्ञाति से (परिवुडो—परिवृतः सन्) घिरा हुआ (भोगे—भोगान्) भोगों को (भुंजाहि-

भुंक्ष्व)भोगो क्यो कि (माणुस्स-माणुस्यम्) मनुष्य जन्म (खु-निश्चय ही) (सुदुल्लहं—सुदुर्लभम्) अति दुर्लभ है।

मूलार्थ—हे संयत ! आपका मैं नाथ होता हूँ। मित्रो तथा सम्बन्धि-जनों से घिरे हुए आप भोगों का उपभोग करें। क्यो कि इस मनुष्य जन्म का मिलना अति दुर्लभ है।

अप्पणाऽवि अणाहोऽसि, सेणिया ! मगहाहिवा ।
अप्पणा अणाहो सन्तो, कहं नाहो भविस्ससि ॥१२॥

अन्वयार्थ—(सेणिया श्रेणिक) हे श्रेणिक (मगहाहिवा ! मगधाधिप तू (अप्पणावि—आत्मनापि (आत्मा से भी (अनाहो—अनाथ) (असि—है)सो (अप्पणा-आत्मना) आत्मा से (अनाहो-अनाथ) (सन्तो-सन्) होता हुआ (कहं-कथम्) कैसे (नाहो-नाथ) नाथ (भविस्ससि-भविष्यसि) हो सकता है।

मूलार्थ—हे मगध देश के स्वामी श्रेणिक ! तुम आप ही अनाथ हो स्वयं अनाथ होता हुआ तू दूसरे का नाथ कैसे हो सकता है ?

एवं वुत्तो नरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ ॥१३॥

अन्वयार्थ—(एवइ—स प्रकार) (वुत्तो—उक्त) कहा हुआ (सो—स) वह (नरिंदो—नरेन्द्र) राजा (सुसंभंतो—सुसंभ्रान्त) अतिव्याकुल हुआ (सुविम्हिओ—सुविस्मित) विस्मित हुआ (वयण—वचनम्) वचन (अस्सुयपुव्वं—अश्रुतपूर्वम्) पहले नहीं सुना गया है ऐसे वचन को (साहुणा-साधुना) साधु के द्वारा सुनकर जो (विम्हयन्निओ—विस्मयान्वित) चकित सा हो गया।

मूलार्थ—इस प्रकार कहा हुआ वह राजा साधु के वचन को सुन कर अतिव्याकुल, और विस्मय को प्राप्त हुआ। क्योंकि साधु के उक्त वचन उसने अश्रुतपूर्व थे अर्थात् पहले कभी नहीं सुने थे।

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अंतेउरं च मे।
भुंजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अस्सा—अश्वा) घोड़े (हत्थी—हस्तिन) हाथी (मणुस्सा—मनुष्य) मनुष्य (मे—मेरे हैं (पुरं—नगर) (च-और) (अंतेउर—अन्तःपुरम्)

अन्तःपुर (मे-मम) मेरे हैं (माणुसे—मनुष्यान्) मनुष्य सम्बन्धी (भोगे-भोगान्) भोगों को (भुञ्जामि-भोगता हूं (आणा—आज्ञा) आज्ञा (च-और) (इस्सरिय-ऐश्वर्य) ऐश्वर्य (मे—मेरे) है

मूलार्थ —हे मुने ! घोड़े, हाथी और मनुष्य मेरे पास हैं। नगर और अन्तःपुर भी है तथा मनुष्य सम्बन्धी विषय—भोगों का भी मैं उपभोग करता हूं, एवं शासन और ऐश्वर्य भी मेरे पास विद्यमान हैं।

एरिसे सपयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए।
कहं अणाहो भवई, मा हु भंते मुसं वए ॥१५॥

अन्वयार्थ —(एरिसे—ईदृशे) इस प्रकार की (सपयग्गम्मि—सम्पदग्रे) प्रधान सपदा में (सव्वकामसमप्पिए—सर्वकामसमर्पित) मेरे सम्पूर्ण काम समर्पित हैं तो फिर (कहं—कथम्) कैसे मैं (अणाहो—अनाथ) अनाथ (भवई—भवति) हूं (हु—जिससे) भंते—हे भगवन् ! आप (मुसं—मृषा) असत्य (मा—मत वए—वदतु) बोलें

मूलार्थः—हे भगवन् इस प्रकार की प्रधान सम्पदा मेरे को प्राप्त है और सब प्रकार के काम-भोग भी मुझे मिले हैं तो फिर मैं अनाथ कैसे हूं। हे पूज्य ! आप झूठ न बोलें ॥

न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं च पत्थिवा !
जहा अणाहो भवई, सणाहो वा नराहिव ! ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः— (पत्थिवा !—हे राजन् ! (तुमं—त्वम्) तू (अणाहस्स—अनाथस्य) अनाथ का (अत्थं—अर्थम्) अर्थ और (पोत्थं—प्रोत्था) उसकी पूर्ण उत्पत्ति भावार्थ को (न जाणे—न जानीये) नहीं जानता है (च—पुनः) नराहिव !—नराधिप !) हे राजन् (जहा—यथा) जैसे (अणाहो—अनाथ) अनाथ (भवइ—भवति) होता है (वा—अथवा) (सणाहो—सनाथ) सनाथ होता है ।

मूलार्थ—हे राजन्, तू अनाथ शब्द के अर्थ और भावार्थ को नहीं जानता कि अनाथ अथवा सनाथ कैसा होता है।

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीरविवरन्तरे ।
पविसिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (कुद्धो—क्रुद्ध) कोपित हुआ (अरी—अरि) शत्रु (परमतिक्खं—परमतीक्ष्ण) अत्यन्त तेज (सत्थं—शस्त्रम्) हथियार को (सरीरविवरन्तरे—शरीरविवरान्तरे) शरीर के छिद्रों में (पविसिज्ज—प्रवेशयेत्) प्रवेश कराके चुभाता है (एवं—इसी प्रकार) (मे—मम) मेरी (अच्छिवेयणा—अक्षिवेदना) आँखों में वेदना हो रही थी।

मूलार्थ—जैसे कुपित हुआ शत्रु अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र को शरीर के मर्मस्थानों में चुभाता है। उसमें जिस प्रकार की वेदना होती है, उसी प्रकार की असह्य वेदना मेरी आँखों में हो रही थी।

तियं मे अन्तरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई ।
इन्दासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥

अन्वयार्थः—(मे—मम) मेरा (तियं—त्रिकम्) कटिभाग में (च—और) (अन्तरिच्छं—अन्तरेच्छम्) हृदय की पीडा या भूख, प्यास का न लगना (च—और) (उत्तमंगं—उत्तमाङ्गम्) मस्तक में (इन्दासणिसमा—इन्द्राशनि समा) इन्द्र के वज्र के लगने के समान (घोरा—भयंकरा) (परमदारुणा—अत्यन्त कठोर) (पीडइ—पीडयति) पीडा हो रही थी॥

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामन्ततिगिच्छगा ।
अबीया सत्थकुसला, मन्तमूलविसारया ॥२२॥

अन्वयार्थः—(मे—मेरे लिए) (विज्जामन्तचिगिच्छगा—विद्यामन्त्रचिकित्सका) विद्या और मन्त्र द्वारा चिकित्सा करने वाले (अबीया—अद्वितीया) सर्वश्रेष्ठ (सत्थकुसला—शास्त्रकुशला) शस्त्रऔरशास्त्रक्रिया में अतिनिपुण, (मन्त्रमूल विसारया—मन्त्र औषधि आदि में अत्यन्त कुशल) (आयरिया—आचार्या) आचार्य उपस्थित।

मूलार्थ—मेरी चिकित्सा करने के लिए विद्या और मंत्र के द्वारा चिकित्सा करने सर्वप्रथम, शस्त्र और शास्त्र क्रिया में अतिनिपुण तथा मन्त्र और औषधि आदि के प्रयोग में अत्यन्त कुशल गुरुजन उपस्थित थे।

ते मे तिगिच्छं कुव्वति, चाउप्पायं जहाहियं ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसामज्झ अणाहया ॥२३॥

अन्वयार्थः—(ते—वे) वैद्याचार्य आदि (मे—मम) मेरी (तिगिच्छ—चिकित्सात्) दवा को (कुव्वति—कुर्वन्ति) करते रहे (चाउप्पाय—चतुष्पादम्) चतुष्पाद—वैद्य, औषधि, आतुरता, परिचारक (जहा जैसे) (हियं—हितम्) हित होवे, (य—फिर) (मे—मुझे) (दुक्खा—दु खात्) दु.खसे (न—नहीं) (विमोयन्ति—विमोचन्ति) (बिल्कुल छुटकारा नहीं करा सके) (एसा—ऐसा) यह (मज्झ—मम) मेरी (हणाहया-अनाथता) है ।

मूलार्थ—वे वैद्याचार्य मेरी १—योग्य वैद्य हो २—उत्तमऔषधि पास में हो ३—रोगी को चिकित्सा कराने अधिक इच्छा हो ४—रोगी की सेवा करने वाले मौजूद हो । इन चार उपचारको में चिकित्साकरते रहे, परन्तु मुझे दु ख से छुटकारा न दिला सके, यह मेरी अनाथता है ।।

पिया मे सव्वसारपि, दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

अन्वयार्थ :—(मे पिया—ममपिता) मेरे पिता ने (ममकारणा—ममकारणात्) मेरे कारण से (सव्वसारपि—सर्वमारमपि) सर्व बहुमुल्य पदार्थ भी (दिज्जाहि—अदात्) दिये किन्तु (य—फिर, वे) (दुक्खा—दु खाद्) (न—नहीं) (विमोयन्ति—विमोचयन्ति) विमुक्त कर सके (एसा—एषा) यह (मज्झ—मम) मेरी (अणाहया—अनाथता) है ।

मूलार्थ—मेरे पिता ने मेरे कारण से पारितोषिक रूप में बहुमूल्य पदार्थोंको वैद्यो के लिए दिये किन्तु फिर भी वे मुझे दु ख से विमुक्त न कर सके, यह मेरी अनाथता है ।

माया वि मे महाराय, पुत्तसोग दुहट्टिया ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२५॥

अन्वयार्थः—(महाराज! महाराज!) हे महाराज (पुत्तसोग दुहट्टिया—पुत्रशोक दु खार्ता) (मे—मेरी) (माया—माता) माता (वि—अपि) भी

(य—पि) (दुक्खा—दुःखात्) न (विमोयन्ति—विमोचयन्ति) विमुक्त कर सकी (एसा—यह) (मज्झ—मेरी) (अणाहया—अनाथता) है।

मूलार्थ—हे महाराज! पुत्र के शोक से अत्यन्त दुःखी हुई मेरी माता भी मुझे दुःख से विमुक्त नहीं कर सकी, यही मेरी अनाथता है।

भायरो मे महाराय! सगा जेट्ठकणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२६॥

अन्वयार्थ :—(महाराज!—हे महाराज!) (मे—मेरे) (सगा—स्वका) सगे (जेट्ठ, कणिट्ठगा—ज्येष्ठा, कनिष्ठका) ज्येष्ठ और छोटे (भायरो—भ्रातरः) भाई (य—पुनः) (दुक्खा—दुःखात्) दुःख से (न—नहीं) (विमोयन्ति—विमोचयन्ति) विमुक्त करसके (एसा—एषा) यह (मज्झ—मम) मेरी (अणाहया—अनाथता) है।

मूलार्थ—हे महाराज! मेरे बड़े और छोटे सगे भाई भी मुझे दुःख से विमुक्त नहीं कर सके, यही मेरी अनाथता है।

भइणीओ मे महाराय!, सगा जेट्ठ कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२७॥

अन्वयार्थ—(महाराय!—हे महाराज!) (मे—मेरे) मेरी (सगा—स्वका) सगी (जेट्ठा—ज्येष्ठा) (कणिट्ठगा—कनिष्ठका) ज्येष्ठ और छोटी (भइणीओ—भगिन्यः) बहनें भी थी, (य—पुनः) [दुक्खा—दुःखात्] न—नहीं [विमोयन्ति—विमोचयन्ति] विमुक्तकर सकी [एसा—एषा] यह [मज्झ—मम] मेरी [अणाहया—अनाथता] है।

मूलार्थ—हे महाराज! मेरी सगी बड़ी और छोटी बहनें भी विद्यमान थी। परन्तु वे भी मुझ को दुःख से विमुक्त न करा सकी। यह मेरी अनाथता है।

भारिया मे महाराय! अणुरत्ता अणुव्वया।
अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं, उरं मे परिसिंचई ॥२८॥

अन्वयार्थः—[महाराय ! हे महाराज !] [मे—मेरी] [अणुरत्ता—अनुरक्ता] अत्यन्त अनुराग रखने वाली और [अणुव्वा—अनुव्रता] पतिव्रता [भरिया—भार्या] स्त्री थी वह भी [अंसुपुण्णेहिं—अश्रुपूर्णाभ्याम्] आंसू भरी हुई [नयणेहिं—नयनाभ्याम्] आंखो से [मे—मेरे] [उरं—उरः] वक्षस्थल को [परिसिञ्चई—परिसिञ्चति] परिसिञ्चन करती थी। परन्तु वह भी मुझे दुःख से विमुक्त न करा सकी।

मूलार्थ—हे महाराज ! मुझमे अत्यन्त अनुराग रखने वाली, मेरी पतिव्रता भार्या भी अपनी आंसू भरी हुई आंखो से मेरी छाती का सिंचन करती थी। परन्तु वह भी मुझे दुःख से विमुक्त न करा सकी ॥

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गन्धमल्लविलेवणं ।
मए नायमनाय वा, सा बाला नेव भुंजई ॥२६॥

अन्वयार्थ :—[सा बाला—वह—अभिनवयौवना] मेरी भार्या भी मेरे दुःख से दुःखी हुई [अन्न, पाण, चण्हाण—अन्न, पान, च स्नानम्] अन्न, पानी, और स्नान तथा [गन्धमल्ल, विलेवण—गन्ध, माल्य, विलेपनम्] चन्दनादि गन्ध, पुष्प की माला, शरीर पर तैलादि से विलेपन आदि का [मए—मया] मेरे द्वारा [नायम—ज्ञातम्] जानते हुए [अनाय—अज्ञातम्] न जानते हुए [नेव—नैव] नही [भजइ—भुक्ते] सेवन करती थी।

मूलार्थ—अभिनव यौवना होती हुई भी मेरी भार्या मुझे दुःखी देखकर मेरे द्वारा जानते हुये न जानतते हुये अन्न, पानी, स्नान, गन्ध, माला, विलेपन आदि का सेवन नही करती थी।

खणं पि महाराय ! पासाओ वि न फिट्टई ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥३०॥

अन्वयार्थ—[महाराय ! महाराज !] [खणंपि—क्षणमपि] [मे—मेरे] [पासाओ—पार्श्वतः] पास से [वि—फिर] [नफिट्टई—न अपयाति] दूर नही होती थी वह भी [य—फिर] दुक्खा—दुःखात्] दुःख से [न—नही] [विमोएइ—विमोचयति] विमुक्त करा सकी यही मेरी अनाथता है ॥

मूलार्थ—हे महाराज ! क्षणमात्र भी वह स्त्री मेरे पास से पृथक

नही होती थी परन्तु वह भी मुझको दुःख सुख से छुड़ा न सकी। यही मेरी अनाथता है ॥

तओ हं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणन्तए ॥३१॥

अन्वयार्थ.—[तओ—तत] उसके बाद [अहं—मैं] [एव—इस प्रकार) [आहंसु—अब्रुवम्] कहने लगा कि [अणन्तए—अनन्तके] [संसारम्मि—संसारे] [पुणो पुणो—पुनः पुनः] बार बार [वेयणा—वेदना] का [अणुभविउं—अनुभवितुं] अनुभव करती [हु—निश्चय ही] दुक्खमा—दुःक्षमा) दुस्सह है, जे—पाद पूर्ति मे है।

मूलार्थः—उसके बाद मैं इस प्रकार कहने लगा कि इस अनन्त संसार में बार बार वेदना का अनुभव करना बहुत कठिन है।

सयं च जइ मुंचिज्जा, वेयणा विउला इओ।
खन्तो दन्तो निरारम्भो, पव्वइए अणगारियं ॥३२॥

अन्वयार्थः—[सयं—सकृत्] एक बार भी [जइ—यदि] [इओ—[इत.] इस [विउला—विपुला] असह्य [वेयणा—वेदना] से [मुंचिज्जा—मुझे छूट जाऊँ तो [खंतो—क्षान्त] क्षमावान् [दन्तो—दान्त] जितेन्द्रिय [निरारम्भ—आरम्भ से रहित] हुआ [अणगारियं—अनगारिताम्] अनगार-वृत्ति मे [पव्वइए—प्रव्रजामि] दीक्षित हो जाऊँ।

मूलार्थः—अतः मैं इस असह्य वेदना से एकबार भी मुक्त हो जाऊँ, तो क्षमावान्, जितेन्द्रिय और सर्वप्रकार के आरम्भ से रहित होकर प्रव्रजित होता हुआ अनगारवृत्ति को धारण करूँ ॥

एवं च चिन्तइत्ताण, पसुत्तो मि नराहिवा !
परीयत्तन्तीए राइए, वेयणा मे खयं गया ॥३३॥

अन्वयार्थ—[एवं—इस प्रकार] [च—पुन] [चिन्तइत्ताणं—चिन्तयित्वा] चिन्तन करके [पसुत्तोमि—प्रसुप्तोऽस्मि] मैं सो गया [नराहिवा!—नराधिप!] हे राजन्. [राइए—रात्रौ] रात [परियत्तन्तीए—परिवर्तन-

याम्] के व्यतीत होने पर [मे—मम] मेरी [वेयणा—वेदना] [खय—क्षयम्] समाप्त [गया—गता] हो गई।

मूलार्थ—हे राजन्! इस प्रकार सोच करके मैं सो गया और रात्रि के व्यतीत होने पर मेरी वेदना शान्त हो गई।

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ता बन्धवे।
खन्तो दन्तो निरारम्भो, पव्वईओऽणगारियं ॥३४॥

अन्वयार्थ—[तओ—तत] उसके बाद [कल्ले—कल्य] निरोग हो जाने पर [पभाए—प्रभाते] प्रात काल मे [बन्धवे—बान्धवान्] बन्धु जनों से [आपुच्छित्ताण—आपृच्छय] पूछ कर [खन्तो, दन्तो, निरारम्भो—क्षान्त, दान्त, निरारम्भ] क्षमायुक्त, इन्द्रियों को दमन करने वाला, आरम्भ से रहित [पव्वइओ—प्रव्रजित] दीक्षित हो गया [अणगारियं—अनगारिताम्] अनगार भाव को ग्रहण किया।

मूलार्थ—तदन्तर निरोग हो जाने पर प्रात काल मे बन्धुओ से पूछकर क्षमा, दान्तभाव और आरम्भत्याग रूप अनगार भाव को ग्रहण करता हुआ मैं दीक्षित हो गया॥

३४वी गाथा मे बताई गई हैं—१—की गई मानसिक प्रतिज्ञा २—साधुता के लक्षण ३—माता पिता आदि की आज्ञा से दीक्षित होना।

तो हं नाहो जाओ अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाणं थावराण य ॥३५॥

अन्वयार्थः—[तो—तत.] उसके बाद [अहं—मैं] [नाहो—नाथ] [जाओ—जात] हो गया [अप्पणो—आत्मन.] अपना, य—और [परस्स—परस्य] दूसरे का, य—और, [सव्वेसिं भूयाणं—सर्वेषाम् भूतानाम्]सभी प्राणियों [च—पुन —एव—ही] [तसाण—त्रसाणाम्] त्रसों का, य—और, थावराण—स्थावरों का।

मूलार्थः—हे राजन्! उसके पश्चात् मैं अपना और दूसरे का तथा सभी जीव चाहे त्रस हो या स्थावर हो उनका स्वामी बन गया॥

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कूड सामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा में नन्दणं वणं ॥३६॥

अन्वयार्थ —[अप्पा—आत्मा [नई-नदी] वेयरणी-वैतरणी] है, [मे मम] मेरा [अप्पा—आत्मा] [कूडसामली—कूटशाल्मली] कूट शाल्मली वृक्ष है मे— मेरा [अप्पा—आत्मा] [कामदुहाधेणू—कामदुघाधेनु] कामदुघाधेनु है और मेरा [अप्पा—आत्मा] [नन्दण वणं—नन्दन वनम्] नन्दन वन है।

मूलार्थ — मेरा यह आत्मा वैतरणी नदी और कूट शाल्मली वृक्ष है तथा मेरा आत्मा ही कामदुघा धेनु और नन्दनवन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥३७॥

अन्वयार्थ — [अप्पा—आत्मा] [दुहाण—दुःखानाम्] दुःखों का [य— और [सुहाण—सुखानाम्] सुखों का [कत्ता—कर्त्ता] है। [अप्पा—आत्मा अपना [मित्त—मित्रम्] मित्र य—और [अमित्त—अमित्रम्] शत्रु है। [दुप्पट्ठिओ—दुःप्रस्थित]और [सुपट्ठिओ=सुप्रस्थित] है।

मूलार्थ— हे राजन्! हे राजन् यह आत्मा कर्म का कर्त्ता तथा विकर्त्ता (कर्म-फल—भोक्ता) है। तब यह आत्मा ही शत्रु और मित्र है। दुःप्रस्थित शत्रु और सुप्रस्थित मित्र है। अर्थात् जब आत्मा दुराचरणों में फंस जाता है तो यह आत्मा, आत्मा का शत्रु तथा जब आत्मा सदाचरणों में तल्लीन हो जाता है तब आत्मा, आत्मा का मित्र बन जाता है।

इमाहु अन्ना वि, अणाहया निवा
तामेग चित्तो निहुओ, सुणेहि मे
नियण्ठधम्मं लहियाण वी जहा,
सीयन्ति एगे बहुकायरा नरा ॥३८॥

अन्वयार्थ— निवा !—हे नृप !, हे राजन् (इमा—इयम्) यह (हु— खलु) निश्चे (अन्ना वि—अन्यापि) और भी (अणाहया—अनाथता) है (ता— तस्य) उसको (एगचित्तो—एकचित्त) एकचित्त होकर (निहुओ—निभृत) निश्चल मे (मे—मम) मुझसे (सुणेहि—शृणु—सुनो) (नियण्ठधम्म—निर्ग्रन्थ-

धर्मम्) निर्ग्रन्थधर्म को (लहियाण—लब्ध्वा) पाकर भी (वी—अपि) भी (जहा—यथा) जैसे (एगे—कोईकोइ) (सीयन्ति—सीदन्ति) ग्लानि को प्राप्त हो जाते हैं जो (बहुकायरा—बहुकातरा) बहुत कायर (नरा—पुरुषा) पुरुष हैं।

मूलार्थ— हे नृप ! अनाथता के अन्य स्वरूप को भी तुम मुझसे एकाग्र और स्थिरचित्त से सुनो। जैसे कि कई एक कायर पुरुष निर्ग्रन्थधर्म के मिलने पर भी उसमें शिथिल हो जाते हैं।

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं,
सम्मं च नो फासयई पमाया।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
न मूलओ छिंदइ बन्धणं से ॥३९॥

अन्वयार्थ— जो (पव्वइत्ताण—प्रव्रज्य) दीक्षित होकर (महव्वयइ—महाव्रतानि) महाव्रतों को (पमाया—प्रमादात्) प्रमाद से (सम्मं—सम्यक्) भली प्रकार (से नो—नहीं) (फासयई—स्पृशति) सेवन नहीं करता है (य—और) (रसेसु—रसेषु) रसों में (गिद्धे—गृद्ध) मूर्छित (य—और) (अनिग्गहप्पा—इन्द्रियों को वश में न करने से (से—स.) वह (मूलओ—मूलत) मूल से अनिगृहीतात्मा) (बन्धण—कर्मबन्धनम्) कर्मबन्धन को (न—नहीं) (छिंदइ—छिनत्ति) काट सकता है।

मूलार्थ —जो ही दीक्षित हो कर प्रमादवश से महाव्रतों का भली प्रकार सेवन नहीं करता तथा इन्द्रियों के अधीन और रसों में मूर्छित है। वह जड़ से कर्मबन्धन को नहीं काट सकता।

आउत्तया जस्स न अत्थि काबि,
इरियाइ भासाइ तहेसणाए
अलायाणनिक्खे व दुगंछणाए,
न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

अन्वयार्थः—(जस्स—यस्य) जिसकी (इरियाइ—ईर्यायाम्) ईर्या में (भासाइ—भाषायाम्) भाषा में (तह—तथा) (एसणाए—एषणा में (आयाण आदान) में (निक्खेव—निक्षेप) निक्षेप में तथ (दुगंछणाए—जुगुप्सायाम्)

जुगुप्सा मे (आउगया—आयुगता) यतना नत्थि—नास्ति—कोई भी (न अत्थि—नास्ति) नही है। वह (वीरजाय—वीरयातम्) वीरसेवित (मग्ग—मार्गम्) मार्ग का (नअणुजाए—नअनुयाति) अनुसरण नही करता ॥

मूलार्थ—हे राजन्! जिसकी ईर्या समिति में, आहार आदि के करने मे, वस्तु के उठाने, रखने में, मलमूत्र त्याग मे और उत्सर्ग समिति मे कुछ भी यतना नही है, वह वीर सेवितमार्ग का अनुसरण नही कर सकता। अर्थात् वीर भगवान् अथवा शूर वीर पुरुषों ने जिसमार्ग मे गमन किया है, उस मार्ग मे नही चल सकता।

चिरं पि मुण्डरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तवनियमेहिं भट्ठे।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता,
न पारए होई हु संपराए ॥४१॥

अन्वयार्थ—[चिरं पि—चिरमपि] चिरकालपर्यन्त [मुण्डरुइ—मुण्डरुचिः] मुण्डरुचि (भवित्ता—भूत्वा) होकर (अथिर—अस्थिर) अस्थिर (व्वए, तव—नियमेहिं—व्रत तप, नियमै) अस्थिर, व्रत, तप, नियमों मे (भट्ठे—भ्रष्ट है (से—वह) (चिर पि—चिरमपि) चिरकाल तक (अप्पाण—आत्मानम्) आत्मा को (किलेसइत्ता—क्लेशयित्वा) दुखित करके (हु—निश्चये) 'खलु' (संपराए—संपरायस्य) ससार से (पारए—पारग) पार जाने वाला (नेहोइ न—भवति नही होता।

मूलार्थ—जो जीव चिरकाल तक मुण्डरुचि होकर व्रतों मे स्थिर नहीं है और तप-नियमो से भ्रष्ट है, वह अपने आत्मा को चिरकाल तक दुखित करके भी इस ससार से पार नही हो सकता।

पुल्लेव मुट्ठी जह से असार,
अयंतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥४२॥

अन्वयार्थ—(जह—यथा) जैसे (एव—निश्चय) (पुल्ल—पूल्ल) पोली मुट्ठी—मुष्टिः) (असारे—असारः) असार है तथा (अयन्तिए—अयन्त्रितः) अनिर्दमित (कूडकहावणे—कूटकार्षापण) खोटी मुहर (वा—इव) तरह (राढामणी—राढामणिः) काचमणि जैसे (वेरुलिय—वैडूर्यवत्) की तरह (पगासे—प्रकाश) प्रकाशित होती है परन्तु (जाणए—ज्ञेषु) विज्ञ (जानकार) पुरुषों में (हु—खलु) निश्चय ही (अमहग्घए—अमहार्घकः) अल्पमूल्य वाला (होइ—भवति) हो जाता है ॥

मूलार्थ—जैसे पोली मुट्ठी असार होती है और खोटी मोहर में भी कोई सार नहीं होता, इसी प्रकार वह द्रव्यलिंगी मुनि भी असार है। तथा जैसे काचकीमणि वैडूर्यमणि की तरह प्रकाश तो करती है परन्तु विद्वानों के सम्मुख उसकी कुछ कीमत नहीं होती, इसीप्रकार वाह्यलिंग से मुनियों की भांति प्रतीत होने पर भी वह द्रव्यलिंगवालामुनि बुद्धिमान पुरुषों के सामने तो कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

कुसीललिंग इह धारइत्ता,
इसिज्झय जीविय बूहइत्ता।
असंजए संजयलप्पमाणे,
विणिग्घायमागच्छइ से चिरंपि ॥४३॥

अन्वयार्थ—(कुसीललिंग—कुशीललिंगम्) कुशीलवृत्ति को (इह—इस संसार में) (धारइत्ता—धारयित्वा) धारण करके (इसिज्झय—ऋषिध्वजम्) ऋषिध्वज से (जीविय—जीवितम्) जीवन को (बूहइत्ता—बृंहयित्वा) बढ़ाकर (असंजए—असंयत) असंयत होकर भी (संजय—संयतोऽस्मि) संयत हूँ एवम् (लप्पमाणो—लपन्) (से—वह) (चिरंपि—चिरमपि) बहुत काल तक (विणिग्घाय—विनिपातम्) दुःख को (आगच्छइ—आगच्छति) प्राप्त होता है।

मूलार्थ—वह द्रव्यलिंग मुनि कुशीलिंग 'कुशीलवृत्ति' को धारण करके और ऋषिध्वज 'रजोहरणमुखवस्त्रिकादिचिन्ह' से जीवन को बढ़ाकर तथा असंयत होने पर भी मैं संयत हूँ, इस प्रकार बोलता हुआ इस संसार में चिरकाल दुःख पाता है।

विसं तु पीयं जह कालकूडं
हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसो वि धम्मो विसओ व वन्नो
हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ॥४४

अन्वयार्थ—(जह—यथा) मानों (कालकूड—कालकूटम्) (विस विषको)(पीयं—पीतम्) पी लिया हो (जह—जैसे) मानो (कुग्गहीयं—कुगृहीतम्) उल्टा पकड़ा हुआ (सत्थ—शस्त्रम्) हथियार अपने को (हणाइ—हन्ति) मारता है। और इव जैसे (वेयाल—वैताल) पिशाच जो (अविवन्नो—अविपन्न) वशमें नहीं हुआ है वह शब्दादि युक्त हुआ साधक को मार देता है। (एसो—एष) (धम्मोवि—धर्मोऽपि) वैसे ही यह धर्म भी (विसओववन्नो—विषयोपपन्न) शब्दादि विषयों से युक्त हुआ साधक को (हणाइ—हन्ति) मार देता है।

मूलार्थः—जैसे पीया हुआ कालकूट विष प्राणों का विनाश कर देता है। और उल्टा पकड़ा हुआ हथियार अपना घात करने वाला होता है, और जैसे वशमें न हुआ पिशाच साधक को मार डालता है वैसे ही धर्म भी शब्दादि विषयों से युक्त द्रव्यलिंगी 'केवल साधुवेशधारी' का नाश कर देता है अर्थात् नरक में ले जाता है।

जे लक्खणं सुविणपउंजमाणे,
निमित्त कोउहल संपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदार जीवी,
न गच्छई सरणं तम्मिकाले ॥४५॥

अन्वयार्थः—(जे—य.) जो पुरुष (लक्खण—लक्षण) वा (सुविण—स्वप्नविद्या) को (पउंजमाणो—प्रयुञ्जमानः) प्रयोग करता हुआ (निमित्त—भूकम्पादि) भविष्यकथन (कोऊहलसंपगाढे कौतूहल सम्प्रगाढः) कौतुक (इन्द्रजालादि) में (संपगाढे—सम्प्रगाढ) आसक्त है (कुहेडविज्जा—कुहेटक) असत्य और आश्चर्य उत्पन्न करने वाली जो विद्याएँ हैं उन सेवा (आसवजीवी—आश्रवजीवी) आश्रव द्वारों से जीवन बिताने वाला (तम्मिकाले—तस्मिन्काले) कर्मभोगने के समय (सरण—शरणम्) (नगच्छइ—नगच्छति) किसी भी शरण नहीं पाता।

मूलार्थ—जो पुरुष लक्षण, स्वप्न आदि विद्याओ का प्रयोग करता है। निमित्त और कौतुक कर्म मे आसक्त हैं एवं असत्य और आचार्य पैदा करने वाली विद्याओ तथा आस्रवद्वारो से जीवन व्यतीत करता है। वह कर्म भोगने के समय किसी की शरण को प्राप्त नही होता।

तमंतमेणेव उ से असीले,
सता दुही विप्परियामुवेइ।
संधावई नरगति तिरिक्खजोणि,
मोणं विराहित्तु असाहुरूवे ॥४६॥

अन्वयार्थ—(से—वह) (असीले—अशील) दुराचारी (तमतमेणेव—तमस्तमसैव) अतिअज्ञान से ही (सया—सदा) (दुही—दु खी) हुआ (विप्परियामुवेइ—विपर्यासम्, उपैति) तत्त्वादिमेंविपरीतता को प्राप्त होता है। वह (नरगतिरिक्खजोणि—नरकतिर्यग्योनि) को (मोण-मौनम्) सयमवृत्ति की (विराहित्तु—विराध्य) विराधना करके असाधु रूप तो (सधावई—सधावति—निरतर) जाता है।

मूलार्थ—असाधुरूप वह दुश्चरित्र अत्यन्त अज्ञानता से सयम-वृत्ति का विराधना करके सदा दु खी और उल्टे भावको प्राप्त होकर सदा नरक और तिर्यग् योनि मे आवागमन करता रहता है।

उद्देसियं कीयगडं नियागं
न मुच्चई किंचि अणेसणिज्जं।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इओ चुओ गच्छइ कट्टु पावं ॥४७॥

अन्वयार्थ—(उद्देसियं—औद्देशिकम्) उद्देश से (कीयगड—क्रीतकृतम्) मूल्य देकर खरीदा हुआ (नियागं—नियागम्) नित्य प्रति दिये जाने वाले-हुंन कार के रूप मे (अणेसणिज्ज—अनेषणीयम्) अग्राह्य आहार को (अग्गीविवा—अग्निइव' अग्नि की तरह (सव्वभक्खी—सर्वभक्षी) होकर किंचि कुछ भी (नमुच्चइ—नमुञ्चति) नही छोड़ता है, वह सर्वभक्षी साधु (इओ—इत.) यहाँ से (चुओ—च्युत:) भ्रष्ट होकर (पाव—पापकर्म) करके दुर्गतिम् अर्थात् नरकगति को जाता है।

मूलार्थः—असाधु वह पुरुष औद्देशिक, क्रीतकृत, नित्य पिण्ड और अकल्पनीय किंचिन्मात्र भी पदार्थ नहीं छोड़ता अग्नि की तरह सर्वभक्षी होकर पापकर्म करता हुआ नरकादि गतियों में जाता है।

न तं अरी कंठछित्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥४८॥

अन्वयार्थः—(तं—तम्) उस अनर्थ को (कण्ठछित्ता—कण्ठछेत्ता) कंठकाटने वाला (अरी—अरि:) शत्रु भी (न करेइ—न करोति) नहीं करता है [जं—यत्] जिस अनर्थ को (से—तस्य) उसकी (अप्पिया—आत्मीया) अपनी (दुरप्पा—दुष्टात्मा) (करे—करोति) करती है। (से—स) (दयाविहूण—दयाविहीन) वह पुरुष (मच्चुमुहं—मृत्युमुखम्) तु—तो (पत्ते—प्राप्त) (पच्छाणुतावेण—पश्चादनुतापेन) पश्चात्ताप से दग्ध हुआ (नाहिई—ज्ञास्यति) जानेगा।

मूलार्थः—दुराचार में प्रवृत्त हुआ यह अपना आत्मा जिस प्रकार का अनर्थ करता है, वैसा अनर्थ तो कंठ—छेदन करनेवाला शत्रु भी नहीं कर सकता। वह दयाविहीन पुरुष जब मृत्यु के मुँह मे पड़कर पश्चात्ताप से दग्ध होगा तब जानेगा।

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठे विवियासमेइ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए,
दुहओ वि से झिज्झइ तत्थ लोए ॥४९॥

अन्वयार्थ—'तस्स—तस्य' उसकी रुचि तो 'नग्गरुई—नग्नरुचि' 'निरट्ठिया—निरर्थिका' उत्तम अर्थ मे 'विवियासमेई—विपर्यासमेति' विप-रीत भाव को 'एइ—एति' प्राप्त करता है। 'इमे—अयम्' 'विलोए—अपिलोक:' यहलोक भी 'से—तस्य' उसका 'नत्थि—नास्ति' नहीं है 'परेलोए वि—परलोकेऽपि' परलोक भी नहीं है अतः 'दुहओ—द्विधापि'

दोनों प्रकार से (से—स) वह (तत्थ—तत्र) वहाँ (लोए—उभयलोक) से ही (भिज्जइ—क्षीयते) नष्ट हो जाता है।

मूलार्थः—उसकी साधु-वृत्ति में रुचि रखना व्यर्थ है कि जो उत्तम-अर्थ में भी विपरीत भाव को प्राप्त होता है। उसका न तो यह लोक है और न परलोक ही है। अतः दोनों लोक से ही भ्रष्ट हो जाता है।

एमेव हाछन्द कुसीलरूवे,
मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा,
निरट्ठिसोया परितावमेइ ॥५०॥

अन्वयार्थः—(एमेव—एवमेव) इसी प्रकार (हाच्छन्द—यथाछन्द) स्वेच्छाचारी (कुसीलरूवे—कुशीलरूप) दुराचारी रूप (जिणुत्तमाण—जिनोत्तमानाम्) जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम (मग्ग—मार्गम्) (मार्ग—नियम) को (विराहित्तु—विराध्य) विराधना करके (कुररीविवा—कुररीपक्षी) स्त्री की तरह (भोगरसाणुगिद्धा—भोगरसानुगृद्धा) भोगरसों में सदा लीन हुआ (निरट्ठिया—निरर्थिका) निरर्थक शोक करने वाला होकर (परितावमेति—परितापमेति) पश्चात्ताप प्राप्त करता है।

मूलार्थः—इसी तरह स्वेच्छाचारी कुशील रूप साधु जिनेन्द्र भगवान् के नियमको विराधना करके भोगादि रसो में सदा आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली कुररी पक्षिणी की तरह पश्चताप करता है।

सुच्चाण मेहावि सुभासियं इमं,
अणुसासणं नाणगुणोववेयं,
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं।
महानियंठाण वए पहेणं ॥५१॥

अन्वयार्थः—(हे मेहावि—हे मेधाविन्) (नाणागुणो ववेय—ज्ञानगुणोपेतम्) ज्ञानगुणों से युक्त (सुभासिय—सुभाषितम्) सुन्दर वर मयेणयु (अनुसासन—अनुशासनम्) (सुच्च—श्रुत्वा) सुनकर (सव्वं—सर्वम्) सर्वप्रकार से

(कुसीलाण—कुशीलों के(मग्ग—मार्गम्) मार्ग को (अहाय—हत्वा) त्यागकर (महानियंठाण—महानिर्ग्रन्थानाम्) महानिर्ग्रन्थों के (वए—पथा)पथ से (वए—व्रज) चल ॥

मूलार्थ—हे मेधाविन्! ज्ञान गुण से युक्त इस अनोक्त (सुभषित अनुशासन सुनकर कुशीलियों के कुत्सितमार्ग को सर्वथा छोडकर तू निर्ग्रन्थों के प्रशस्त मार्ग का अनुसरण कर) अर्थात् उनके निर्दिष्ट मार्ग पर चलो।

चरित्तमायारगुणन्निए तओ,
अणुत्तरं संजम पालियाणं
निरासवे संखवियाण कम्मं,
उवेइठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥५२॥

अन्वयार्थः—(चरित्तम्—चारित्रम्) (आयार—आचार) और (गुणन्निए गुणान्वित) गुणयुक्त (तओ—ततः) उसके बाद (अणुत्तर—प्रधानम्) संजम—संयम (पालियाण—पालित्वा) पालन कर (निरासवे—निराश्रव) आश्रवसे रहित) कम्म-कर्म को (संखवियाण—संक्षपय्य) सम्यक् क्षय करके (धुव—ध्रुवम्) निश्चय (विउलुत्तम—विपुलोत्तमम्) विस्तार युक्त उत्तम (ठाण—स्थानम् मोक्ष को (उवेइ—उपैति) जाता है।

मूलार्थ—चारित्र, ज्ञानादि गुणों से युक्त होकर तदनन्तर प्रधान संयम का पालन करके आश्रव से रहित होता हुआ कर्मों का क्षय करके विस्तीर्ण तथा सर्वोत्तम ध्रुव स्थान—मोक्ष स्थान को प्राप्त हो जाता है।

एवमुग्गदन्ते वि महातवोधणे,
महामुणी महापइण्णे महायसे।
महानियण्ठिज्जमिणं महासुयं,
से काहए महया वित्थरेणं ॥५३॥

अन्वयार्थ—(एव—इस प्रकार से) से वह, अर्थात् मुनि ने राजा श्रेणिक के पूछने पर (इण—इदम्) यह (महासुय—महाश्रुतम्) (काहए—कथयति) (महानियण्ठिज्ज—महानिर्ग्रन्थीय) महान् विस्तार से। वह मुनि (उग्गो, दन्ते, [illegible]) (महामुणी—महामुनि)(महातवो—

महाप्रतिज्ञः) श्रेष्ठ प्रतिज्ञावाले और (महायसे—महायशाः महान् यशस्वी (महानियंठिज्जम्—महानिर्ग्रंथीय) अत्यंत अपरिग्रही।

मूलार्थ.—इस प्रकार उदग्र, दान्त, महातपस्वी, महामुनि, दृढप्रतिज्ञ और महान् यशस्वी उस अनाथीमुनि ने इस महा निर्ग्रन्थीय महाश्रुत को महाराजा श्रेणिक के प्रति कहा।

तुट्ठोय सेणियो राया, इणमुदाहु कयंजली।
अणाहयं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥५४॥

अन्वयार्थ —(तुट्ठो—तुष्ट) हर्षित हुआ (अयूजली—कृताञ्जली) हाथ जोडकर (सेणियो राया—श्रेणिकराजा) (इण—इदम्) यह वचन (उदाहु—उदाह) कहनेलगा कि (अणाहय—अनाथत्वम्) (जहाभूय—यथाभूतम्) 'सुट्ठु—सुष्ठु' सुन्दर 'मे-मुझे' 'उवदंसियं-उपदर्शितम्' उपदर्शित किया।

मूलार्थ—राजा श्रेणिक हर्षित होकर और हाथ जोडकर और हाथ-करने लगा कि भगवान्! अनाथता का यथार्थ स्वरूप भली प्रकार से आपने मुझको दिखला दिया।

तुज्झ सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं,
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी।
तुम्हे सणाहा य सबन्धवा य,
ज भे ठिया मग्गि जिणुत्तमाण ॥५५॥

अन्वयार्थ —(तुज्झं—त्वया) आपने (खु—खलु) निश्चय ही (मणुस्सजम्मं—मानुष्यजन्म) मनुष्य जन्म (सुलद्ध—सुलब्धम्) सुन्दर प्राप्त किया है और (लाभ—लाभाः) रूपादि का लाभ भी (तुमे—त्वया) आपने (सुलद्धा—सुलब्धाः) बहुत सुन्दर प्राप्त किया है। (महेसी!—हे महर्षे!) (तुम्हे—यूयम्) (सणाहा—सनाथाः) सनाथ हैं (य—च) और (सबधवा—सबान्धवाः) भाई बन्धु सहित हैं य-और (जं—यद्) क्योंकि (भे—भवन्तः) आप (जिणुत्तमाणं—जिनोत्तमानाम्) जिनेन्द्र भगवान् के (मग्गे—मार्गे) (ठिया—स्थिताः) स्थित हैं।

मूलार्थ—हे महर्षे! आप का ही मनुष्य-जन्म सफल है, आपने ही वास्तविक लाभ प्राप्त किया है, आपही सनाथ और सबान्धव हैं, क्योंकि आप

सर्वोत्तम जिनेन्द्र मार्ग में स्थित हुए हैं।

तसि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया।
खामेमि ते महाभाग ! इच्छामि अणुसासिउं ॥५६॥

अन्वयार्थः—(संजया !—हे संयत !) (अणाहाणं—अनाथानाम्) अनाथों को और (सव्वभूयाण—सर्वभूतानाम्) सब जीवों के (तसि—त्वमसि) तू—आप (नाहो—नाथ) हो (महाभाग !—ते-त्वाम्) आपसे मैं (खामेमि—क्षमे) क्षमापना करता आपसे (अणुसासिउं—अनुशासयितुम्) अपने को शिक्षित करना (इच्छामि—चाहता हूँ।

मूलार्थ—हे भगवान् ! आप ही अनाथों के नाथ हैं। हे संयत ! आप सर्वजीवों के नाथ हैं। हे महाभाग ! मैं आप से क्षमा की याचना करता हूँ और अपने आत्मा को आप के द्वारा शिक्षित बनाने की इच्छा करता हूँ।

पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो य जो कओ।
निमन्तिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे ॥५७॥

अन्वयार्थ—(मए—मया) मैंने (पुच्छिऊण—पृष्ट्वा) पूछकर (तुब्भं—युष्माकम्) आपके (झाणविग्घो—ध्यानविघ्न) ध्यान में विघ्न जो-यः (कओ—कृत) जो किया है (य—च) और (भोगेहिं—भोगैः) भोगोंद्वारा (निमन्तिया—निमन्त्रिताः) निमन्त्रित किया है (तं—तत्) वह (सव्वं—सर्वम्) (मे—मम) मेरे अपराध को (मरिसेहि—मर्षयन्तु)—आप क्षमा करें।

मूलार्थः—मैंने प्रश्नों को पूछकर आपके ध्यान में बाधा डाली है, और भोगों के लिए आपको निमन्त्रित किया है। इन सब अपराधों को आप क्षमा करें। आप क्षमा करने के योग्य हैं।

एवं थुणित्ताण स रायसीहो,
अणगारसीहं परमाइ भत्तिए।
सओरोहो सपरियणो सबन्धवो,
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥५८॥

अन्वयार्थ—एव-इत्यनन्तर (थुणित्ताण—स्तुत्वा) स्तुति करके (स—वह)

(रायसीहो—राजसिंह) राजाओं में सिंह समान राजा श्रेणिक (अणगारसीह—अनगारसिंहम्) साधुओं में सिंह के समान-मुनिको (परमाइ—परम) (भत्तिए—भक्त्या) अत्यन्त भक्ति से (सओरोहो—सावरोध) अन्तःपुरके सहित (सपरियणो—सपरिजन.) मन्त्री सेवकादि के साथ (सबन्धवो—सबान्धव) भाइयों के साथ (विमलेण चेयसा—विमलेन चेतसा) निर्मलचित्तसे (धम्माणुरत्तो—धर्मानुरक्त) धर्म में अनुरक्त हो गया ॥

भावार्थ—इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक मुनि की स्तुति करके परम भक्ति से अपने अन्तःपुर परिजनों और भाइयों के साथ निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त हो गया।

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं।
अभिवन्दिऊण सिरसा, अइयाओ नराहिवो ॥५६॥

अन्वयार्थ—(ऊससिय—उच्छ्वसित) विकसित हुए हैं (रोमकूवो—रोमकूप) रोमकूप हैं जिसके (नराहिवो—नराधिप) राजा श्रेणिक (पयाहिणं—प्रदक्षिणाम्) प्रदक्षिणा (काऊण—कृत्वा) करके (सिरसा—शिरसा) सिर से (अभिवन्दिऊण—अभिवन्द्य) वंदना करके (अइयाओ—अतियात.) अपने स्थान पर चला गया।

भावार्थ—विकसित रोमकूप वाला राजा श्रेणिक श्री अनाथी मुनि जी की प्रदक्षिणा करता हुआ सिर से वन्दना करके अपने स्थान को चला गया।

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदण्डविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥६०॥

अन्वयार्थ—(इयरोवि—इतरोऽपि) मुनि भी (गुणसमिद्धो—गुणसमृद्धः) गुणों से समृद्ध (तिगुत्तिगुत्तो—त्रिगुप्तिगुप्त) तीनोगुप्तियों से गुप्त और (तिदण्डविरओ—त्रिदण्ड (मनादि दण्ड) विरत) (विहगइव—विहगइव) पक्षी की तरह (विगयमोहो—विगतमोहः) मोह रहित हो (वसुहं—वसुधाम्) पृथ्वीपर (विहरइ—विहरति) विचरता है।

भावार्थ—इधर वह अनाथी मुनि भी जो गुणों से समृद्ध, तीनगुप्तियों से गुप्त और तीन दण्डों से विरत थे। बन्धन से रहित हुए पक्षी की तरह मोह होकर वसुधातल पर विचरने लगे॥ इति ब्रवीमि

(इति महानिर्ग्रन्थीय विंशतितममध्ययनं समाप्तम्.)

यह महानिर्ग्रन्थीय २० वां अध्ययन समाप्त हुआ।

अह समुद्दपालीयं एगवीसइमं अज्झयणं

चंपाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥१॥

अन्वयार्थ.—(चपाए—चम्पायाम्) चंपा नगरी मे (पालिए—पालित:) पालितनाम-नामका (सावए—श्रावक:) श्रावक (वाणिए—वणिक) वैश्य (आसि आसीत्) रहता था (सो—स) वह श्रावक, (उ—वितर्के) (महप्पणो—महात्मनः) महात्मा का (भगवओ—भगवत) भगवान् (महावीरस्स—महावीरस्य) महावीर का (सीस—शिष्य.) शिष्य था ।

मूलार्थः—चम्पा नगरी मे पालित नाम का एक वैश्य श्रावक रहता था । वह महात्मा भगवान् महावीर का शिष्य था ।

निग्गंथे पावयणे, सावए से वि कोविए ।
पोएण ववहरते, पिहुंड नगरमागए ॥२॥

अन्वयार्थ.—(से—स) वह (सावए—श्रावक) (वि—अपि) भी (निग्गथे—नैर्ग्रंथे) निर्ग्रन्थ के (पावयणे—प्रवचने) प्रवचन मे (कोविए—कोविद) विशेष पडित था । (पोएण—पोतेन) जहाज से (ववहरते—व्यवहरन्) व्यवहार करता हुआ (नयर—नगरम्) शहर मे (आगए—आगत) आ गया ।

मूलार्थः—वह श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन के विषय मे विशेष जानकार था । और जाहाज द्वारा व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नाम के शहर मे आ गया ।

पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं ।
तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥३॥

अन्वयार्थ :—(पिहुंडे—पिहुण्डे) पिहुण्ड नगर में (ववहरंतस्स—व्यवहरतः) व्यापार करते हुए (तस्स) उसके लिए (वाणिओ—वणिक्) किसी वैश्य ने (धूयरं—दुहितरम्) अपनी पुत्री (देइ—ददाति) दे दी (अह—अथ) उसके बाद (तं—ताम्) उस अपनी (ससत्तं—ससत्त्वाम्) गर्भवती स्त्री को (पइगिज्झ—प्रतिगृह्य) लेकर (सदेसं—स्वदेशम्) अपने देश को (पत्थिओ—प्रस्थित) प्रस्थान कर दिया।

मूलार्थ :—उसके बाद पिहुंड नगर में व्यापार करते हुए उस पालित सेठ को किसी वैश्य ने अपनी कन्या दे दी कुछ समय बाद अपनी गर्भवती स्त्री को लेकर वह अपने देश की ओर चल पड़ा।

अह पालियस्स घरणी, समुद्दम्मि पसवई।
अह दारए तहिं जाए, समुद्दपालित्ति नामए ॥४॥

अन्वयार्थ :—(अह—अथ) उसके बाद (पालियस्स—पालितस्य) पालित की (घरणी—गृहिणी) स्त्री (समुद्दम्मि—समुद्रे) समुद्र में (पसवई—प्रसूते (स्म)) प्रसूत हो गई। अह-इस बाद के (तहिं—तत्र) वहाँ पर (दारए—दारकः) पुत्र (जाए—जातः) उत्पन्न हुआ (समुद्दपालि—समुद्रपाल—इति) समुद्रपाल ऐसा (नामए—नामतः) नाम से वह प्रसिद्ध हुआ।

मूलार्थ :—*उसके बाद पालित की स्त्री को समुद्र में प्रसव हुआ और* वहाँ उसका पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि (समुद्रपाल) नाम से प्रसिद्ध हुआ।

खेमेण आगए चंपं, सावए वाणिए घरं।
सवड्ढई घरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥५॥

अन्वयार्थ:— (खेमेण—क्षेमेण) कुशल पूर्वक (वाणिए—वणिजि) वणिक् (सावए—श्रावके) श्रावक के (चंप—चम्पायाम्) चम्पा में (घरं—गृहम्) घरको (आगए—आगते) आने पर (तस्स—तस्य) उसके (घरे—गृहे) घरमें (से दारए—सः दारकः) वह पुत्र (सुहोइए—सुखोचित.) सुख-पूर्वक (सवड्ढई—संवर्धते) अच्छी तरह बढ़ता है।

मूलार्थ :—वैश्य वह श्रावक कुशलतापूर्वक अपने घर आ गया और वह बालक उसके घर में सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

बावत्तरीकलाओ य सिक्खिए नीइकोविए।
जोव्वणेण य अप्फुण्णे, सुरूवे पियदंसणे ॥६॥

अन्वयार्थ —(बावत्तरीकलाओ—द्वासप्ततिकलाः) बहत्तर कलाओं को (सिक्खिए—शिक्षित) सीख गया (नीइकोविए—नीतिकोविद) नीति शास्त्र का पंडित (जोव्वणेण—यौवनेन) युवावस्था से (अप्फुण्णे—आपूर्ण) परिपूर्ण (य—च) और (सुरूवे—सुरूप) सुन्दर (पियदंसणे—प्रियदर्शन) प्रियदर्शी बन गया।

मूलार्थ —उसके बाद वह समुद्रपाल पुत्र भी ७२ कलाओं को सीख गया, और नीति शास्त्र में भी निपुण हो गया तथा तरुणाई में वह सब को सुन्दर और प्यार लगने लगा।

तस्स रूववइं भज्जं, पिया आणेई रूविणि।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुंदगो जहा ॥७॥

अन्वयार्थ —(तस्स—तस्य) उसके (पिया—पिता)पिता ने (रूविणि—रूपिणीम्) रुपिणाम वाली (रूववइं—रूपवतीम्) रूपवाली (भज्जं—भार्याम्) स्त्री को (आणेइ—आनयति) लाकर दी (दोगुंदगो—दोगुंदक) दोगुंदक दोगुंदक देव की (जहा—यथा)तरह (रम्मे—रम्ये) सुन्दर (पासाए—प्रासादे) महल में (कीलए—क्रीडति) क्रीडा करता था।

मूलार्थ — उसके पिता ने रुपिणी नाम वाली अति रूपवती भार्या उसको लाकर दी। अर्थात् एक परम सुन्दरी कन्या के साथ विवाह कर दिया। वह उस भार्या के साथ दोगुंदक देव की तरह अपने सुन्दर महल में स्वर्गीय सुख का अनुभव करता था।

अह अन्नया कयाई, पासायालोयणो ठिओ।
वज्झ मंडण सोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं ॥८॥

अन्वयार्थः—(अह—अथ) [अन्नया—अन्यदा] दूसरे दिन (कयाई—कदाचित्) किसी समय (पासायालोयणे—प्रासादालोकने) महल के खिड़की में (ठिओ—स्थितः)बैठा हुआ (वज्झ मंडण सोभाग—वध्यमण्डनशोभकम्) वध—

योग्य मडन है सौभाग्य जिसका ,वज्झ—वध्यम्, वध के योग्य ,वज्झगं—वध्यगम, वध्य स्थान पर ले जाते हुये चोर को (पासइ—पश्यति) देखता है।

मूलार्थ—किसी समय महल की खिड़की में बैठा हुआ समुद्रपाल वध योग्यचिन्हों सुमज्जित वध्य—चोर को मारने के स्थान मे ले जाते हुए देखता है।

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्द पालो इन मब्ववी।
अहो असुहाण कम्मण, निज्जाण पावग इय ॥६॥

अन्वयार्थ—'त—तम्, उसको 'पासऊण—दृष्ट्वा' देखकर 'संविग्गो—संवेगम्, संवेग को प्राप्त हुआ 'समुद्दपाल, 'इण—इदम्, इस वचन को अब्बवी अब्रवीत्, कहने लगा।'अहो— आश्चर्य है 'असुहाण कम्मण—अशुभ कर्मणाम्, अशुभ कर्मों का 'निज्ज्यार्ण—निर्याणम्' परिणाम 'इमं—इदम्' यह पवग-पापवम्' पापरूप ही है।

मूलार्थ—उस चोर को देखकर संवेग को प्राप्त हुआ समुद्रपाल इस प्रकार कहने लगा—अहो अशुभ कर्मों का अन्तिम फल पापरूप ही है। जैसे कि इस चोर को हो रहा है।

संबुद्धो सो तहिं भगवं, परमसंवेगमागओ।
आपुच्छम्मापियरो, पव्वए जणगारियं ॥१०॥

अन्वयार्थ:—'भगव—भगवान्' 'सो—स, वह समुद्रपाल 'तहि—तत्र, उस खिड़की में बैठा हुआ ही 'सबुद्धो—सम्बुद्ध', तत्ववेत्ता होकर 'परम संवेग—परमसंवगम्, परमसम्वेगको 'आगओ—आगत, प्राप्त हो गया 'अम्मापियरो—अम्बापितरौ, माता-पिता से 'आपुच्छ—आप्टवछय, पूछकर 'अणगारिय—अनगारितम्, अनगारी 'पव्वए—प्रव्रजित' दीक्षा ले ली।

मूलार्थ—भगवान् समुद्रपाल तत्ववेत्ता होकर उत्कृष्ट सम्वेग को प्राप्त हो गए। फिर माता-पिता से पूछ कर अनगार वृत्ति के लिए दीक्षित हो गए।

जहित्तु संगं च महाकिलेसं,
महान्तमोहं कसिणं भयानगं।

परियाय धम्मं धयाभि रोय राज्जा,
वयाणि सोलाणि परीसहे य ॥११॥

अन्वयार्थ—'महान्तमोह—महामोहम्, महामोह तथा 'महाकिलेसम्—महाक्लेशम्' तथा 'महाभयानकम्' अत्यन्त भय करने वाला 'कसिण—कृत्स्नम' सम्पूर्ण 'सग—सगम स्वजन सग को 'जहितु—हित्वा, छोडकर च—और 'परियायधम्म्—पर्यायधर्मम्' प्रव्रज्या—रूप धर्म में 'अभिरोय एज्जा—अभिरोचयति, मन लगता हुआ 'वयाणि सिलाणिय—व्रतानिशीलानि, व्रत और शील 'हसीस हे—परीषहान्—परिषहो को सहन करने लगा।

मूलार्थ—महामोह और महाक्लेश तथा भयानक स्वजनादि के सग को छोड़ कर यह समुद्रपाल प्रव्रज्यारूप धर्म में अभिरुचि करने लगा। जो कि व्रत शील और परिषहो के सहन रूप हैं।

अहिंसा सच्च च अतेणग च,
तत्तो य बम्भ अपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पंचमपधयाणि,
धरिज्जधम्मं जिणदेसिय विऊ ॥१२॥

अन्वयार्थ—'विऊ—विद्वान् विद्वान् पुरुष 'अहिंसा, सच्च—अहिंसा, सत्यम्' 'च—और' 'अतेणग—अस्तेनकम्' अचौर्य कर्म 'च—पुनः' 'तत्तो-तत' उसके बाद 'बभ—ब्रह्म' ब्रह्मचर्य 'च—और' 'अपरिग्गह—अपरिग्रहम्' अपरिग्रह 'च—पादपूर्ति मे 'पडिवज्जिया—प्रतिपाद्य' ग्रहण करके पचमहव्वयणि—पचमहाव्रतानि' पाच महाव्रतों को 'चरिज्ज—चरति' आचरण करे 'जिणदेसियं—जिनदेशितम्' जिनेन्द्र देव द्वारा उपदेश किये हुए 'धम्म—धर्मम्' धर्म को आचरण करे।

मूलार्थ—विद्वान् पुरुष अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच महाव्रतो को ग्रहण करके जिनेन्द्र देव के उपदेश किये हुए धर्म का आचरण करे।

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी,
खंतिक्खमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो,
चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइंदिए ॥१३॥

अन्वयार्थ—'सव्वेहिं—सर्वेषु' सर्व 'भूएहिं—भूतेषु' भूतों पर 'दयाणुकंपी—दयानुकम्पी' दया द्वारा अनुकम्पा करने वाला 'खंतिक्खमे—क्षान्तिक्षमे' क्षमा करने मे समर्थ 'संजय—संयत' संयमी 'बंभयारी—ब्रह्मचारी' 'सुसमाहिइंदिए—सुसमाहितेन्द्रिय.' सुन्दर समाधि वाला और जितेन्द्रिय 'भिक्खू—भिक्षु' सावज्जजोगं—सावद्ययोगम्' सावद्य कर्म को 'परिवज्जयन्तो—परिवर्जयन्' बिल्कुल छोड़ता हुआ 'चरिज्ज—चरेत्' आचरण करे।

मूलार्थ:—सर्वभूतों पर दया द्वारा अनुकम्पा करने वाला, क्षमावान्, संयमी, ब्रह्मचारी, समाधियुक्त, जितेन्द्रिय भिक्षु सर्व प्रकार के सावद्य व्यापार को छोड़ता हुआ धर्म का आचरण करे।

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे,
बलाबलं जाणिय अप्पणो य।
सीहो व सद्देण न सन्तसेज्जा,
वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु ॥१४॥

अन्वयार्थ—'रट्ठे—राष्ट्रे' राष्ट्र में साधु 'अप्पणो—आत्मनः' अपने आत्मा के 'बलाबल—बल+अबल' को 'जाणिय—ज्ञात्वा' जानकर 'य—और' कालेण कालं—कालेन कालम्' समयानुसार 'विहरेज्ज—विहरेत्' विचरे, 'सीहोव—सिंह इव' सिंह की तरह केवल 'सद्देण—शब्देन' शब्द मात्र से 'नसन्तसेज्जा—नसंत्रस्येत्' भयभीत न होवे 'वयजोग—वाग्योगम्' वचनयोग 'अप्रियवचनम्' को 'सुच्चा—श्रुत्वा' सुनकर 'असब्भं—असभ्यम्' अपशब्द वचन को 'न आहु—न ब्रूयात्' न बोले।

मूलार्थ:—मुनि राष्ट्र में सदा समय क्रियानुष्ठान करता हुआ देश में विचरे। अपने आत्मा के बल-अबल को जानकर संयमानुष्ठान में दृढ़

तथा केवल शब्द को सुनकर भयभीत न होवे और यदि कोई अपशब्द 'अघोर-वचन' बोले तबभी उसके बदले अपशब्द वचन न बोले।

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा,
पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयए ज्जा,
न यावि पूय गरहं च संजए ॥१५॥

अन्वयार्थ—'संजए—संयत' संयमी साधु 'उवेहमाणो—उपेक्षमाण' उपेक्षा करता हुआ 'परिव्वएज्जा—परिव्रजेत्' संयम मार्ग में विचरे 'पियमप्पियं—प्रियम्—अप्रियम्' प्रिय और अप्रिय 'सव्व—सर्वम्' 'तितिक्खएज्जा-तितिक्षेत्' सहन करे 'न—नहीं' और 'सव्व—सर्व' सव्वत्थ—सर्वत्र' 'अभिरोयएज्जा—अभिरोचयेत्' इच्छा लगावे 'च—और' नयावि—नचापि' और न 'पूय,गहरं—पूजा, गर्हाम्' सत्कार, निन्दा कभी न चाहे।

मूलार्थ—संयमी साधु उपेक्षा करता हुआ संयम मार्ग में विचरे। प्रिय-अप्रिय सब को सहन करे। तथा सब पदार्थ वा सर्वस्थानों में अभिरुचि न करे कोई पूजा 'सत्कार' गर्हा, निन्दा, करे उसको भी न चाहे।

अणेगछन्दामिह माणवेहिं,
जे भावओ संपगरेइ भिक्खू।
भयभेरवा तत्थ उईन्ति भीमा,
दीव्वा माणुस्सा अदुवा तिरिक्खा ॥१६॥

अन्वयार्थ—'अणेगछन्दाम्—अनेकछन्दांसि' अनेक प्रकार के अभिप्राय है 'इह—इस लोक में' 'माणवेहि—मानवेषु' मनुष्य के 'जे—यान्' जिनको 'भावओ—भावत' भाव से 'संपगरेइ—संप्रकरोति' ग्रहण करता है। 'भिक्खू—भिक्षु' साधु 'भय भेरवा—भयभैरवा' भयोत्पादक अति भयंकर 'तत्थ—तत्र' वहाँ पर 'उईन्ति—उद्यन्ति' उदय होते हैं 'भीमा—भीमा' अति रौद्र 'दिव्वा—दिव्या' देवसम्बन्धी 'माणुसा—मानुष्या' मनुष्य सम्बन्धी 'अदुवा—अथवा' 'तिरिच्छा—तैरश्चा' तिर्यंचसम्बन्धीकष्ट।

मूलार्थ—इस लोक में मनुष्यों के अनेक प्रकार के अभिप्रायों को साधु

भाव से जानकर—उत्पर सूत्र विचार करे। तथा उदय में आये हुए भय देने वाले अति रौद्र, देव, मनुष्य, तिर्यञ्चसम्बन्धी कष्टों को शान्ति से सहन करे।

परीसहा दुव्विसहा अणेगे,
सीयन्ति जत्था बहुकायरा नरा।
से तत्थ पत्ते न वहिज्जपंडिए,
संगामसीसे इव नागराया ॥१७॥

अन्वयार्थ—'अणेगे—अनेके' प्रकार के 'दुव्विसहा—दुर्विषहा' कठिनाई से सहने योग्य 'परीसहा—परिषहों के' उपस्थित होने पर 'जत्था—यत्र' जहाँ 'बहुकायरा नरा—बहुकातरा नरा' बहुत से कायर पुरुष 'सीयन्ति—सीदन्ति' ग्लानि को प्राप्त होते हैं। 'तत्थ—तत्र' वहाँ 'से—सः' वह मुनि 'पत्ते—प्राप्त' 'पंडिए—पंडित' 'न वहिज्ज—नाव्यथत' व्यथित न हो। 'इव—जैसे' (संगामसीसे—सग्रामशीर्षे) सग्राम में (नागराया—नागराज) गजेन्द्र नहीं घबराता।

मूलार्थ—अनेक प्रकार के दुर्जय परीषहों के उपस्थित हो जाने पर बहुत से कायर पुरुष घबरा जाते हैं। परन्तु वह समुद्रपाल मुनि सग्राम में गजेन्द्र की तरह उन घोर परीषहों के आनेपर भी उनसे खबराये नहीं।

सीओसिणा दंसमसगाय फासा,
आयंका विविहा फुसंति देहं।
अकुक्कुओ तत्थ अहियासएज्जा,
रयाइं खेवेज्ज पुराकडाइं ॥१८॥

अन्वयार्थ—(सीओसिणा—शीतोष्णा) शीत, उष्ण (दंसमसगा—दंशमशका) डस, मच्छर (फासा—स्पर्शा) तृणादिका स्पर्श (य—और) (आयंका—आतंका) आतङ्क-घातक रोग (विविहा—विविधा) अनेक प्रकार के उनके (देहं—शरीर को) यद्यपि (फुसंति—स्पृशन्ति) स्पर्श करते हैं, तथापि (अकुक्कुओ नेकुकुच) कुत्सित शब्द न करता हुआ (तत्थ—वहाँ) (अहियासएज्जा—अधिसहेत सहन करता है (पुराकडाइं—पुराकृतानि) पूर्व में किये हुये (रयाइं—रजांसि) कर्मरज को (खेवेज्ज—क्षपयेत्) क्षय करके।

तथा भैरव शब्द को सुनकर भयभीत न होवे और यदि कोई असभ्य 'प्रयोग-वचन' बोले तबभी उसके बदले असभ्य वचन न बोले।

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा,
पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा,
न यावि पूयं गरहं च संजए॥१५॥

अन्वयार्थ—'संजए संयत' संयमी साधु 'उवेहमाणो—उपेक्षमाण' उपेक्षा करता हुआ 'परिव्वएज्जा परिव्रजेत्' संयम मार्ग में विचरे 'पियमप्पियं—प्रियम्—अप्रियम्' प्रिय और अप्रिय 'सव्व सर्वम्' 'तितिक्खएज्जा-तितिक्षेत्' सहन करे 'न—नहीं' और 'सव्व—सर्व' सव्वत्थ—सर्वत्र' 'अभिरोयएज्जा—अभिरोचयेत्' इच्छा लगावे 'च—और' यावि—चापि' और न 'पूयं,गरहं—पूजां, गर्हाम्' सत्कार, निन्दा कभी न चाहे।

मूलार्थ—संयमी साधु उपेक्षा करता हुआ संयम मार्ग में विचरे। प्रिय-अप्रिय सब को सहन करे। तथा सब पदार्थ वा सर्वस्थानों में अभिरुचि न करे कोई पूजा 'सत्कार' गर्हा, निन्दा, करे उसको भी न चाहे।

अणेगछन्दामिह माणवेहिं,
जे भावओ संपगरेइ भिक्खू।
भयभेरवा तत्थ उइन्ति भीमा,
दिव्वा माणुस्सा अदुवा तिरिच्छा॥१६॥

अन्वयार्थ—'अणेगछन्दाम्—अनेकछन्दांसि' अनेक प्रकार के अभिप्राय है 'इह—इस लोक में' 'माणवेहिं—मानवेषु' मनुष्य के 'जे—यान्' जिनको 'भावओ—भावत' भाव से 'संपगरेइ—सम्प्रकरोति' ग्रहण करता है। 'भिक्खू—भिक्षु' साधु 'भय भेरवा—भयभैरवा' भयोत्पादक अति भयंकर 'तत्थ—तत्र' वहाँ पर 'उइन्ति—उदयन्ति' उदय होते हैं 'भीमा—भीमा' अति रौद्र 'दिव्वा—दिव्या' देवसम्बन्धी 'माणुसा—मानुष्या' मनुष्य सम्बन्धी 'अदुवा—अथवा' 'तिरिच्छा—तैरश्चा' तिर्यंचसम्बन्धीकष्ट।

मूलार्थ—इस लोक में मनुष्यों के अनेक प्रकार के अभिप्रायों को साधु

भाव से जानकर—उनपर सूत्र विचार करे। तथा उदय में आये हुए भय देने वाले अति रौद्र, देव, मनुष्य, तिर्यञ्चसम्बन्धी कष्टों को शान्ति से सहन करे।

परीसहा दुव्विसहा अणेगे,
सीयन्ति जत्था बहुकायरा नरा।
से तत्थ पत्ते न वहिज्जपडिए,
सगामसीसे इव नागराया ॥१७॥

अन्वयार्थ—'अणेगे—अनेके' प्रकार के 'दुव्विसहा—दुर्विषहा' कठिनाई से सहने योग्य 'परीसहा—परिषहों के' उपस्थित होने पर 'जत्था—यत्र' जहां 'बहुकायरा नरा—बहुकातरा नरा' बहुत से कायर पुरुष 'सीयन्ति—सीदन्ति' ग्लानि को प्राप्त होते हैं। 'तत्थ—तत्र' वहां 'से—सः' वह मुनि 'पत्ते—प्राप्त' 'पंडिए—पंडित' 'न वहिज्ज—नाव्यथत' व्यथित न हो। 'इव—जैसे' (संगामसीसे—संग्रामशीर्षे) संग्राम में (नागराया—नागराज) गजेन्द्र नहीं घबराता।

मूलार्थ—अनेक प्रकार के दुर्जय परीषहों के उपस्थित हो जाने पर बहुत से कायर पुरुष घबरा जाते है। परन्तु वह समुद्रपाल मुनि संग्राम में गजेन्द्र की तरह उन घोर परीषहों के आनेपर भी उनसे घबराये नहीं।

सीओसिणा दंसमसगाय फासा,
आयंका विविहा फुसंति देहं।
अकुक्कुओ तत्थ अहियासएज्जा,
रयाइं सेवेज्ज पुराकडाइं ॥१८॥

अन्वयार्थ—(सीओसिणा—शीतोष्णा) शीत, उष्ण (दंसमसगा—दंशमशकाः) डंस, मच्छर (फासा—स्पर्शाः) तृणादिका स्पर्श (य—और) (आयंका—आतङ्का) आतङ्क-घातक रोग (विविहा—विविधा) अनेक प्रकार के उनके (देहं—शरीर को) यद्यपि (फुसंति—स्पृशन्ति) स्पर्श करते हैं, तथापि (अकुक्कुओ—अकुत्कुचः) कुत्सित शब्द न करता हुआ (तत्थ—वहां) (अहियासएज्जा—अधिसहेत) सहन करता है (पुराकडाइं—पुराकृतानि) पूर्व में किये हुये (रयाइं—रजांसि) कर्मरज को (सेवेज्ज—क्षपयेत्) क्षय करके।

मूलार्थ—समुद्र पाल मुनि शीत उष्ण, दंश, मच्छर, तृणादि का स्पर्श तथा नाना प्रकार के भयङ्कर रोग, जो देह को स्पर्श करते हैं, उनको सहन करता हुआ और पूर्वसंचित कर्मरज को क्षय करता हुआ विचरता था।

पहायरागं च तहेव दोसं,
मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणे।
मेरुव्व वाएण अकम्पमाणो,
परीसहे आयगुत्ते सहिज्जा ॥१९॥

अन्वयार्थ—(राग—रागम्) राग को च—और (तहेव—तथैव) उसी प्रकार (दोस—द्वेषम्) द्वेष को (च—और) (मोह—मोह को) (वियक्खणे—विचक्षणः) विद्वान् (भिक्खू—भिक्षु) (आयगुत्ते—गुप्तात्मा) साधु (वाएण—वातेन) वायु द्वारा (अकम्पमाणो—अकम्पमान) नहीं कंपाया जाता हुआ (मेरुव्व—मेरु इव) मेरु पर्वत की तरह (परीसहे—परीषहान्) परीषहों को (सहिज्जा—सहेत्) सहन करे।

मूलार्थ—ज्ञानी साधु सदा ही राग, द्वेष और मोह का परित्याग करके वायु के वेग से कम्पायमान न होने वाले मेरु पर्वत की तरह आत्मरक्षक होकर परीषहों को सहन करे।

अणुन्नए नावणए महेसी,
न यावि पूयं गरिहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्ज संजए,
निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥२०॥

अन्वयार्थ—(से—स) वह (महेसी—महर्षि) (अणुन्नए—अनुन्नत) उन्नत भाव से रहित (नावणए—नावनत) अवनत भाव रहित (पूयं—पूजाम्) पूजा में (गरिहं—गर्हाम्) निन्दा में (नयावि—नचापि) नहीं (संजए—सक्त) सक्त न करता हुआ (उज्जुभावं—ऋजु भावम्) सरल भाव-समान भाव को (पडिवज्ज—प्रतिपद्य) ग्रहण करके (संजए—संयत) संयमी साधु (विरए—विरत) वैराग्य भाव प्राप्त कर (निव्वाणमग्गं—निर्वाणमार्गम्) मोक्ष मार्ग को (उवेइ—उपैति) प्राप्त होता है।

मूलार्थ—जिनका प्रशंसा तथा सत्कार में उन्नत भाव नहीं, निन्दा में अवनत भाव नहीं किन्तु समभाव रखता है। वह साधु विरागी बनकर मोक्ष मार्ग को प्राप्त होता है।

अरइरइसहे पहीणसंथवे,
विरए आयहिए पहाणवं ।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई,
छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अरइ, रइ सहे अरति, रति को सहन करता है (पहीणसंथवे—प्रहीणसंस्तव) सम्तव त्यागी (विरए—विरए) रागादि रहित (आयहिए—आत्महित) आत्महितैषी (पहाणवं प्रधानवान्) (परमट्ठपएहिं—परमार्थपदेषु) परमार्थ पदों में (छिन्नसोए, अममे,अकिंचणे—छिन्नशोकः, अमम., अकिंचन) शोक रहित अपरिग्रह होकर (चिट्ठइ—तिष्ठति) रहता है।

मूलार्थः—समुद्रपाल मुनि चिन्ता और रति को सहता हुआ गृहस्थों का संस्तव छोड़ दिया है। रागादि से रहित होकर आत्मा के हितकारी प्रधान पद वा परमार्थ पदों में स्थित है। वह शोक तथा कर्मस्रोत को काटकर ममत्व से रहित अपरिग्रह हो गया है।

विवित्त लयणाइ भइज्ज ताई,
निरोवलेयाइं असंथडाइं ।
इसीहिं चिण्णाइं महायसेहिं,
काएण फासिज्ज परीसहाइं ॥२२॥

अन्वयार्थ—(ताई—त्रायी) षट्कायरक्षक साधु (विवित्त—विविक्त) स्त्री आदि से रहित (निरोवलाइ—निरुपलेपानि) लेप रहित (असंथडाइ—असंस्तृतानि) बीज आदि से रहित (लिमणाइं—लयनानि) (महायसेहिं—महायशोभिः) जो अत्यन्त यशस्वी (इसीहीं—ऋषियों द्वारा (चिण्णाइं—चीर्णानि) आचरण किये गये हों (काएण—कायद्वारा) (परीसहाइं—परिषहान्) परीषहों के (फासिज्ज—स्पृशति) सहन करे।

मूलार्थ—समुद्रपाल मुनि शीत उष्ण, दंश, मच्छर, तृणादि का स्पर्श तथा नाना प्रकार के भयंकर रोग, जो देह को स्पर्श करते हैं, उनको सहन करता हुआ और पूर्वसंचित कर्मरज को क्षय करता हुआ विचरता था।

पहाय रागं च तहेव दोसं,
मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणे।
मेरुव्व वाएण अकम्पमाणो,
परीसहे आयगुत्ते सहिज्जा ॥१९॥

अन्वयार्थ—(राग—रागम्) राग को च—और (तहेव—तथैव) उसी प्रकार (दोस—द्वेषम्) द्वेष को (च—और) (मोह—मोह को) (वियक्खणे—विचक्षण.) विद्वान् (भिक्खू—भिक्षु) (आयगुत्ते—गुप्तात्मा) साधु (वाएण—वातेन) वायु द्वारा (अकम्पमाणो—अकम्पमान) नहीं कंपाया जाता हुआ (मेरुव्व—मेरु इव) मेरु पर्वत की तरह (परीसहे—परीषहान्) परीषहों को (सहिज्जा—सहेत्) सहन करे।

मूलार्थ—ज्ञानी साधु सदा ही राग, द्वेष और मोह का परित्याग करके वायु के वेग से कम्पायमान न होने वाले मेरु पर्वत की तरह आत्मरक्षक होकर परीषहों को सहन करे।

अणुन्नए नावणए महेसी,
न यावि पूयं गरिहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्ज संजए,
निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥२०॥

अन्वयार्थ—(से—स) वह (महेसी—महर्षि) (अणुन्नए—अनुन्नत) उन्नत भाव से रहित (नावणए—नावनत) अवनत भाव रहित (पूय—पूजाम्) पूजा में (गरिह—गर्हाम्) निन्दा में (नयावि—नचापि) नहीं (संजए—सजत) राग न करता हुआ (उज्जुभाव—ऋजु भावम्) सरल भाव-समान भाव को (पडिवज्ज—प्रतिपद्य) ग्रहण करके (संजए—संयत) संयमी साधु (विरए—विरत) वैराग्य भाव प्राप्त कर (निव्वाणमग्ग—निर्वाणमार्गम्) मोक्ष मार्ग को (उवेइ—उपैति) प्राप्त होता है।

मूलार्थ—जिसको प्रशंसा तथा सत्कार में उन्नत भाव नहीं, निन्दा में अवनत भाव नहीं किन्तु समभाव रखता है। वह साधु विरागी बनकर मोक्ष मार्ग को प्राप्त होता है।

अरइरइसहे पहीणसंथवे,
विरए आयहिए पहाणवं।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई,
छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अरइ, रइ सहे अरति, रति को सहन करता है (पहीणसंथवे—प्रहीणसंस्तव) संस्तव त्यागी (विरए—विरतः) रागादि रहित (आयहिए—आत्महित) आत्महितैषी (पहाणवं प्रधानवान्) (परमट्ठपएहिं—परमार्थपदेषु) परमार्थ पदों में (छिन्नसोए, अममे, अकिंचणे—छिन्नशोक, अमम, अकिंचन) शोक रहित अपरिग्रह होकर (चिट्ठइ—तिष्ठति) रहता है।

मूलार्थः—समुन्नशील मुनि चिन्ता और रति को सहता हुआ गृहस्थों का संस्तव छोड़ दिया है। रागादि से रहित होकर आत्मा के हितकारी प्रधान पद का परमार्थ पदों में स्थित है। वह शोक तथा ममंस्रोत को काटकर ममत्व से रहित अपरिग्रह हो गया है।

विवित्त लयणाइ भइज्ज ताई,
निरोवलेवाइं असंथडाइं।
इसीहिं चिण्णाइ महायसेहिं,
काएण फासिज्ज परीसहाइं ॥२२॥

अन्वयार्थ—(ताई—त्रायी) षट्कायरक्षक साधु (विवित्त—विविक्त) स्त्री आदि से रहित (निरोवलाइ—निरुपलेपानि) लेप रहित (असंथडाइं—असंस्कृतानि) बीज आदि से रहित (लिमणाइं—लयनानि) (महायसेहिं—महायशोभिः) जो अत्यन्त यशस्वी (इसीहिं—ऋषियों द्वारा (चिण्णाइं—चीर्णानि) आचरण किये गये हों (कायेण—कायद्वारा) (परीसहाइं—परिषहान्) परीषहों के (फासिज्ज—स्पृशति) सहन करे।

मूलार्थ—जिसका प्रशंसा तथा सत्कार में उन्नत भाव नहीं, निन्दा में अवनत भाव नहीं किन्तु समभाव रखता है। वह साधु विरागी बनकर मोक्ष मार्ग को प्राप्त होता है।

> अरइरइसहे पहीणसंथवे,
> विरए आयहिए पहाणवं ।
> परमट्ठपएहिं चिट्ठई,
> छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अरइ, रइ सहे अरति, रति को सहन करता है (पहीणसंथवे—प्रहीणसंस्तव) सम्बन्ध त्यागी (विरए—विराए) रागादि रहित (आयहिए—आत्महित) आत्महितैषी (पहाणवं प्रधानवान्) (परमट्ठपएहिं—परमार्थपदेषु) परमार्थ पदों में (छिन्नसोए, अममे,अकिंचणे—छिन्नशोकः, अमम, अकिंचन) शोक रहित अपरिग्रह होकर (चिट्ठइ—तिष्ठति) रहता है।

मूलार्थः—समुद्रपाल मुनि चिन्ता और रति को सहता हुआ गृहस्थो का संस्तव छोड दिया है। रागादि से रहित होकर आत्मा के हितकारी प्रधान पद या परमार्थ पदो में स्थित है। वह शोक तथा कर्मस्रोत को काटकर ममत्त्व से रहित अपरिग्रह हो गया है।

> विवित्त लयणाइ भइज्ज ताई,
> निरोवलेवाइ असंथडाइं ।
> इसीहिं चिण्णाइ महायसेहिं,
> काएण फासिज्ज परीसहाइं ॥२२॥

अन्वयार्थ—(ताई—त्रायी) षट्कायरक्षक साधु (विवित्त—विविक्त) स्त्री आदि से रहित (निरोवलाइ—निरुपलेपानि) लेप रहित (असंथडाइ—असंस्कृतानि) बीज आदि से रहित (लिमणाइ—लयनानि) (महायसेहिं—महायशोभिः) जो अत्यन्त यशस्वी (इसीहीं—ऋषियो द्वारा (चिण्णाइ—चीर्णानि) आचरण किये गये हो (कायेण—कायद्वारा) (परीसहाइं—परिषहान्) परीषहों के (फासिज्ज—स्पृशति) सहन करे।

मूलार्थ—षट्काय का रक्षक साधु महायशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेपादि (लिपन पोतन तत्काल) से तथा बीजादि से रहित ऐसी विविक्त वसती उपाश्रय आदि का सेवन करता हुआ वहाँ उपस्थित होने वाले परीषहों को शरीर द्वारा सहन करे।

स नाणाणोवगए महेसी,
अणुत्तरं चरिउं धम्म संचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी,
ओभासई सूरिएवंऽतलिक्खे ॥२३॥

अन्वयार्थ—स—वह समुद्रपाल (महेसी—महर्षिः) (णाण—श्रुतज्ञान) से (नाणोवगए—ज्ञानोपगत) पदार्थों के रूप को जानकर (अणुत्तर—अनुत्तरम्) प्रधान (धम्मसंचय—धर्मसंचयम्) क्षमादिधर्मका सचय (चरिउ—चरित्वा) आचरण करके (अणुत्तरे—अणुत्तर) प्रधान (नाणधरे—ज्ञानधर) केवल ज्ञान धारण करने वाला (जससी—यशस्वी) यश वाला (अंतलिक्खे—अन्तरिक्षे) आकाश मे (सूरिएव—सूर्य की तरह) (ओभासई—अवभासते) प्रकाश करने लगा।

मूलार्थ—समुद्रपाल ऋषि श्रुतज्ञान के द्वारा पदार्थों के स्वरूप को जानकर और प्रधान क्षमादिधर्मों का सचय करके केवलज्ञान से उपयुक्त होकर आकाश मे प्रकाशित सूर्य की तरह अपने केवल ज्ञान से प्रकाश करने लगा।

दुविहं खवेऊण य पुण्ण पावं,
निरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोहं,
समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥

अन्वयार्थ—(दुविहं—द्विविधम्) दोनों घाती और अघाती कर्मों को (खवेऊण—क्षपयित्वा) खपाकर और (पुण्णपावं—पुण्यपापम्) पुण्य पाप को क्षय करके (निरंजणे—निरंजन) कर्म संग रहित (सव्वओ—सर्वतः) सर्व प्रकार से (विप्पमुक्के—विप्रमुक्तः) मुक्त होकर (समुद्दपाल—समुद्रपाल) (समुद्दं व—समुद्रवत्) समुद्र की तरह (महाभवोहं—महाभवौघम्) महाभवों

के समूह को (तरित्ता—तीर्त्वा) तैरकर (अपुणागम—अपुनरागमं—अपुनरागमम्) आवागमन से रहित स्थानको (गए—गत) चले गए।

मूलार्थ—दोनो प्रकार घाती—अघाती कर्मों का तथा पुण्य और पाप को क्षय करके कर्ममल से रहित हुआ समुद्रपाल मुनि सर्व प्रकार के बन्धनो से सर्वथामुक्त होकर महाभवसमूहरूप समुद्र को पार करके मोक्ष पद को प्राप्त हो गया।

इति समुद्दपालीयं एगवीसइमं अज्झयणं समत्तं ॥
इति समुद्रपालीयमेकविंशतितममध्ययनं समाप्तम् ॥

— • —

मूलार्थ—षट्काय का रक्षक साधु महायशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेपादि (लिपन पोतन इत्यादि) से तथा बीजादि से रहित ऐसी विविक्त वसती उपाश्रय आदि का सेवन करता हुआ वहाँ उपस्थित होने वाले परीषहों को शरीर द्वारा सहन करे।

स नाणाणोवगए महेसी,
अणुत्तर चरिउं धम्म संचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी,
ओभासई सूरि एवऽन्तलिक्खे ॥२३॥

अन्वयार्थ.—स—वह समुद्रपाल (महेसी—महर्षिः) (णाण—श्रुतज्ञान) से (नाणोवगए—ज्ञानोपगत) पदार्थों के रूप को जानकर (अणुत्तर—अनुत्तरम्) प्रधान (धम्मसचय—धर्मसंचयम्) क्षमादिधर्मका संचय (चरिउ—चरित्वा) आचरण करके (अणुत्तरे—अनुत्तरः) प्रधान (नाणधरे—ज्ञानधर) केवल ज्ञान धारण करने वाला (जसंसी—यशस्वी) यश वाला (अन्तलिक्खे—अन्तरिक्षे) आकाश मे (सूरिएव—सूर्य की तरह) (ओभासई—अवभासते) प्रकाश करने लगा।

मूलार्थ.—समुद्रपाल ऋषि श्रुतज्ञान के द्वारा पदार्थों के स्वरूप को जानकर और प्रधान क्षमादिधर्मों का संचय करके केवलज्ञान से उपयुक्त होकर आकाश में प्रकाशित सूर्य की तरह अपने केवल ज्ञान से प्रकाश करने लगा।

दुविहं खवेऊण य पुण्ण पावं,
निरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोहं,
समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥

अन्वयार्थ—(दुविहं—द्विविधम्) दोनो घाती और अघाती कर्मों को (खवेऊण—क्षपयित्वा) खपाकर और (पुण्णपावं—पुण्यपापम्) पुण्य पाप को क्षय करके (निरंजणे—निरंजनः) कर्म संग रहित (सव्वओ—सर्वतः) सर्व प्रकार से (विप्पमुक्के—विप्रमुक्तः) मुक्त होकर (समुद्दपाल—समुद्रपाल) (समुद्देव—समुद्रइव) समुद्र की तरह (महाभवोहं—महाभवौघम्) महाभवों

के समूह को (तरित्ता—तीर्त्वा) तैरकर (अपुणागम—अपुणरागम—अपुनरागमम्) आवागमन से रहित स्थानको (गए—गत) चले गए।

मूलार्थ—दोनों प्रकार घाती—अघाती कर्मों का तथा पुण्य और पाप को क्षय करके कर्ममल से रहित हुआ समुद्रपाल मुनि सर्व प्रकार के बन्धनों से सर्वथामुक्त होकर महाभवसमूहरूप समुद्र को पार करके मोक्ष पद को प्राप्त हो गया।

इति समुद्दपालीयं एगवीसइम अज्झयणं समत्तं ॥
इति समुद्रपालीयमेकविंशतितममध्ययनं समाप्तम् ॥

—.०—

मूलार्थ—षट्काय का रक्षक साधु महायशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेपादि (लिपन पोतन सजावट) से तथा बीजादि से रहित ऐसी विविक्त वसती उपाश्रय आदि का सेवन करता हुआ वहाँ उपस्थित होने वाले परीषहों को शरीर द्वारा सहन करे।

स नाणाणोवगए महेसी,
अणुत्तरं चरिउं धम्म संचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी,
ओभासई सूरिए वऽन्तलिक्खे ॥२३॥

अन्वयार्थ—स—वह समुद्रपाल (महेसी—महर्षि) (णाण—श्रुतज्ञान) से (नाणोवगए—ज्ञानोपगत) पदार्थों के रूप को जानकर (अणुत्तर—अननुत्तरम्) प्रधान (धम्मसचय—धर्मसंचयम्) क्षमादिधर्मका संचय (चरिउ—चरित्वा) आचरण करके (अणुत्तरे—अणुत्तरः) प्रधान (नाणधरे—ज्ञानधरः) केवल ज्ञान धारण करने वाला (जससी—यशस्वी) यश वाला (अन्तलिक्खे—अंतरिक्षे) आकाश में (सूरिएव—सूर्य की तरह) (ओभासई—अवभासते) प्रकाश करने लगा।

मूलार्थ—समुद्रपाल ऋषि श्रुतज्ञान के द्वारा पदार्थों के स्वरूप को जानकर और प्रधान क्षमादिधर्मों का संचय करके केवलज्ञान से उपयुक्त होकर आकाश में प्रकाशित सूर्य की तरह अपने केवल ज्ञान से प्रकाश करने लगा।

दुविहं खवेऊण य पुण्ण पावं,
निरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोहं,
समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥

अन्वयार्थ—(दुविह—द्विविधम्) दोनों घाती और अघाती कर्मों को (खवेऊण—क्षपयित्वा) खपाकर और (पुण्णपावं—पुण्यपापम्) पुण्य पाप को क्षय करके (निरंजणे—निरंजन) कर्म संग रहित (सव्वओ—सर्वत) सर्व प्रकार से (विप्पमुक्के—विप्रमुक्तः) मुक्त होकर (समुद्दपाल—समुद्रपाल) (समुद्देव—समुद्रवत्) समुद्र की तरह (महाभवोहं—महाभवौघम्) महाभवों

के समूह को (तरित्ता—तीर्त्वा) तैरकर (अपुणागम—अपुराणागमं—अपुणागमम्) आवागमन से रहित स्थानको (गए—गत) चले गए।

मूलार्थ—दोनों प्रकार घाती—अघाती कर्मों का तथा पुण्य और पाप को क्षय करके कर्ममल से रहित हुआ समुद्रपाल मुनि सर्व प्रकार के बन्धनों से सर्वथा मुक्त होकर महाभवसमूहरूप समुद्र को पार करके मोक्ष पद को प्राप्त हो गया।

इति समुद्दपालीयं एगवीसइमं अज्झयणं समत्तं ॥
इति समुद्रपालीयमेकविंशतितममध्ययनं समाप्तम् ॥

—०—

मूलार्थ—पट्काय का रक्षक साधु महायशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेपादि (लिपन पोतन सत्कार) से तथा बीजादि से रहित ऐसी विविक्त वसती उपाश्रय आदि का सेवन करता हुआ वहाँ उपस्थित होने वाले परीषहों को शरीर द्वारा सहन करे।

स नाणाणोवगए महेसी,
अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी,
ओभासई सूरि एवऽन्तलिक्खे ॥२३॥

अन्वयार्थ—स—वह समुद्रपाल (महेसी—महर्षि) (णण—श्रुतज्ञान) से (नाणोवगए—ज्ञानोपगत) पदार्थों के रूप को जानकर (अणुत्तर—अनुत्तरम्) प्रधान (धम्मसचय—धर्मसंचयम्) क्षमादिधर्मका संचय (चरिउं—चरित्वा) आचरण करके (अणुत्तरे—अणुत्तर) प्रधान (नाणधरे—ज्ञानधर) केवल ज्ञान धारण करने वाला (जससी—यशस्वी) यश वाला (अन्तलिक्खे—अन्तरिक्षे) आकाश मे (सूरिएव—सूर्य की तरह) (ओभासई—अवभासते) प्रकाश करने लगा।

मूलार्थ—समुद्रपाल ऋषि श्रुतज्ञान के द्वारा पदार्थों के स्वरूप को जाकर और प्रधान क्षमादिधर्मों का सचय करके केवलज्ञान से उपयुक्त होकर आकाश मे प्रकाशित सूर्य की तरह अपने केवल ज्ञान से प्रकाश करने लगा।

दुविहं खवेऊण य पुण्ण पावं,
निरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोहं,
समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥

अन्वयार्थ—(दुविहं—द्विविधम्) दोनो घाती और अघाती कर्मों को (खवेऊण—क्षपयित्वा) खपाकर और (पुण्णपावं—पुण्यपापम्) पुण्य पाप को क्षय करके (निरंजणे—निरंजन) कर्म संग रहित (सव्वओ—सर्वत) सर्व प्रकार से (विप्पमुक्के—विप्रमुक्त) मुक्त होकर (समुद्दपाल—समुद्रपाल) (समुद्दंव—समुद्रवत्) समुद्र की तरह (महाभवोह—महाभवौघम्) महाभवों

के समूह को (तरित्ता—तीर्त्वा) तैरकर (अपुणागम—अपुराणागम—अपुनरागमम्) आवागमन से रहित स्थानको (गए—गत) चले गए।

मूलार्थ—दोनो प्रकार घाती—अघाती कर्मों का तथा पुण्य और पाप को क्षय करके कर्ममल से रहित हुआ समुद्रपाल मुनि सर्व प्रकार के बन्धनों से सर्वथामुक्त होकर महाभवसमूहरूप समुद्र को पार करके मोक्ष पद को प्राप्त हो गया।

इति समुद्दपालीयं एगवीसइमं अज्झयणं समत्तं ॥
इति समुद्रपालीयमेकविंशतितममध्ययनं समाप्तम् ॥

—∘—

अह रहनेमिज्जं वावीसइमं अज्झयणम्

अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुतः) राज लक्षणों के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर में महती समृद्धि वाला, राजलक्षणों से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अंकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा।
तासि दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रियां (आसी—आस्ताम्) थीं। (तासि—तयो) उन (दोण्हंपि—द्वयोरपि) दोनों के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महा-
ै। उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमशः दो पुत्र थे।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिक:) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राजलक्षणो से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजय:) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर मे राजचिन्हो से युक्त और महती समृद्धिवाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनो भाई थे ।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्या) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशा) अत्यंतयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथ:) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वर:) जितेन्द्रिय: (भगव—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुन.) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसयुत:) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधर:) एक हजार आठ लक्षणो का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालकच्छवी) कृष्ण कांतिवाला था ।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसजुए—राजलक्षणमयुत) राजलक्षणों से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजयः) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर मे राजचिन्हों से युक्त और महती समृद्धिवाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे ।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्या) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशा) अत्यंतयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथः) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वरः) जितेन्द्रियः (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुन.) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसयुतः) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधरः) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालच्छवी) कृष्ण कांतिवाला था ।

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्
अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुतः) राज लक्षणो के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर मे महती समृद्धि वाला, राजलक्षणो से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था ।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अंकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि ।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा ।
तासि दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रिया (आसी—आस्ताम्) थीं । (तासि—तयोः) उन (दोण्हंपि—द्वयोरपि) दोनो के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे ।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महारानियाँ थी । उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमश दो पुत्र थे ।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसजुए—राजलक्षणसयुत) राजलक्षणो मे युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजयः) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर मे राजचिन्हो से युक्त और महती समृद्धिवाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनो भाई थे।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्या) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशा.) अत्यतयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथः) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वरः) जितेन्द्रिय (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुनः) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसयुतः) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधरः) एक हजार आठ लक्षणो का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालकच्छवी) कृष्ण कातिवाला था ।

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्

अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसयुतः) राज लक्षणों के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर मे महती समृद्धि वाला, राजलक्षणों से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा ।
तासि दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रियां (आसी—आस्ताम्) थीं। (तासि—तयो) उन (दोण्हपि—द्वयोरपि) दोनों के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महा-रानियां थीं। उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमशः दो पुत्र थे।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राजलक्षणों से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजयः) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर में राजचिन्हों से युक्त और महती समृद्धिवाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे ।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्याः) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशाः) अत्यन्तयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथः) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वरः) जितेन्द्रिय (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठमहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुनः) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसंयुतः) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठमहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधरः) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालच्छवी) कृष्ण कांतिवाला था ।

सोरियपुरंपि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुक्त) राजलक्षणों से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजय) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर में राजचिन्हों से युक्त और महती समृद्धिवाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे ।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्याः) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशाः) महायशवाला (लोगनाहे—लोकनाथ) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वरः) जितेन्द्रिय (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो उ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (उ—तु) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसंयुक्तः) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधरः) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालकच्छविः) कृष्ण वर्णवाला था ।

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्
अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुतः) राज लक्षणों के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर में महती समृद्धि वाला, राजलक्षणों से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अङ्कुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा।
तासिं दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रियां (आसी—आस्ताम्) थीं। (तासिं—तयोः) उन (दोण्हंपि—द्वयोरपि) दोनों के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महारानियाँ थीं। उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमशः दो पुत्र थे।

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्

अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुतः) राज लक्षणों से सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर में महती समृद्धि वाला, राजलक्षणों से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अंकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा।
तासिं दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रियां (आसी—आस्ताम्) थीं। (तासिं—तयोः) उन (दोण्हंपि—द्वयोरपि) दोनों के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महारानियाँ थीं। उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमशः दो पुत्र थे।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राजलक्षणों से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजय) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर में राजचिन्हों से युक्त और महती समृद्धि-वाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे ।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्याः) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशा) अत्यन्तयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथ) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वर) जितेन्द्रिय (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुनः) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसंयुतः) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधरः) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालकच्छविः) कृष्ण वर्णवाला था ।

सोरियपुरंपि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिक:) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राजलक्षणों से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजय:) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर में राजचिन्हों से युक्त और महती समृद्धिवाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे ।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्या:) उसका (पुत्तो—पुत्र:) पुत्र (महायसो—महायशा:) अत्यन्तयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथ:) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वर:) जितेन्द्रिय: (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुन:) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसंयुत:) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधर:) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालकच्छवि:) कृष्ण वर्णवाला था ।

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्

अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुतः) राज लक्षणों के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर मे महती समृद्धि वाला, राजलक्षणों से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था ।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अंकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि ।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा ।
तासिं दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रियां (आसी—आस्ताम्) थीं । (तासिं—तयो) उन (दोण्हपि—द्वयोरपि) दोनों के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे ।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महा-रानियाँ थी । उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमशः दो पुत्र थे ।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राजलक्षणो से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजयः) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर में राजचिन्हों से युक्त और महती समृद्धि-वाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्या) उसका (पुत्तो—पुत्रः) पुत्र (महायसो—महायशाः) अत्यन्तयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथः) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वरः) जितेन्द्रिय (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुनः) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसंयुतः) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधरः) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालकच्छवी) कृष्ण कांतिवाला था।

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्

अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राज लक्षणो के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर मे महती समृद्धि वाला, राजलक्षणों से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि।

तस्स भज्जा दुवे आसो, रोहिणी देवई तहा।
तासि दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रिया (आसी—आस्ताम्) थीं। (तासि—तयो) उन (दोण्हपि—द्वयोरपि) दोनो के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महारानियाँ थीं। उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमशः दो पुत्र थे।

सोरियपुरंपि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
समुद्दविजये नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राजलक्षणों से युक्त (समुद्दविजये—समुद्रविजय) नामं—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम नगर में राजचिन्हों से युक्त और महती समृद्धिवाला समुद्र विजय नाम का राजा था, वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्याः) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशाः) अत्यन्तयशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथ) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वरः) जितेन्द्रिय (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ।

मूलार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय, त्रिलोकी नाथ भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—सः) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—च) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसंयुतः) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधरः) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गोत्र गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालकच्छविः) कृष्ण कान्तिवाला था।

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्

अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत.) राज लक्षणो के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर मे महती समृद्धि वाला, राजलक्षणो से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा।
तासिं दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रियां (आसी—आस्ताम्) थीं। (तासिं—तयो) उन (दोण्हंपि—द्वयोरपि) दोनों के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महारानियाँ थी। उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमश दो पुत्र थे।

अह सो तत्थ निज्जन्तो, दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहि पंजरेहि च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥१४॥

अन्वयार्थः—(अह—अथ) अनन्तर (सो—सः) वह (तत्थ—तत्र) वहाँ (निज्जन्तो—निर्यन्) निकलता हुआ (वाडेहि, पंजरेहि—वाटकैः पञ्जरैश्च) बाडों और पिंजरों से (सन्निरुद्धे—सन्निरुद्धान्) भय से भागते हुए (पाणे—प्राणिन) (दिस्स—दृष्ट्वा) प्राणियों को देखकर।

मूलार्थ—इसके बाद जब नेमिकुमार आगे गये तो उन्होंने बाडों और पिंजरों में रोके गये अत्यन्त दुःखित भय से उसमें इधर-उधर भागते हुए प्राणियों को देख कर।

जीवियन्त नु सपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पसित्ता से महापण्णे, सारहिं इणमब्बवी ॥१॥

अन्वयार्थ—(महापण्णे—महाप्रज्ञ) अत्यन्त बुद्धिमान् (से—स) (जीवियन्त—जीवितान्तम्) (सपत्ते—समाप्तान्) जीवन का अन्त होने वाला जिनका उनको (मंसट्ठा—मांसार्थम्) मांस के लिए (भक्खियव्व—भक्षितव्यान्) खाने योग्य जीवों को (पासित्त—दृष्ट्वा) देखकर (सारहिं—सारथिम्) सारथि से (इण—इदम्) इस वचन को (अब्बवी—अब्रवीत) बोला।

मूलार्थ—वह महाबुद्धिमान् नेमिकुमार के जीवन का अन्त होने वाला तथा जो मांस के लिए रखे गये हैं उन प्राणियों को देखकर अपने सारथि से इस प्रकार बोला।

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहि पंजरेहि च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ॥१६॥

अन्वयार्थः—(कस्स—कस्य) किसके (अट्ठा—अर्थम्) लिये (इमेपाणा—इमे प्राणिन) ये प्राणी (एए—एते) ये (सव्वे—सर्वे) सब (सुहेसिणो—सुखैषिणः) सुख के चाहनेवाले (वाडेहि—वाटकैः) बाड़ेसे (पंजरेहि—पञ्जरैः) पिंजरों से (सन्निरुद्धा—सन्निरुद्धाः) रोके गये (अच्छहिं—तिष्ठन्ति) स्थित हैं (य—पादपूर्ति में।

अह ऊसिएण छत्तेण चामराहि य सोहिओ ।
दसारचक्केण तओ, सव्वओ परिवारिओ ॥११॥

अन्वयार्थ —(अह अनन्तर) ऊसिएण—उच्छ्रितेन) ऊँचे (छत्तेण—छत्रेण) छत्रसे (चामराहि—चामराभ्याम्) (य—च) और चमरों से (सोहिओ—शोभितः) तओ-तत (दसारचक्केण—दशार्हचक्रेण) दशार्ह चक्रसे (सव्वओ—सर्वत) सब और से (परिवारिओ—परिवारित) घिरा हुआ ।

मूलार्थ.—उसके बाद ऊँचे छत्र, दो चामर और दशार्ह (समुद्र विजय आदि दस भाइयों से) चक्र समूह से सर्व प्रकार से घिरा हुआ राजकुमार विशेष सुशोभित हो रहा था ।

चउरंगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कमं ।
तुडियाणं सन्निनाएणं, दिव्वे गगणफुसे ॥१२॥

अन्वयार्थ-(चउरंगिणीए—चतुरंगिण्या) (सेणाए—सेनया) (रइयाए—रचितया) (जहक्कम—यथा क्रमम्) क्रमानुसार (तुडियाण—तूर्याणाम्) बाद्यों के (सन्निनाएण—सन्निनादेन) विशेष नाद से (दिव्वेण—दिव्येन) प्रधान शब्दों से (गगणफुसे—गगनस्पृशः) आकाश का स्पर्श हो रहा था ।

मूलार्थ.—उस समय क्रमानुसार बनायी गई चतुरंगिणी सेना से तथा वादित्र के प्रधान शब्दों से आकाश व्याप्त हो रहा था ।

एयारिसीइ इड्ढीए, जुइए उत्तमाइ य ।
नियमाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥१३॥

अन्वयार्थ —(एयारिसीइ—एतादृश्या) इस प्रकार की (इड्ढीए ऋध्या) ऋद्धि से (वण्हिपुंगवो—वृष्णिपुंगव) यादव प्रधान अरिष्टनेमि (नियगाओ—निजकात्) अपने (भवणाओ—भवनात्) भवन से (निज्जाओ—निर्यात.) निकले ।

मूलार्थ —इस प्रकार की सर्वोत्तम द्युतियुक्त समृद्धि से घिरा हुआ यादव भगवान अरिष्टनेमिजी अपने भवन से निकले ।

अह सो तत्य निज्जन्तो, दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥१४॥

अन्वयार्थः—(अह—अथ) अनन्तर (सो—सः) वह (तत्य—तत्र) वहाँ (निज्जन्तो—निर्यन्) निकलता हुआ (वाडेहिं, पंजरेहिं—वाटैः पंजरैश्च) वाड़ों और पिंजरों से (सन्निरुद्धे—सन्निरुद्धान्) भय से भागते हुए (पाणे—प्राणिनः) (दिस्स—दृष्ट्वा) प्राणियों को देखकर।

मूलार्थ—इसके बाद जब नेमिकुमार आगे गये तो उन्होंने वाड़ों और पिंजरों में रोके गये अत्यन्त दुःखित भय से उसमें इधर-उधर भागते हुए प्राणियों को देख कर।

जीवियन्तं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए।
पासित्ता से महापण्णे, सारहिं इणमब्बवी ॥१५॥

अन्वयार्थ—(महापण्णे—महाप्रज्ञः) अत्यन्त बुद्धिमान् (से—सः) (जीवियन्तं—जीवितान्तम्) (संपत्ते—समाप्तान्) जीवन का अन्त होने वाला जिनका उनको (मंसट्ठा—मांसार्थम्) मांस के लिए (भक्खियव्वए—भक्षितव्यान्) खाने योग्य जीवों को (पासित्ता—दृष्ट्वा) देखकर (सारहिं—सारथिम्) सारथि से (इणं—इदम्) इस वचन को (अब्बवी—अब्रवीत्) बोला।

मूलार्थः—वह महाबुद्धिमान् नेमिकुमार के जीवन का अन्त होने वाला तथा जो मांस के लिए रखे गये हैं उन प्राणियों को देखकर अपने सारथि से इस प्रकार बोला।

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ॥१६॥

अन्वयार्थः—(कस्स—कस्य) किसके (अट्ठा—अर्थम्) लिये (इमेपाणा—इमे प्राणिनः) ये प्राणी (एए—एते) ये (सव्वे—सर्वे) सब (सुहेसिणो—सुखैषिणः) सुख के चाहनेवाले (वाडेहिं—वाटैः) वाड़ों (पंजरेहिं—पञ्जरैः) पिंजरों से (सन्निरुद्धा—सन्निरुद्धाः) रोके गये (अच्छहिं—तिष्ठन्ति) स्थित हैं (य—पादपूर्ति में।

मूलार्थ—ये सब सुख के चाहनेवाले प्राणी किसलिए प्राणी पिंजरों में डाले हुए और बाड़े में स्थित हैं।

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झ विवाहकज्जंमि, भोयावेउं बहुं जणं ॥१७॥

अन्वयार्थ—अति—इसके बाद (सारही—सारथि.) (तओ—तत) उन के बाद (भणइ—भणइ) बोलता है (एए—एते) ये (भद्दा—भद्रा) अच्छे (पणिणो—प्राणिन) प्राणी (तुज्झ—युष्माकम्) आपके (विवाहकज्जंमि) विवाह कार्य में (बहुंजण—बहुजनम्) बहुत लोगों को (भोयावेउ—भोजयितुम्) भोजन कराने के लिए।

मूलार्थ—इसके बाद सारथिने कहा ये सब सरल प्रकृति वाले प्राणी आपके विवाह-कार्य में बहुत से लोगों को भोजन कराने के लिए इकट्ठे किये गये हैं।

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाणिविण सणं।
चिन्तेइ से महापन्ने, साणुक्कोसे जिएहि ऊ ॥१८॥

अन्वयार्थः—(तस्स—तस्य) उस सारथि के (बहुपाणिविणासणं—बहुप्राणिविनाशनम्) बहुत से प्राणियों का नाश हो गया ऐसे (वयण—वचनम्) वचन को (सोच्च—श्रुत्वा) सुनकर (से—स) वे (महापन्ने—महाप्राज्ञ) महाबुद्धि वाले (साणुक्कोसे—सानुक्रोश) कृपालु जिएहि—जीवेषु) जीवों का हित चिन्तक (चिन्तेइ—चिन्तयति) सोचने लगे।

मूलार्थ—उस सारथि के बहुत से प्राणियों के विनाश सम्बन्धी बातों को सुनकर दया से भीगे हृदय वाले और महाबुद्धिमान् राजकुमार सोचने लगे।

जइ मज्झ कारणा एए हम्मति सुबहूजिया।
नमे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ--(जइ—यदि) (मज्झ—मम) मेरे (कारणा—कारणात्) कारण से (एए—एते) ये (सुबहूजिया—सुबहूजीवाः) बहुत से जीव (हम्मति—हन्यन्ते) मारे जाते हैं, (तु—तो) (परलोगे—परलोके) परलोक में (मे—मम) मेरे लिए (एय—एतत्) यह (निस्सेस—निःश्रेयसम्) कल्याणकारी (न—नहीं) (भविस्सइ—भविष्यति) होगा ।

मूलार्थ—यदि बहुत से जीव मेरे विवाह के कारण मारे जाते हैं तो मेरे लिए यह परलोक में कल्याणकर नहीं होगा ।

सो कुण्डलाण जुयलं, सुत्तगं च, महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामई ॥२०

अन्वयार्थ —(सो—वह) (महायसो—महायश) महायशस्वी नेमिनाथ जी (कुण्डलाण—कुण्डलयोः) कुण्डलों का (जुयलं—युगलम्) दोनों और (सुत्तग—सूत्रम्) कटि सूत्र (सव्वाणि—सर्वाणि) सब (आभरणाणि आभूषणों को (सारहिस्स—सारथये) सारथि को (पणामई—प्रणामयती) देते हैं ।

मूलार्थ—वह महान यश वाले नेमिनाथजी दोनों कुण्डल, कटिसूत्र तड़ागी और अन्य सभी आभूषण सारथी को दे देते हैं ।

मणपरिणामो य कओ, देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्विड्ढिइ सपरिसा, निक्खमणं तस्स काउं जे ॥२१॥

अन्वयार्थः—(मणिपरिणामो—मनःपरिणामे) मन के परिणाम (कओ—करने दीक्षा के लिए गये (य—और) (देवा—देवा) देवता भी (जोहिय—यथोचितम्) यथोचित रूप से (सव्विड्ढि—सर्वर्द्धया) सर्वऋद्धि से (सपरिसा—सपरिषः) सर्वपरिषद के साथ (तस्स—तस्य) उस भगवान के (निक्खमण—निष्क्रमणम् (काउ—कर्तुम्) करने के लिए (समोइण्णा—समवत्तीर्णा आ गये ।

मूलार्थ—जिस समय भगवान ने दीक्षा के लिए मन के परिणाम किए उस समय देवता भी अपनी सर्वऋद्धि और परिषद् के साथ उनका दीक्षा महोत्सव करने के लिए आगए ।

देवमणुस्सपरिवुडो, सिवियारयणं तओ समारूढो ।
निक्खमिय बारगाओ, रेवयमि ठिओ भयव ॥२२॥

अन्वयार्थ—(देवमणुस्सपरिवुडो—देवमनुष्यपरिवृत) घिरे हुए (तओ—तत) उसके बाद (सिवियारयण—शिविकारत्नम्) शिविकारत्न मे (समारूढो—समारूढ) चढ़े हुए (निक्खमिय—निष्क्रम्य) निकल कर (बारगाओ—द्वारकात) द्वारका से (रेवयमि—रैवत—के) रैवत गिरि पर (भयव—भगवान) (ठिओ—स्थित) ।

मूलार्थ—तब देवता मनुष्य से घिरे हुए भगवान उत्तम पालकी मे विराजमान होकर रैवतक पर्वत पर आ पहुँचे ।

उज्जाण सपत्तो ओइण्णो उत्तमाउ सीयाओ ।
साहस्सीएपरिवुडो, अह निक्खमई उ चित्ताहिं ॥२३॥

अन्वयार्थः—(उज्जाण—उद्यानम्) उद्यान मे (सपत्तो—समाप्त) पहुँच कर (उत्तमाउसीयाओ—उत्तमाया शिविकाया) उत्तम पालकी मे ओइण्णो—अवत्तार्ण) उतरे (साहस्सीए—सहस्रेण) हजारों से (परिवुडो—(परिवृत घिरे हुए (अह—अथ) इसके बाद (चित्ताहिं—चित्रानक्षत्रे) चित्रा नक्षत्र मे (निक्खमई—निष्कामति) दीक्षित हो गये ।

मूलार्थः—उद्यान मे पहुँच कर और सर्वश्रेष्ठ पालकी से उतर कर हजारों पुरुषो से घिरे हुए भगवान् अरिष्टनेमि ने चित्रा नक्षत्र मे श्रमण वृत्तिग्रहण किया अर्थात् दीक्षित हो गए।

अह से सुगन्धगन्धिए, तुरिय मउअकुंचिए ।
सयमेव लुंचई केसे, पचमुट्ठीहिं समाहिओ ॥२४॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) उसके बाद (से—स.) वह अरिष्टनेमि भगवान् (समाहिओ—समाहित) एकाग्रचित्त होकर (सामायिक युक्त) (सयमेव—स्वयमेव) अपनी ही (सुगन्धगन्धिए—सुगन्धगन्धिकान्) सुगन्ध द्रव्यो से वासित (सुगन्धित) (मउअ—मृदुक) कोमल और (कुचिए—कुञ्चितान्) टेढे (केसे—केशान्) बालो को (पचमुट्ठीहिं—पचमुष्टिभि.) पांच मुट्ठियो से (लुच—लुञ्चति) लुचन करते हैं।

मूलार्थ—उसके पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि ने समाधियुक्त होकर स्वभावतः सुगन्धित और कोमल तथा टेढे केशों को स्वय ही पाच मुट्ठियो से बहुत ही शीघ्र लुंचित कर दिया अर्थात् अपने हाथ से केशों को सिर से अलग कर दिया।

वासुदेवो य णं भणई, लुत्तकेसं जिइंदियं।
इच्छियमणोरहो तुरियं, पावसू त दमीसरा ॥२५॥

अन्वयार्थ—(वासुदेव—वासुदेव) कृष्ण (य—च) और बलभद्रादि (लुत्तकेस—लुप्तकेशम्) लुप्त केश वाले (जिइंदिय—जितेन्द्रियम्) जितेन्द्रिय (ण—तम्) उस अरिष्टनेमि जी से (भणई—भणति) बोले कि हे (दमीसरा—दमीश्वर) मन सहित इन्द्रियों को वश मे करने वालों मे श्रेष्ठ। (त—त्वम्) तू (इच्छियमणोरहं—इच्छितमनोरथम्) इच्छितमनोरथ को (तुरिय—त्वरितम्) शीघ्र (पावसू—प्राप्नुहि) प्राप्त करे।

मूलार्थ—वासुदेव ने लुप्तकेश और जितेन्द्रिय भगवान् से कहा कि हे जितेन्द्रियों मे श्रेष्ठ तू इच्छित मनोरथ को शीघ्र ही प्राप्त कर।

नाणेण दसणेणं च, चरित्तेणं तवेण य।
खन्तीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ॥२६॥

अन्वयार्थ—(नाणेण, दसणेण, चरित्तेण, तवेण—ज्ञानेन, दर्शनेन, चरित्रेण, तपसा च) ज्ञान, दर्शन, चरित्र, और तप से (खन्तीए—क्षान्त्या) क्षमा से (मुत्तीए—मुक्त्या) मुक्ति (निर्लोभितासे) (वड्ढमाणो—वर्द्धमान) बढ़ता हुआ (भवाहि—भव) रहे।

मूलार्थ—हे भगवान्! आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र, और तप, क्षमा, निर्लोभिता से सदा बढ़ते रहें।

एवं ते रामकेसवा, दसारा य बहूजणा।
अरिट्ठनेमि वंदित्ता, अइगया बारगाउरिं ॥२७॥

अन्वयार्थ—(एव—इस प्रकार) (ते—वे) (रामकेसवा—रामकेशवौ) राम और केशव (दसारा—दशार्हा) यादवों का समूह (य—और) (बहुजणा=बहुजना) बहुत से लोग (अरिट्ठनेमि—अरिष्टनेमिम्) अरिष्टनेमि भगवान् को (वंदित्ता—वन्दित्वा) वन्दना करके (बारगउरि—द्वारकापुरीम्) द्वारकापुरी को (अइगया—अतिगता) लौट गये ।

मूलार्थ—इस तरह वे दोनों राम और कृष्ण, यदुवंशी तथा अन्य बहुत से लोग भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दना करके द्वारका नगरी को लौट गये।

सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ ।
णीहासा उ निराणंदा, सोगेण उ समुच्छिया ॥२८॥

अन्वयार्थ—(सा—वह) (रायकन्ना—राजकन्या) (जिणस्स—जिनस्य) जिन भगवान् की (उ—तु) तो (पव्वज्जं—प्रव्रज्याम्) दीक्षा को (सोऊण—श्रुत्वा) सुनकर (उ—पादपूर्ति में) (णीहासा—निर्हास्या) हँसी से रहित हो गई (निराणंदा—निरानन्दा) आनन्द रहित होकर (सोगेणउ—शोकेनतु) शोक से (समुच्छिया समवमूता—समूर्छिता) बेहोश हो गया।

मूलार्थ—वह राजकन्या राजीमती जिन भगवान् की दीक्षा को सुनकर हँसी से, आनन्दसे रहित हो गई और शोक से मूर्छित हो गई ।

राईमई विचिन्तेई, धिरत्थु मम जीवियं ।
जाऽहं तेणं परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ॥२९॥

अन्वयार्थ— (राईमई—राजीमती) (विचिन्तेई—विचिन्तयति) सोचती है कि (मम मेरे) (जीवियं—जीवितम्) जीवन को (धिरत्थु—धिगस्तु धिक् है) (जा—या) जो (अहं—मैं) (तेण—उसके द्वारा (परिच्चत्ता—परित्यक्ता) सर्व प्रकार से छोड़ी गई अतः (मम—मेरा) (पव्वाउं—प्रव्रजितुम् प्रव्रज्या लेना ही (सेयं—श्रेय) कल्याणकारी है।

मूलार्थ—राजीमती विचार करती है कि मेरे इस जीवन को धिक्कार है जो मुझे उसने भगवान नेमिनाथ ने सर्वथा त्याग कर दिया। अतः मेरा दीक्षा लेना ही कल्याणकारी है ।

अह सा भमरसंनिभे, कुच्चफणगप्पसाहिए ।
सयमेव लुंचई केसे, धिइमंती ववस्सिया ॥३०॥

अन्वयार्थ.—(अह—इसके बाद) (सा—वह राजीमती) (भमरसंनिभे—भ्रमरसन्निभान्) भँवरों के समान काले (कुच्च—कूर्च) और (फणग—कनक) कघी से (प्पसाहिए—प्रसाधितान्) सवारे हुए (केसे—केशान्) बालों को (धिइमती—धृतिमती) धैर्य युक्त और (ववस्सिया—व्यवसिता) शुभ विचार युक्त होकर (सयमेव—स्वयमेव) अपने आपही (लुचइ—लुञ्चति) लोच कर दिया अपने आप सिर से उखाड दिया ।

मूलार्थ.—इसके बाद धैर्ययुक्त और धार्मिक व्यवसाय वाली उस राजीमती ने कूर्च और कघी से सवारे हुये बालो को अपने आप ही अपने सिर से उखाड कर अलग कर दिया ।

वासुदेवो य ण भणई, लुत्तकेसं जिइंदियं ।
संसारसागरं घोरं, तर कन्ने लहुं लहुं ॥३१॥

अन्वयार्थ—(वासुदेवो)वासुदेव ने (लुत्तकेस—लुप्तकेशा) लुप्त केशों वाली (जिइदिय—जितेन्द्रिय) (ण—ताम्) उस राजीमती से (भणइ—भणति) कहा कि (कन्ने—कन्ये) हे कन्ये तू (ससारसागर—ससारसागरम्) ससार रूप सागर को (लहु लहु—लघु लघु) जल्दी जल्दी (तर—तरजा) पार कर जा ।

मूलार्थः—वासुदेवादि लुचित केश वाली तथा इन्द्रियों को वश मे करनेवाली राजीमती से कहते हैं कि हे कन्ये तू जल्दी ससार सागर को पार कर जा ।

सा पव्वईया सन्ती, पव्वावेसी र्तहि बहुं ।
संयणं परियणं चेव, सीलवन्ता बहुस्सुआ ॥३२॥

अन्वयार्थ—(सा—वह) राजीमती (सीलवन्ता—शीलवती) शीलवाली (बहुस्सुआ—बहुश्रुता) धर्मशास्त्रों को पढ़ी तथा अनुभव की हुई (पव्वईआ—प्रव्रजिता) (सन्ती—सती) दीक्षित हुई (तहि—तस्याम्) उस द्वारका नगरी में

(बहु—बहून्) बहुत से (सयणं—स्वजनम्) स्वजनों को (च—और) (परियणं—परिजनम्) सेवकादियों को (एव—निश्चयाही) (पव्वोसी—प्रव्राजयामास) दीक्षित करने लगी ।

मूलार्थ—वह शीलमती और धर्मशास्त्रों की पढ़ी तथा अनुभव की हुई राजीमती दीक्षित होकर उस द्वारका पुरी मे बहुत से अपने कुनवालों तथा सेवकादियों को दीक्षित करने लगी ।

गिरिं रेवतयं जन्ती, वासेणोल्ला उ अन्तरा ।
वासंते अंधयारम्मि, अंतो लयणस्स सा ठिया ॥३३॥

अन्वयार्थ—(रेवतय—रैवतकम्) रैवतक (गिरिं—पर्वतको) (जन्ती—यान्ति) जाती हुई (अन्तरा—बीच) आधे मार्ग में (वासेणोल्ला—वर्षणार्द्रा) वर्षा से भीगी हुई (वासन्ते—वर्षति) वर्षा होते हुए (सा—वह) (अंधयारम्मि—अंधकारे) अंधकारमें (लयणस्स—लयनस्य) गुफा के (अंतरा—अन्तरा) भीतर (ठिया—स्थिता) ठहर गई ।

मूलार्थ—रैवत पर्वत पर जाती हुई वह (राजीमती) वर्षा से भीग गई और वर्षा होते ही अंधकारमयी गुफा में जाकर ठहर गई ॥

चीवराणि विसारंती, जहा जायत्ति पासिया ।
रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो अ तीइवि ॥३४॥

अन्वयार्थ—(रहनेमी—रथनेमि) उस गुफा मे स्थित रथनेमि नाम मुनि (चीवराणि—वस्त्रों को) (विसारंती—विस्तारयन्ती) फैलाती हुई (जहा-जायत्ति—यथा जातेति) जैसे जन्म समय बिना पर्दे का शरीर रहता है उसी प्रकार नग्न शरीर वाली राजीमती को (पासिया—दृष्ट्वा) देख करके (भग्ग-चित्तो—भग्नचित्त) चित्त (भग्न-विकारयुक्त) हो गया (अ—और) (तीइ वि—तयापि) उसने भी (पच्छा—पश्चात्) पीछे (दिट्ठो—दृष्टः) उस मुनि को देखा ।

मूलार्थ—भीगे हुवे वस्त्रों को फैलाती हुई यथाजात-नग्न-राजीमती को देखकर रथनेमि मुनि का चित्त विकारयुक्त हो गया। उस राजीमती ने भी उस मुनि को बाद में देखा।

> भीया य सा तहिं दट्ठ, एगन्ते संजय तयं।
> बाहाहिं काउं संगुप्फं, वेवमाणी निसीयई ॥३५॥

अन्वयार्थ—(भीया—भीता) डरी हुई (सा—वह) राजीमती (तहिं—तत्र) वहाँ (एगंते—एकान्ते) एकान्त गुफा में (तयं—तकम्) उस (संजयं—संयतम्) संयमी को (दट्ठु—दृष्ट्वा) देखकर (बाहाहिं—बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (संगुप्फं—संगोपम्) स्तनादि को गुप्त (काउं—कृत्वा) करके (वेवमाणी—कम्पमाना) कांपती हुई (निसीयई—निषीदति) बैठ गई।

भावार्थ—वहाँ पर एकान्त स्थान में उस संयमी को देखकर भयभीत होती हुई राजीमती अपनी भुजाओं से अपने गोपनीय अंगों को छिपाकर कांपती हुई बैठ गई॥

> अह सोवि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ।
> भीय पवेविरं दट्ठुं, इमं वक्कमुदाहरे ॥३६॥

अन्वयार्थ—(समुद्दविजयंगओ—समुद्रविजयाङ्गजः) समुद्र विजय के पुत्र (सो—स.) वह (रायपुत्तो—राजपुत्र) राजपुत्र (वि—अपि) भी (भीयं—भीताम्) डरी हुई (पवेविरं—प्रवेपिताम्) कांपती हुई राजीमती को देखकर (इमंवक्कं—इदम्वाक्यम्) इस वाक्य को (उदाहरे—उदाहृतवान्) कहने लगा

भावार्थ—उसके बाद समुद्रविजय के अंग से उत्पन्न हुआ वह राजपुत्र रथनेमि डरती और कांपती हुई राजीमती को देखकर इस प्रकार कहने लगा।

> रहनेमी अहं भद्दे ! सुरूवे ! चारुभासिणी।
> मम भयाहि सुतनु ! न ते पीडा भविस्सई ॥३७॥

अन्वयार्थ —(भद्दे—भद्रे !) हे भद्रे (अहं—मैं) (रहनेमी—रथनेमि) हूँ (सुरूवे—सुरूपे) हे सुन्दर रूप वाली (चारुभासिणी—चारुभाषिणी) हे सुन्दर भाषण देने वाली (मम—माम्) मुझको (भयाहि—भजस्व) भजो (सेवनकर) (सुअणु ! सुतनो !) हे सुन्दर शरीर वाली (ते—तुभ्यम्) तेरे लिये (पीला—पीड़ा) (न—नहीं) (भविस्सइ—भविष्यति) होगा।

मूलार्थ —हे भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ। अतः हे सुन्दरि हे मनोहर-भाषिणी ! हे सुन्दर शरीर वाली ! तुम मुझको सेवन करो। तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नहीं होगा।

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिनमग्गं चरिस्समो ॥ ३८॥

अन्वयार्थः—(एहि—इधर आओ) (ता—तावत्) पहले हम दोनों (भोए—भोगान्) भोगों को (भुंजिमो—भुञ्जीवहि) भोगें (माणुस्स—मानुष्यम्) मनुष्य-जन्म (खु—निश्चय ही) (सुदुल्लहं—सुदुर्लभम्) अति कठिन है (भुत्तभोगा—भुक्तभोगी) भोगों को भोगकर (तओ पच्छा—ततः पश्चात्) उसके पीछे (जिणमग्ग—जिनमार्गम्) जिनमार्ग को (चरिस्समो—ग्रहण करेंगे।

मूलार्थ —तुम इधर आओ। प्रथम हम दोनों भोगों को भोगेंगे क्योंकि मनुष्य-जन्म मिलना बहुत कठिन है। अतः भुक्तभोगी बनकर फिर जिन मार्ग को हम दोनों ग्रहण कर लेंगे।

दट्ठूण रहनेमिं तं, भग्गुज्जोयपराजियं।
राईमई असंभंता, अप्पाणं संवरे तहिं ॥३९॥

अन्वयार्थ—(भग्गुज्जोयपराजियं—भग्नोद्योगपराजितम्) संयम से चित्त चपल हो रहा था (पराजियं—पराजितम्) स्त्री परिग्रह से पराजित (तं—उस रथनेमि को (दट्ठूण—दृष्ट्वा) (असंभंता—असम्भ्रान्ता) निर्भय हुई राजीमती (तहिं—तत्र) वहाँ (अप्पाणं—आत्मानम्) अपनी आत्मा को (शरीर को) वस्त्रों से (संवरे—समवारीत्) ढक लिया।

मूलार्थ—चवल चित्त और स्त्री परिग्रह से पराजित हुए उस रथनेमि को देखकर निर्भय हुई राजीमती ने वहाँ अपने तन को वस्त्रों से ढक लिया।

अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिया निममव्वए।
जाई कुलं च शीलं च, रक्खमाणी तयं वए ॥४०॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) अनन्तर (रायवरकन्ना—राजवरकन्या) राजकन्या (सा—वह राजीमती) (निवमव्वए—नियमव्रते) नियम और व्रत में (सुट्ठिया—सुस्थिता) भली भांति स्थिर हुई (जाई, कुल, शील—जातिम, कुलम् शीलम्) जाति, कुल और शील को (रक्खमाणी—रक्षन्ती) रक्षा करती हुई (तय—तम्) उस रथनेमि को (वए—अवदत्) बोली।

मूलार्थ—तदन्तर ग्रहण किये गये नियमों तथा शीलव्रत में भली भाति स्थित हुई वह राजकन्या—राजीमती—अपने जाति, कुल और शील की रक्षा करती हुई उस रथनेमि से इस प्रकार कहने लगी।

जइसि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूबरो।
तहावि ते न इच्छामि, जइसि सक्खं पुरंदरो ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) तू (रूवेण—रूपेण) रूप से (वेसमणो—वैश्रवण) वैश्रवणः वैश्रवण के समान (ललिएण—ललितेन) लीला आदि से (नल कूबरो—नल कूबर के समान) (सि—असि) है तथा (जइ—यदि) यदि तू (सक्खं—साक्षात्) (पुरंदरो—इन्द्र के समान) (सि—असि) है (तहावि—तथापि) (ते—त्वाम्) तुझे (न इच्छामि—नेच्छामि) नहीं चाहती।

मूलार्थ—यदि तू रूप में वैश्रवण और लीला-विलास में नलकूबर के समान भी होवे अधिक क्या कहूँ। यदि तू साक्षात् इन्द्र भी हो तो भी मैं तुझे नहीं चाहती हूँ।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयंभोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥४२॥

अन्वयार्थ—(अगंधणे कुले जाया—अगन्धने कुले जाता) अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प (दुरासदम्) कठिन (धूमकेउं—धूमकेतुम्) धूम ही है केतु-पता का जिस की ऐसी (जलियं—ज्वलितम्) प्रज्वलित (जोइं—ज्योतिषम्) अग्नि में (पक्खंदे—प्रस्कन्दन्ते) गिर जाते हैं किन्तु (वन्तयं—वान्तम्) वमन किए हुवे को (भोत्तु—भोक्तुम्) फिर खाने के लिए (नेच्छंति—नहीं इच्छा करते हैं।

मूलार्थ—अगन्धन कुल में उत्पन्न हुआ सर्प, धूमकेतु (अग्नि) जो प्रज्वलित है उस में पड़ना स्वीकार कर लेते हैं किन्तु मुखसे वमन की हुई वस्तु को फिर ग्रहण नही करते।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वन्तं इच्छसि आवेउ, सेय ते मरणं भवे ॥४३॥

अन्वयार्थ—(अजसोकामी—अयश कामिन्) हे अयश की कामना करने वाले (ते—त्वाम्) तुमको (धिरत्थु—धिगस्तु) धिक्कार है (जो—जो) (तं—त्वम्) (जीवियकारणा—जीवितकारणात्) जीवन के कारण से (वन्तं—वान्तम्) वमन किये हुए को (आवेउ—आपातुम्) पीने की (इच्छसि—इच्छा करता है) अतः (ते—तव) तेरी (मरण—मृत्यु) (भवे—भवेत्) हो जावे इति (सेय—श्रेयः) अच्छा है।

मूलार्थ—हे अयश की कामना करने वाले! तुझे धिक्कार है ! जो कि तू असंयत जीवन के कारण से वमन किए को फिर पीना चाहता है। इससे तो मर जाना ही अच्छा है।

अहं च भोगरायस्स, तं चासि अन्धगवण्हिणो।
मा कुले गन्धणाहोमो, संजमं निहुओ चर ॥४४॥

अन्वयार्थ—(अहं—मैं राजीमती) (भोगरायस्स—भोगराजस्य) उग्रसेन की पुत्री हूं (च—और) (तं—त्वम्) तू (अन्धगवण्हिणा—अन्धकवृष्णेः) समुद्र विजय का पुत्र (असि—है) (गन्धणा—गन्धनानाम्) गन्धन-कुल में उत्पन्न सर्प के समान। (मा होमो—मा भूव) हम दोनों न होवे। अतः (निहुओ—निभृत) निश्चलचित्त होकर (संजमं—संयमम्) संयम में (चर-विचर)

मूलार्थ—मैं उग्रसेन की पुत्री हूँ और तुम समुद्र विजय के पुत्र हो। हम दोनों को गन्धन कुल के सर्पों के समान नहीं होना चाहिए। अतः निश्चल होकर संयम की आराधना करो।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥४५॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) (तं—त्वम्) तू (जाजा—या: या:) जो जो (नारिओ—नार्य) नारियों को (दिच्छसि—द्रक्ष्यसि) देखेगा और उनपर (भावं—दुष्टविचार) (काहिसि—करिष्यसि) करेगा तो (वायाविद्धो—वाता-विद्ध) वायु से हिलाया गया (हडोव्व—हड इव) हड नाम वृक्ष की तरह (अट्ठिअप्पा—अस्थितात्मा) चचल आत्मा वाला (भविस्ससि—भविष्यसि) हो जावेगा।

मूलार्थ—यदि तू उक्त प्रकार का दुष्ट विचार करेगा तो जहाँ २ पर स्त्रियों को देखेगा वहाँ २ वायु से हिलाये गए हड नाम के वृक्ष की तरह तू चचल आत्मा हो जावेगा अर्थात् तेरी आत्मा सदा के लिए स्थिर हो जायेगी।

गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्दव्वणिस्सरो।
एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥४६॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (गोवालो—गोपाल) गोपाल (वा—अथवा) (भडवालो—भडपाल) कोषाध्यक्ष (तद्दव्वणिस्सरो—तद् द्रव्यानीश्वर) उस द्रव्य का स्वामी नहीं होता (एवं—इसी प्रकार) (तंपि—त्वमपि) तू भी (सामण्णस्स—श्रामण्यस्य) साधु धर्म का (अणिस्सरो—नहीं अधिकारी (पि—अपि) भी (भविस्ससि—भविष्यसि) होगा।

मूलार्थ—जैसे गोपाल अथवा कोषाध्यक्ष उस द्रव्य का अधिकारी (स्वामी) नहीं होता वैसे तू भी संयम का अधिकारी नहीं बनेगा।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजईए सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥४७॥

अन्वयार्थ --(सो—स) वह रथनेमि (संजइए—संयतायाः) संयमशील उस राजीमती के (सुभासिय—सुभाषितम्) सुन्दर कहे गये (वयण—वचनम्) वचन को (सोच्चा—श्रुत्वा) (अंकुसेण—अंकुशेन) अंकुश से (नागो जहा—नागो यथा) हस्ती इव—हाथी की तरह (धम्मे—अपनी आत्मा को धर्म) धर्म मे (संपडिवाइओ—सम्प्रतिपादितः) स्थिर कर दिया

मूलार्थः—रथनेमि ने संयमशीला उस राजीमती के सुन्दर कहे गये वचनो को सुनकर अंकुश द्वारा मदोन्मत्त हस्ती की तरह अपनी आत्मा को वश में करके फिर से धर्म मे स्थिर कर दिया।

कोहं माणं निगिण्हित्ता, माया लोहं च सव्वसो।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे ॥४८॥

अन्वयार्थ —(कोह, माण—क्रोधम्, मानम्) क्रोध मान को (माया, लोभ—माया, और लोभ को) (निगिण्हित्त—निगृह्य) वश मे करके तथा सव्वसो—सर्वश') सब प्रकार से (इंदियाइ—इन्द्रियाणि) इन्द्रियों को (वसे—वशीकृत्य) वश मे कर रथनेमि ने (अप्पाण—आत्मानम्) (उवसंहरे—उपसमाहरत्) अपने को पीछे हटा कर (धर्ममार्ग मे स्थित किया)।

मूलार्थ —क्रोध, मान, माया, लोभ को जीत कर तथा पाँच इन्द्रियों को वश में करके उस रथनेमि ने प्रमोद की तरफ से बढ़ी हुई आत्मा को पीछे हटाकर धर्म मे स्थिर किया।

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
सामण्णं निश्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥४६॥

अन्वयार्थ —(मणगुत्तो, वयगुत्तो, कायगुत्तो, जिइंदिओ—मनोगुप्तः वचोगुप्त, कायगुप्त, जितेन्द्रियः) तीनों गुप्तियों मे युक्त तथा इन्द्रियों को जीतकर और निश्चल (निश्चल स्थिरता) से (दढव्वओ—दृढव्रतः) पूर्ण दृढ़ता से (सामण्णं—श्रामण्यम्) श्रमण धर्म को (जावज्जीव—यावज्जीवम्) जीवन पर्यन्त (फासे—अस्पासीत्) पालन किया।

मूलार्थ—उस नगर के समीपवर्ती तिन्दुक नामक उद्यान में वे निर्दोष शय्या सस्तारक (सूखी घास, पत्थर) पर आसन लगाकर विराजमान हुए।

अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे।
भगव वद्धमाणित्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥५॥

अन्वयार्थ—(अह तेणेवकालेण—अथ तस्मिन्नेवकाले) उसी समय में (धम्मतित्थयरे—धर्मतीर्थंकर) धर्मरूप तीर्थ के रचयिता (जिणे—जिन) रागद्वेष को जीतने वाले (भगव—भगवान्) (वद्धमाणित्ति—वर्द्धमान इस नाम से) (सव्वलोगम्मि—सर्वलोके) सब लोक में (विस्सुए—विश्रुत) विशेष रूप से प्रसिद्ध थे।

मूलार्थ—उस समय सर्वलोक में प्रसिद्ध, रागद्वेष के जीतनेवाले भगवान् वर्द्धमान धर्मतीर्थ के प्रवर्तक थे।

तस्स लोगपदीवस्स, आसि सीसे महायसे।
भगवं गोयमे नामं, विज्जाचारणपारगे ॥६॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस (लोगपदीवस्स—लोकप्रदीपस्य) लोकप्रकाशकके (भगवत वर्द्धमानस्य) लोकमें प्रकाश करने वाले भगवान् वर्द्धमान का (महायसे—महायशा) महान् यशवाला (विज्जाचरणपारगे—विद्याचरणपारग) विद्या तथा चारित्र का पारगामी (भगव—भगवान्) (गोयमे नाम—गौतमो नाम) गौतम नाम से प्रसिद्ध (सीसे—शिष्य) (आसि—आसीत्) थे।

मूलार्थ—उस लोक प्रकाशक भगवान् वर्द्धमान का महान् यशस्वी विद्या तथा चारित्र का पारगामी गौतम नाम से प्रसिद्ध शिष्य थे।

बारसंगविऊ बुद्धे, सीससघसमाउले।
गामाणुगामं रीयन्ते, सेवि सावत्थिमागए ॥७॥

अन्वयार्थ—(बारसंग—द्वादशाङ्गम्) द्वादशांग वाणी के (विऊ—विद्) ज्ञाता (बुद्ध—बुद्ध) तत्त्वज्ञानी (सीससघसमाउले—शिष्यसंघसमाकुल)

शिष्यसंघ सहित (गामाणुगामं—ग्रामानुग्रामम्) (रीयन्ते—रीयमाण) विचरते हुए (सेवि—सोऽपि) वह भी (सावत्थिमागए—श्रावस्तीमागत) श्रावस्ती नगरी में पधारे।

मूलार्थ—द्वादशाङ्ग वाणी के ज्ञाता तथा तत्त्वज्ञानी शिष्य समुदाय के सहित एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरते हुए वह भी श्रावस्ती नगरी में पधारे।

कोट्ठगं नाम उज्जाणं, तम्मी नयरमण्डले।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥८॥

अन्वयार्थ—(तम्मी—तस्मिन्) उस (नयरमण्डले—नगरमण्डले) नगर के समीपवर्ती (कोट्ठगं—कोष्टकम्) कोष्टक (नाम उज्जाणं—नाम उद्यानम्) नाम के उद्यान में (फासुए—प्रासुके) निर्दोष (सिज्जसंथारे-शय्या-संस्तारे) वस्ती (निवास भूमि) और फलकादि पर (तत्थ—तत्र) वहाँ (वासं—वासम्) (उवागए—उपागत) निवास किया।

मूलार्थ—उस नगर के समीप कोष्टक नाम के उद्यान में शुद्ध निर्दोष वस्ती (निवास योग्य भूमि) और संस्तारक (पत्थर शिला या शुष्क तृण) फलकादि पर विराजमान हुए।

केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे।
उभओवि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ॥९॥

अन्वयार्थ—(केसीकुमार समणे—केशीकुमार श्रमणः) केशीकुमार श्रमण (य—च) और (महायसे—महायशाः) महान् यश वाले (गोयमे—गौतमः) गौतम (उभओवि—उभयोऽपि) दोनों भी (अल्लीणा—आलीनौ) जितेन्द्रिय (सुसमाहिया—सुसमाहितौ) समाधि से युक्त (तत्थ—तत्र) उसी श्रावस्ती नगर में (विहरिंसु—व्यहार्ष्टाम्) विहरने लगे।

मूलार्थ—महान् यशस्वी केशीकुमार श्रमण और श्री गौतम स्वामी दोनों ही उस नगरी में विचरने लगे। वे दोनों जितेन्द्रिय तथा समाधि युक्त थे।

गोयमे पडिरुवन्नू, सीससंघसमाउले ।
जेट्ठ कुलमवेक्खन्तो तिन्दुयं वणमागओ ॥१५

अन्वयार्थ—(पडिरुवन्नू—प्रतिरूपज्ञ.) विनय के जानने वाले (गोयमे—गौतम) गौतम जी (सीससघसमाउले—शिष्यसघसमाकुल·) शिष्य समुदाय मे व्याप्त (जेट्ठ—ज्येष्ठम्) बड़े (कुलम्—कुलको) (अवेक्खन्तो—अवेक्षमाण) देखते हुए (तिन्दुय—तिन्दुकम्) तिन्दुक नाम के (वण—वनम्) वनमें (आगओ—आगत) पधारे ।

मूलार्थ—विनय धर्म के जानकर गौतम मुनि बड़े कुल को देखते हुए अपने शिष्य-परिवार के साथ तिन्दुक वन मे (जहाँ केशी कुमार श्रमण ठहरे हुए थे) पधारे ।

केसीकुमार समणे, गोयमं दिस्समागयं ।
पडिरुवं पडिवत्तिं, सम्म संपडिवज्जई ॥१६॥

अन्वयार्थ—(केसीकुमारसमणे—केशी कुमार श्रमण·) (आगय—आगतम्) आते हुए (गोयम—गौतमम्) गौतम को (दिस्स—दृष्ट्वा) देखकर (पडिरूव—प्रतिरूपाम्) जैसी योग्य थी वैसी (पडिवत्ति—प्रतिपत्तिम्) भक्ति को (सम्म—सम्यक्) भली प्रकार (संपडिवज्जई—सम्प्रतिपद्यते) ग्रहण करते हैं।

मूलार्थ—गौतम मुनि को आते हुये देखकर केशी कुमार श्रमण ने जैसी चाहिए वैसी भक्ति-बहुमान सहित उनका स्वागत किया ।

पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स निसिज्जाए, खिप्पं संपणामए ॥१७॥

अन्वयार्थ—(पलाल—पलालम्) शाली कोद्रव के डंठलमूले (फासुय—प्रासुकम्) (तत्थ—तत्र) वहाँ पर (पंचम—पञ्चमम्) (कुसतणाणि य—कुशतृणानि च) कुश और मृण तृण (पाँच) (खिप्प—क्षिप्रम्) शीघ्र (निसिज्जाए—निषद्यायै) बैठने के लिए (संपणामए—समर्पयामास) दिये ।

मूलार्थ—उस वन में जो निर्दोष पलाल कुश और तृणादि थे वे गौतम मुनि को बैठने के लिए शीघ्र ही उपस्थित कर दिये।

केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे।
उभयो निसण्णा सोहन्ति, चन्दसूरसमप्पभा ॥१८॥

अन्वयार्थ—(केसीकुमार समणो—केशी कुमार श्रमण) य—और (महायसे—महायशा) अतियशस्वी (गोयमे—गौतम) (उभयो—उभौ) दोनों (निसण्णा—निषण्णौ) बैठे हुए (चन्दसूरसमप्पभा—चन्द्रसूर्यसमप्रभौ) चन्द्र-सूर्य की कान्ति की तरह कांतिवाले (सोहन्ति—शोभन्ते) शोभा पाते हैं।

मूलार्थ—केशी कुमार श्रमण और महान् यशस्वी गौतम दोनों बैठे हुए अपनी कान्ति से चन्द्रमा और सूर्य की तरह शोभा पा रहे हैं।

समागया बहू तत्थ, पासंडा कोउगासिया।
गिहत्थाणं अणेगाओ, साहस्सीओ समागया ॥१९॥

अन्वयार्थ—(तत्थ—वहाँ) (बहू—बहव:) बहुत से (पासंडा—पाखण्डा) पाखण्डी और (कौउगासिया—कौतुकाश्रिता) कुतूहली लोग तथा (अणे-गाओ—अनेकानाम्) अनेक (गिहत्थाण—गृहस्थानाम्) गृहस्थों का समूह (साह-स्सीओ—सहस्राणि) हजारों (समागया—समागतानि) इकट्ठे हो गये।

मूलार्थ—उस वन में बहुत से पाखण्डी और बहुत से कुतूहली लोग तथा हजारों गृहस्थ लोग दोनों महापुरुषों का शास्त्रार्थ सुनने के लिये एकत्रित हो गए।

देवदाणवगन्धव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा।
अदिस्साणं च भूयाणं, आसी तत्थ समागमो ॥२०॥

अन्वयार्थ—(देवदाणवगन्धव्वा—देवदानवगन्धर्वा) देव, दानव, गन्धर्व (जक्खरक्खसकिन्नरा—यक्षराक्षसकिन्नरा:) यक्ष, राक्षस और किन्नर तथा (अदिस्साणं—अदृश्यानाम्) अदृश्य (भूयाण—भूतानाम्) प्राणियों का (तत्थ—तत्र) वहाँ (समागमो—समागम) (आसी—आसीत्) था।

मूलार्थ—उसके बाद इस प्रकार कहते हुए केशीकुमार के प्रति गौतम स्वामी ने कहा कि जीवादितत्त्वों का विशेष निर्णय जिससे किया जाता है ऐसे धर्मतत्त्व को बुद्धि ही सम्यक् देख सकती है।

पुरिमा उज्जुजड्डा उ, वक्कजड्डा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ, तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

अन्वयार्थ—(पुरिमा—पूर्वे) पहले प्रथमतीर्थंकर के मुनि (उज्जुजड्डा—ऋजुजडा) ऋजुजड थे (सरल होने पर भी उनमें जड़ता थी वे पदार्थ को कठिनाई से समझते थे। उ-जिससे) पच्छिमा—पश्चिमा) पीछे के चरमतीर्थंकर के मुनि (वक्कजड्डा—वक्रजडाः) जो शिक्षित किये जाने पर भी अनेक प्रकार के कुतर्कों द्वारा पदार्थ की अवहेलना करते रहते हैं तथा बलपूर्वक व्यवहार करते हुए अपनी मूर्खता को चतुरता के रूप भी प्रदर्शित करते हैं। (मज्झिमा—मध्यमा.) बीच के तीर्थंकरों के मुनि (उज्जुपन्ना—ऋजुप्रज्ञा) बाईस तीर्थंकरों के मुनियों को शिक्षित करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती थी सकेत मात्र से समझ लेते थे। (तेण—इस प्रकार से) (धम्मे—धर्म) (दुहा—द्विधा) दो प्रकार से भेद (कए—कृतः) किया गया है।

मूलार्थ—प्रथम तीर्थंकर के मुनि ऋजुजड और अंतिम तीर्थंकर के मुनि वक्रजड होते हैं किन्तु मध्यतीर्थंकरों के मुनि ऋजु प्राज्ञ हैं। इससे ही धर्म के दो भेद किये गए।

पुरिमाणं दुव्विसोज्झोउ, चरिमाणं दुरणुपालिओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

अन्वयार्थ—(पुरिमाण—पूर्वेषाम्) प्रथम तीर्थंकर के मुनियों को (कप्पो—कल्प) आचार (दुव्विसोज्झो—दुर्विशोध्यः) आचार का समझना बहुत कठिन था कारण कि ऋजुजड—प्रज्ञा सरल और मन्द बुद्धि थे। (चरमाण—चरमाणाम्) चरम मुनियों का कल्प (आचार) (दुरणुपालओ—दुरनुपालक) इनको शिक्षित करना तो विशेष कठिन नहीं किन्तु इनके लिए आचार का पालन करना अतीव कठिन है क्योंकि ये कुतर्क में कुशल हैं।

(सुविसोज्झो—सुविशोध्य.) का बोध देना और (सुपालओ—सुपालक) उनके द्वारा पालन किया जाना ये दोनों ही सुलभ थे ।

मूलार्थ—प्रथम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प(आचार) दुर्विशोध्य और चरमतीर्थंकरों के मुनियों का कल्प दुरनुपालक किन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों का कल्प सुविशोध्य और सुपालक है ।
(मज्झिमगाण—मध्यमगानाम्) मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों का कल्प(आचार)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥२८॥

अन्वयार्थ—(गोयम ! हे गौतम) (ते—तव) आपकी (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) श्रेष्ठ है (मे—मम) मेरा (इमो—अयम्) यह (संसओ—संशयः) (छिन्नो—दूर हो गया) (अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (मज्झ—मम) मेरा (संसओ—संशयः) संशय है (गोयमा !—हे गौतम !) (तं—उसको) (मे—माम्) मुझ से (कहसु—कथय) कहो ।

मूलार्थ—हे गौतम ! आप की बुद्धि श्रेष्ठ है, आपने मेरे सन्देह को दूर किया मेरा एक और संदेह है । हे गौतम ! आप उसका अर्थ भी मुझ से कहो ।

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा ॥२६॥

अन्वयार्थ—(वद्धमाणेण—वर्द्धमानेन) वर्द्धमान स्वामी ने (जो—यः) जो (अचेलगो—अचेलकः) अचेलक (धम्मो—धर्मः) धर्म (सन्तरुत्तरो—सान्तरोत्तरः) प्रधान वस्त्रधारण करना (देसिओ—देशित) उपदेश दिया है (पासेण महामुणी—पार्श्वेण महामुनिना) पार्श्व नाथ महामुनि ने सचेलक धर्म का प्रतिपादन किया है ।

मूलार्थ—हे गौतम ! वर्द्धमान स्वामी ने अचेलक तथा महामुनि पार्श्व-नाथ जी ने सचेलक धर्म का प्रतिपादन किया है ।

भूतार्थ.—इसके बाद इस प्रकार कहते हुए केशीकुमार के प्रति गौतम स्वामी ने कहा कि जीवादितत्त्वों का विशेष निश्चय जिसमें किया जाता है ऐसे धर्मतत्त्व को बुद्धि ही सम्यक् देख सकती है।

पुरिमा उज्जुजड्डा उ, वक्कजड्डा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ, तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

अन्वयार्थ—(पुरिमा—पूर्वे) पहले प्रथमतीर्थंकर के मुनि (उज्जुजड्डा—ऋजुजडा) ऋजुजड थे (सरल होने पर भी उनमें जडता थी वे पदार्थ को कठिनाई से समझते थे। उ-जिससे) पच्छिमा—पश्चिमा) पीछे के चरमतीर्थंकर के मुनि (वक्कजड्डा—वक्रजडाः) जो शिक्षित किये जाने पर भी अनेक प्रकार के कुतर्कों द्वारा पदार्थ की अवहेलना करते रहते हैं तथा वक्रतापूर्वक व्यवहार करते हुए अपनी मूर्खता को चतुरता के रूप भी प्रदर्शित करते हैं। (मज्झिमा—मध्यमा) बीच के तीर्थंकरों के मुनि (उज्जुपन्ना—ऋजुप्रज्ञा) बाईस तीर्थंकरों के मुनियों को शिक्षित करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती थी संकेत मात्र से समझ लेते थे। (तेण—इस प्रकार से) (धम्मे—धर्म) (दुहा—द्विधा) दो प्रकार से भेद (कए—कृत) किया गया है।

भूतार्थ—प्रथम तीर्थंकर के मुनि ऋजुजड और अंतिम तीर्थंकर के मुनि वक्रजड होते हैं किन्तु मध्यतीर्थंकरों के मुनि ऋजु प्राज्ञ है। इसमें ही धर्म के दो भेद किये गए।

पुरिमाणं दुव्विसोज्झोउ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

अन्वयार्थ—(पुरिमाण—पूर्वेषाम्) प्रथम तीर्थंकर के मुनियों को (कप्पो—कल्प) आचार (दुव्विसोज्झो—दुर्विशोध्यः) आचार का समझना बहुत कठिन था क्योंकि ऋजुजड—प्रज्ञा सरल और मन्द बुद्धि थे। (चरमाण—चरमाणाम) चरम मुनियों का कल्प (आचार) (दुरणुपालओ—दुरनुपालक) इसको निश्चित करना तो [illegible] कठिन नहीं किन्तु इसके लिए आचरण का [illegible] करना अति कठिन है क्योंकि वे वक्रजड में [illegible] हैं।

(सुविसोज्झो—सुविशोध्य) का बोध देना और (सुपालओ—सुपालक) उनके द्वारा पालन किया जाना ये दोनों ही सुलभ थे।

मूलार्थ—प्रथम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प(आचार) दुर्विशोध्य और चरमतीर्थंकरों के मुनियों का कल्प दुरनुपालक किन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों का कल्प सुविशोध्य और सुपालक है।
(मज्झिमगाण—मध्यमगानम्) मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों का कल्प(आचार)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥२८॥

अन्वयार्थ—(गोयम ! हे गौतम) (ते—तव) आपकी (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) श्रेष्ठ है (मे—मम) मेरा (इमो—अयम्) यह (संसओ—संशय) (छिन्नो—दूर हो गया) (अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (मज्झ—मम) मेरा (संसओ—संशय) संशय है (गोयमा !—हे गौतम !) (तं—उसको) (मे—माम्) मुझ से (कहसु—कथय) कहो।

मूलार्थ—हे गौतम ! आप की बुद्धि श्रेष्ठ है, आपने मेरे सन्देह को दूर किया मेरा एक और संदेह है। हे गौतम ! आप उसका अर्थ भी मुझ से कहो।

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा ॥२६॥

अन्वयार्थ—(वद्धमाणेण—वर्द्धमानेन) वर्द्धमान स्वामी ने (जो—य) जो (अचेलगो—अचेलक) अचेलक (धम्मो—धर्मः) धर्म (सन्तरुत्तरो—सान्तरोत्तर) प्रधान वस्त्रधारण करना (देसिओ—देशित) उपदेश दिया है (पासेण महामुणी—पार्श्वेन महामुनिना) पार्श्व नाथ महामुनि ने सचेलक धर्म का प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ—हे गौतम ! वर्द्धमान स्वामी ने अचेलक तथा महामुनि पार्श्वनाथ जी ने सचेलक धर्म का प्रतिपादन किया है।

एगकज्जपवन्नाण, विसेसे किं नु कारणं ।
लिंगेदुविहे मेहावी ! कहं विप्पच्चओ न ते ॥३०॥

अन्वयार्थ—(एगकज्जपवन्नाणं—एककार्यप्रपन्नयोः) एक ही (मोक्ष) कार्य के साधन मे लगे हुये का (विसेसे—विशेषे) भेद (किं—क्या है) (नु—विनिश्चयम्) (कारण—हेतु) है (मेहावी ! हे मेधाविन्) (लिंगे, दुविहे—लिंगे, द्विविधे) वेषके दो भेद होजाने पर (कहं—कथम्) क्या (ते—तव) आप को (विप्पच्चओ—सविप्रत्यय) सदेह (न—नहीं है ।

मूलार्थ—हे गौतम ! एकही मोक्ष रूप कार्य मे प्रवृत्त हुओ मे विशेषता क्या है ? मेधाविन् ! लिंग-वेष के दो भेद जाने पर क्या आपके मनमें संदेह उत्पन्न नही होता ।

केसिं एव बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
विन्नाणेण समागम्म, धम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ॥३१॥

अन्वयार्थ—(गोयमो—गौतम) गौतम (केसिं—केशिनम्) केशी कुमार के (एव—इस प्रकार (बुवाणं—ब्रुवाणम्) बोलने पर (तु—अवधारण अर्थ में है) (इण—इदम्) यह वचन (अब्बवी—अब्रवीत्) कहने लगे (विन्नाणेण—विज्ञानेन) विज्ञान से (समागम्म—समागम्य) जानकर (धम्मसाहण—धर्मसाधनम्) धर्म साधन के उपकरण (श्वेतवस्त्रादिधारण) को (इच्छियं—इष्टितम्) अनुमति दी है ।

मूलार्थ—केशी कुमार के इस प्रकार बोलने पर गौतम स्वामीने उनसे कहा कि हे भगवान् ! विज्ञान से जानकर ही धर्म साधन के उपकरण (श्वेत वस्त्रादिधारण) की आज्ञाप्रदान की है ।

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविगप्पणं
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयणं ॥३२॥

अन्वयार्थ—(लोगस्स—लोकस्य) लोक के (पच्चयत्थ—प्रत्ययार्थम्) [illegible] (नाणाविहं—नानाविधम्) अनेक प्रकार (विगप्पण—विकल्प-

नम्) विकल्प करना (च—और) (जत्तत्थ—यात्रातम्) सयम रक्षा के लिए तथा निर्वाह के लिए (गहणत्थ—ग्रहणार्थम्) ज्ञानादि ग्रहण करने के लिए वा पहचान के लिए (लोगे—लोके) ससार मे (लिंग पओयण—लिंगप्रयोजनम्) वेष का प्रयोजन है।

मूलार्थ—लोक मे जानकारी के लिए, वर्षादि काल मे सयम की रक्षा के लिए तथा सयमयात्रा के निर्वाह के लिए, ज्ञानादि ग्रहण के लिए अथवा यह साधु है ऐसी पहचान के लिए लोक मे वेष का प्रयोजन है।

अह भवे पइन्ना उ, मोक्खसब्भूय साहणा।
नाण च दंसण चेव चरित्तं चेव निच्छए ॥३३॥

अन्वयार्थः—(अह—अथ) उपन्यास मे अर्थ है (पइन्ना—प्रतिभवे-भवेत) (निच्छए—निश्चये) निश्चयनय मे (मोक्खसब्भूयसाहणा—मोक्षसद्भूतसाधनानि) मोक्ष के सद्भूतसाधन (उ—तु) तो (नाण, दंसण, चरित्त—ज्ञान, दर्शन, चारित्रम्) (चेव—च-पुन एव—ही) है।

मूलार्थ—हे भगवान् ! वस्तुतः तीर्थंकरो की प्रतिज्ञा तो यही है कि निश्चय मे मोक्ष के सद्भूत साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपवी है। व्यावहारिक दृष्टि मे दोनो तीर्थंकरो की वेष-विषयक सम्मति समयानुसार है।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥३४॥

अन्वयार्थ—(गोयम ! गौतम !) (ते—तव) तेरी (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (मे—मम) मेरा (इमो—अयम्) यह (ससओ—सशयः) इस सशय को (छिन्नो—छिन्न) काट दिया (गोयमा !—गौतम) हे गौतम ! (मज्झ—मम) मेरा (अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (ससओ=सशय.) सशय है (त—तम्) उसको (मे—मम्) मुझसे (कहसु—कथय) कहो।

मूलार्थ—हे गौतम ! आपकी बुद्धि ने यह मेरा सदेह दूर कर दिया। हे गौतम ! अब मेरा दूसरा सदेह है उसको भी मुझसे कहिये।

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा ।
ते यते अहिगच्छन्ति, कहं ते निज्जिया तुमे ॥३५॥

अन्वयार्थ —(गोयमा !—गौतम !) तू (अणेगाणं सहस्साणं—अनेकषाम्सहस्राणाम्) अनेक सहस्त्रों के (मज्झे—मध्ये) बीच में (चिट्ठसि—तिष्ठसि) खड़ा है (ते—ते) वे शत्रु (य—च) पुनः (ते—त्वा) तेरे को जीतने के लिए (अहिगच्छन्ति—अभिगच्छन्ति) सम्मुख आते हैं (कहं—कथम्) किस प्रकार (ते—वे शत्रु) (तुमे—त्वया) तुमने (निज्जिया—निर्जिता) जीते हैं।

मूलार्थ —हे गौतम ! तू अनेक हजारों शत्रुओं के बीच में खड़ा है। वे शत्रु तुझे जीतने के लिए सामने आ रहा है तूने किस प्रकार उन शत्रुओं को जीते हैं।

एगेजिए जिया पच, पंचजिए जिया दस ।
दसहा उ जिणत्तणं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥३६॥

अन्वयार्थ —(एगे—एकस्मिन्) एक के (जिए—जिते) जीतने पर (पच—पञ्च) पाच (जिया—जिता) जिते गए (पंचजिए—पञ्चजितेषु) पाच को जीतने पर (दस—दश) (जिया—जिता) जीते गए (दसहा—दशधा) दश प्रकार के शत्रुओं को (उ—तु) तो (जिणित्ता—जित्वा) जीत कर (ण—अकार मे) (सव्वसत्तू—सर्वशत्रु) सब शत्रुओं को (जिणाम—जयामि) जीता हूँ।

मूलार्थ —एक के जीतने पर पाच जीते गये, पाच को जीतने पर दश जीते गए तथा दश प्रकार के शत्रुओं को जीतकर मैंने सभी शत्रुओं को जीत लिया है।

सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयमब्बवी ।
तओ केसिं बुवतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥३७॥

अन्वयार्थ —(सत्तू—शत्रव) (य—पुन.) (इइ—इति) इस प्रकार (के—कौन) (वुत्ते—उक्ता) कहे गये हैं (केसी—केशी) (गोयम—गौतम)

गौतम ने (अब्बवी—अब्रवीत्) कहने लगे (तओ—ततः) तत्पश्चात् (केसिं—केशिनम्) केशीकुमार के (वुवंतं—ब्रुवन्तम्) बोलने पर (तु—तो) (गोयमो—गौतम) (इण—इदम्) यह अब्बवी—कहने लगे ।

मूलार्थः—हे गौतम ! वे शत्रु कौन कहे गये है ? केशीकुमार के इस वचन के बाद उनके प्रति गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे ।

एगप्पया अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥३८॥

अन्वयार्थ—(एगप्पा—एकात्मा) एक आत्मा (अजिए—अजित) न जीता हुआ (सत्तु—शत्रुरूप है) (कसाया—कषाया) कषाय-क्रोधादि (इन्दियाणि—इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं (ते—तान्) उनको (जिणित्तु—जीत्वा) जीत कर (मुणी !—मुने !) हे महा मुनि ! (जहानाम—यथान्यायम्) न्यायपूर्वक (अहं—मैं) (विहरामि—विचरता हूँ ।

मूलार्थ—हे महा मुने ! वशीभूत न किया हुआ एक आत्माशत्रुरूप है एवं कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रु रूप हैं। उनको न्यायपूर्वक जीतकर मैं विचरता हूँ। (न्यायपूर्वक अर्थात् प्रथम मन को जीत कर फिर कषायादि को जीता।)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मेकहसु गोयमा ! ॥३९॥

अन्वयार्थ—(गोयम !—गौतम !) (ते—तेरी) (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) ठीक है जिससे (मे—मम) मेरी (इमो—अयं) यह (संसओ—संशय.) (छिन्न—कट गया है) (हे गोयम—हे गौतम !) (मज्झ—मम) मेरा अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (संसओ—संशयो) (त—उसको) (मे—मा) (कहसु—कथय) ।

मूलार्थ—हे गौतम ! आपकी बुद्धि ठीक है जिससे मेरा संदेह दूर हो गया दूसरा भी संदेह है उसका भी समाधान कीजिए ।

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा ।
ते यते अहिगच्छन्ति, कहं ते निज्जिया तुमे ॥३५॥

अन्वयार्थ —(गोयमा !—गौतम !) तू (अणेगाणं सहस्साणं—अनेकानाम्सहस्राणाम्) अनेक सहस्रो के (मज्झे—मध्ये) बीच मे (चिट्ठसि—तिष्ठसि) खडा है (ते—ते) वे शत्रु (य—च) पुन. (ते—तव) तेरे को जीतने के लिए (अहिगच्छन्ति—अभिगच्छन्ति) सम्मुख आते हैं (कहं—कथम्) किस प्रकार (ते—वे शत्रु) (तुमे—त्वया) तुमने (निज्जिया—निर्जिता) जीते हैं।

मूलार्थ —हे गौतम ! तू अनेक हजारो शत्रुओं के बीच मे खडा है। वे शत्रु तुझे जीतने के लिए सामने आ रहा है तूने किस प्रकार उन शत्रुओं को जीते हैं।

एगेजिए जिया पंच, पंचजिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥३६॥

अन्वयार्थ —(एगे—एकस्मिन्) एक के (जिए—जिते) जीतने पर (पच—पञ्च) पाच (जिया—जिता.) जिते गए (पंचजिए—पञ्चजितेषु) पाच को जीतने पर (दस—दश) (जिया—जिता) जीते गए (दसहा—दशधा) दश प्रकार के शत्रुओ को (उ—तु) तो (जिणित्ता—जित्वा) जीत कर (ण—अलकार मे) (सव्वसत्तू—सर्वशत्रु) सब शत्रुओ को (जिणाम—जयामि) जीता हूँ।

मूलार्थ —एक के जीतने पर पाच जीते गये, पाच को जीतने पर दस जीते गए तथा दस प्रकार के शत्रुओ को जीतकर मैंने सभी शत्रुओं को जीत लिया है।

सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयमब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥३७॥

अन्वयार्थ—(सत्तू—शत्रव) (य—पुन) (इइ—इति) इस प्रकार (के—कौन) (वुत्ते—उक्ता) कहे गये है (केसी—केशी) (गोयम—गौतम)

गोतम से (अब्बवी—अब्रवीत्) कहने लगे (तओ—ततः) तत्पश्चात् (केसिं—केशिनम्) केसीकुमार के (बुवंतं—ब्रुवन्तम्) बोलने पर (तु—तो) (गोयमो—गौतम) (इण—इदम्) यह अब्बवी—कहने लगे।

मूलार्थ—हे गौतम ! वे शत्रु कौन कहे गये है ? केशीकुमार के इस कथन के बाद उनके प्रति गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे।

एगप्पया अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥३८॥

अन्वयार्थ—(एगप्पा—एकात्मा) एक आत्मा (अजिए—अजित) न जीता हुआ (सत्तू—शत्रुरूप है) (कसाया—कषायाः) कषाय-क्रोधादि (इन्दियाणि—इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं (ते—तान्) उनको (जिणित्तु—जीत्वा) जीत कर (मुणी !—मुने !) हे महा मुनि ! (जहानाय—यथान्यायम्) न्यायपूर्वक (अहं—मैं) (विहरामि—विचरता हूँ।

मूलार्थ—हे महा मुने ! वशीभूत न किया हुआ एक आत्माशत्रुरूप है एवं कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रु रूप हैं। उनको न्यायपूर्वक जीतकर मैं विचरता हूँ। (न्यायपूर्वक अर्थात् प्रथम मन को जीत कर फिर कषायादि को जीता।)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मेकहसु गोयमा ! ॥३९॥

अन्वयार्थ—(गोयम !—गौतम !) (ते—तेरी) (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) ठीक है जिससे (मे—मम) मेरी (इमो—अयं) यह (ससओ—सशयः) (छिन्नः—कट गया है) (हे गोयम—हे गौतम !) (मज्झ—मम) मेरा अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (ससओ—सशयो) (त—उसको) (मे—मां) (कहसु—कथय)।

मूलार्थ—हे गौतम ! आपकी बुद्धि ठीक है जिससे मेरा संदेह दूर हो गया दूसरा भी संदेह है उसका भी समाधान कीजिए।

दीसन्ति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कह ते विहरसि मुणी ! ॥४०॥

अन्वयार्थ—(लोए—लोके) संसार में (बहवे—बहव) बहुत से (पास-बद्धा—पाशबद्धा) भव बन्धन से बँधे हुए (सरीरिणो—शरीरिणः) जीव (दीसन्ति—दृश्यन्ते) देखे जाते हैं (हे मुणी !—हे मुने !) (ते—आप) (मुक्क-पासो—मुक्तपाश) भव बंधन से रहित तथा (लहुब्भूओ—लघुभूत) वायु की तरह बिना बाधा से स्वतन्त्र रूप से (कह—कथम्) कैसे (विहरसि—विचरण करते हैं।)

मूलार्थ—हे मुने !—लोक में बहुत से जीव पाश में बँधे हुए देखे जाते हैं। परन्तु तुम पाश से मुक्त लघुभूत (अप्रतिबद्ध) स्वतन्त्र कैसे विचरते हो।

ते पासे सव्वसो छित्ता, निहन्तूण उवायओ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ॥४१॥

अन्वयार्थ—(हे मुणी !—हे मुने !) (ते—तान्) उन (पासे—पाशान्) पाशों को (सव्वसो—सर्वशः) भली-भाँति (छित्ता—छित्वा) काट कर (उवायओ—उपायत) उपाय से (निहन्तूण—निहत्य) नष्ट करके (अहं) मैं (मुक्कपासो—मुक्तपाश) बंधन रहित (लहुब्भूओ—लघुभूत) अप्रतिबद्ध (विहरामि—विचरताहूँ)।

मूलार्थ—हे मुने ! मैं उन बंधनों को सब तरह से काट कर तथा उपाय से विनष्ट कर बंधन रहित स्वतन्त्र होकर विचरता हूँ।

पासा य इइ के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवन्तं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४२॥

अन्वयार्थ—(पासा—पाशा) य—और (के—कौन) (वुत्ता—उक्ता) कहे गये हैं (इइ—इति) ऐसा (केसी—केशी) केशी (गोयम—गौतमम्) गौतम से (अब्बवी—बोले) (केसिं—केशिनम्) केशी कुमार के (एवं—इस प्रकार) (बुवन्त—ब्रुवन्तम्) कहने पर उन से (गोयम—गौतम जी) (इण—इदम्) इस प्रकार (अब्बवी—अब्रवीत्) बोले।

मूलार्थ— वे पाश कौन से हैं ? इस प्रकार केशी कुमार के बोलने पर गौतम स्वामी कहने लगे।

रागद्दोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा।
ते छिन्दित्ता जहानायं, विहरामि जहक्कमं ॥४३॥

अन्वयार्थ—(रागद्दोसादओ—रागद्वेषादय) रागद्वेषादि (तिव्वा—तीव्रा) तीव्र (नेहपासा—स्नेहपाशा) (भयकरा—भयकर हैं) (ते—तान) उनको (छिन्दित्ता—छित्वा) काट कर (जहानायं—यथान्यायम्) पहले मन को उसके बाद कषाय, इन्द्रियों को वशमें कर (जहक्कम—यथाक्रमम्) शांतिपूर्वक (विहरामि—विचरता हूँ।

मूलार्थ—हे भगवान् ! रागद्वेषादि और तीव्र स्नेह रूप बधन बड़े भयकर हैं इन को यथान्याय छेदन करके मैं विचरता हूँ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥४४॥

अन्वयार्थ—मूलार्थ पूर्ववत् है :

अन्तोहिअयसंभूया, लया चिट्ठइ गोयमा।
फलेइ विसभक्खोणि, स उ उद्धरिया कहं ॥४५॥

अन्वयार्थ—(गोयमा ! हे गौतम !)(अन्तो—अन्त) भीतर (हिअयसंभूया—हृदयसभूता) हृदय में उत्पन्न हुई (लया—लता) (चिट्ठइ—तिष्ठति) ठहरती है (फलेइ—फलति) फल देती है (विसभक्खोणि—विषभक्ष्याणि) विषफलों का (स—वह) (उ—फिर) (कहं—किस प्रकार (स—वह) आप ने उसे (उद्धरिया—उद्धृता) उत्पाटिता—उखाड़ी है।

मूलार्थ—हे गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न हुई लता उसी स्थान पर ठहरती है जिसका फल विष के समान (परिणाम में दारुण है)। आपने उस लता को कैसे उखाड़ी ?

तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं
विहरामि जहानायं, मुक्कोमि विसभक्खणं ॥४६॥

अन्वयार्थ—(तं—ताम्) उस (लयं—लताम्) लता को (सव्वसो—सर्वशः) सर्व प्रकार से (छित्ता—छित्वा) काट कर तथा (समूलियं—समूलिकाम्) जड़ सहित (उद्धरित्ता—उद्धृत्य) उखाड़ कर (जहानायं—यथान्यायम्) मैं विस-भक्खणा—विषभक्षणात्) विष खाने से (मुक्कोमि—मुक्तोऽस्मि) मुक्त हो गया हूँ।

मूलार्थ—मैंने उस लता को सर्व प्रकार (से छेदन तथा खण्ड-खण्ड करके मूल सहित उखाड़ कर फेंक दिया है। अतः मैं न्यायपूर्वक विचारता हूँ और विषरूप फलों के खाने से मुक्त हो गया हूँ। विषभक्खाण में पंचमी के स्थान में प्रथमा है।

लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेयं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४७॥

अन्वयार्थ—(लया—लता) (का—कौन) सी (वुत्ता—उक्ता) कही गई है (इइ—इति) इस प्रकार (केसी—केशी कुमार) (गोयम—गौतमम्) गौतम से (अब्बवी—कहने) लगे (य—और) (तु—तदनन्तरम्) (बुवंतं—ब्रुवन्तम्) बोलते हुए (केसिं—केशिनम्) केशी कुमार के प्रति (गोयमो—गौतमः) (इणं—इदम्) यह (अब्बवी—अब्रवीत्) कहने लगे।

मूलार्थ—हे गौतम! लता कौन सी कही गई है? इस प्रकार केशी कुमार के कहने पर उनके प्रति गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा।

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया ।
तमुच्छित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी ! ॥४८॥

अन्वयार्थ—(महामुणी !—महामुने !) (भवतण्हा—भवतृष्णा) (लया—लता) वुत्ता—कही गई है जो (भीमा—भयंकर) (भीमफलोदया—भयंकर फलों को देनेवाली है) (तं—ताम्) उसको (जहानायं—न्यायपूर्वक) (उच्छित्तु—उच्छिद्य) उच्छेदन करके (विहरामि—विचरण करता हूँ)।

मूलार्थ—हे महामुने! संसार में तृष्णारूप लता कही गई है जो भयंकर फलों को देनेवाली है। उसको न्यायपूर्वक काट कर मैं विचरता हूँ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥४६॥

अन्वयार्थ और मूलार्थ पूर्ववत् है ।

संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा !
जे डहंति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ :—(गोयमा! हे गौतम !) (सपज्जलिया—सप्रज्वलिता) सप्रज्वलित—(खूब धधकती) (घोरा—भयकर) (अग्गी—अग्नय) अग्नयः (चिट्ठइ—तिष्ठति) ठहरती हैं (जे—ये) जो (सरीरत्था—शरीरस्था) शरीर में रहती हुई, शरीर को (डहंति—दहति) (भस्म करती हैं) (तुमे—त्वया) तूने [कहं—कैसे] [विज्झाविया—विध्यापित] बुझाई ।

मूलार्थ—हे गौतम ! शरीर मे जो अग्नियाँ ठहरी हुई हैं और जो खूब धधक रही हैं । अतएव घोर प्रचड तथा शरीर को भस्म करनेवाली हैं । उनको आपने कैसे शान्त किया ? (अर्थात उनको आपने कैसे बुझाई ?)

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तम ।
सिंचामि सययं ते उ, सित्ता नो डहन्ति मे ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—(महामेहप्पसूयाओ—महामेघप्रसूतात) महामेघ से उत्पन्न (जलुत्तम—जलोत्तमम्) जलो मे उत्तम (वारि—जलम)) (गिज्झ—गृहीत्वा) लेकर (सयय—सततम्) सदा मै—उन अग्नियो को (सिंचामि—सींचता रहता हूँ । अतः (सित्ता—सिक्ता) सींची गई वे (मे—माम्) मुझे (आत्मगुणों को) (नोडहंति—न दहति) ।

मूलार्थ—महामेघ से उत्पन्न उत्तम और पवित्र जल को लेकर उन अग्नियों को सदा सींचता रहता हूँ । अत सिंचन की गई वे अग्नियाँ मेरे आत्मगुणो को नही जलाती ।

अग्गी य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ—आगी—(अग्नय) अग्नियां (य—और) (के—कौनसी) (वुत्ते—उक्ता) कही गई—हैं (इइ—इति) इस प्रकार (केसी—केशीकुमार) (गोयम—गौतमम्) गौतम—के प्रति (अब्बवी—कहने) लगे (तओ—तत) तदन्तर (केसिं—केशिनम्) केशीकुमार के प्रति (गोयमो—गौतमस्वामी) (इण—इदम्) यह वचन (अब्बवी—कहन) लगे।

मूलार्थ—हे गौतम! अग्नियां कौनसी कही गई हैं? (महामेघ कौनसा और पवित्र जल किसका नाम है) इस प्रकार केशीकुमार के कहने पर गौतम स्वामी ने उनसे इस प्रकार कहा।

> कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं।
> सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहंति मे ॥५३॥

अन्वयार्थ—(कसाया—कषाया) क्रोधादि चार कषाय (अग्गिणो—अग्नय) अग्नियां (वुत्ता—उक्ता) कही गयी हैं (सुयसीलतवो—श्रुतशीलतप) श्रुत (ज्ञान) शील (५ महाव्रत) रूप, तप—१२ तप (जल—जल) है (सुयधाराभिहया—श्रुतधाराभिहता) श्रुतधारा से ताडित किये जाने पर (भिन्ना-भिन्ना) अलग २ (सन्ना—सन्त) की गई अग्नियां (हु—खलु) निश्चय (मे—माम्) मुझे (नडहन्ति—नडहन्ति) नहीं जलाती हैं।

मूलार्थ—हे मुने! (क्रोध, मान, माया, लोभ) रूप ४ कषाय अग्नियां हैं। श्रुत (ज्ञान) शील (५ महाव्रत) (१२ प्रकार का तप) रूप जल कहा जाता है तथा श्रुत रूप जलधारा से ताड़ित किये जाने पर भेदन की गई वे अग्नियां मुझे नहीं जलाती।

> साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
> अन्नोवि संसओ मज्झ, तं मे कहसु गोयमा! ॥५४॥

अन्वयार्थ और मूलार्थ पूर्ववत् है।

> अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
> जंसि गोयम! आरूढो कहं तेण न हीरसि? ॥५५॥

अन्वयार्थ—(अयं—यह) (साहसिओ—साहसिक) (भीमो—बलवान्) (दुट्ठस्सो—दुष्टाश्व) दुष्ट घोड़ा (परिधावई—परिधावति) सर्व प्रकार से दौड़ता है। (हे गोयम ! हे गौतम !) (जंसि—यस्मिन्) जिस पर मैं (आरूढो—चढ़ा हुआ है।) (तिण—उस) अश्व द्वारा (कह—कथम्) न (हीरसि—ह्रियसे) दुष्टमार्ग में क्यों नहीं लाया गया।

मूलार्थ— हे गौतम ! यह साहसिक और भीम दुष्ट घोड़ा चारों ओर भाग रहा है। उस पर चढ़े हुए आप उसके द्वारा कैसे उन्मार्ग में नहीं ले जाए गये ? अर्थात् वह घोड़ा आपको कुमार्ग में क्यों नहीं ले गया ?

पहावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सी समाहियं ।
न मे गच्छइ उमग्गं, मग्गं च पडिवज्जई ॥५६॥

अन्वयार्थ— (पहावन्तं—प्रधावन्तम्) भागते हुए (सुयरस्सी—श्रुतरश्मि) श्रुतरूपलगाम द्वारा (समाहिय—समाहितम्) बंधे हुए घोड़े को (निगिण्हामि—निगृह्णामि) पकड़ता हूँ। अतः (मे—मेरा) अश्व (उमग्ग—उन्मार्गम्) कुमार्ग पर (न गच्छइ—न गच्छति नहीं जाता है)। (च—पुनः) (मग्ग—सुमार्गम्)को (पडिवज्जई—प्रतिपद्यते—ग्रहण करता है।

मूलार्थ— हे मुने ! भागते हुए दुष्ट घोड़े को पकड़ कर मैं श्रुतरूप लगाम से बांध कर रखता हूँ। अतः मेरा घोड़ा उन्मार्ग पर नहीं जाता किन्तु

आसे य इइ वुत्तं के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५७॥

अन्वयार्थ —(आसे—अश्व) य—च (के—क) कौन (वुत्ते—उक्त) कहा गया है (इइ—इति) इस प्रकार (शेष भावार्थ प्रथम आई गाथाओं के समान है।

मूलार्थ — हे गौतम ! आप अश्व किसको कहते हैं ? केशी कुमार के इस वचन को सुनकर गौतम स्वामी ने उनके प्रति इस प्रकार कहा।

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कन्थगं ......

अन्वयार्थ— (मणो—मन) (साहस्सिओ—साहसिक) (भीमो—रौद्रः) (दुट्ठस्सो—दुष्टाश्व) दुष्ट अश्व (परिधावई—परिधावति) चारो ओर भागता है। (तं—उसको) (सम्म—सम्यक्) भली प्रकार से (धम्मसिक्खाइ—धर्मशिक्षया) धर्म शिक्षा के द्वारा (कन्थग—कन्थकम्) जाति मान घोड़े की तरह (निगिण्हामि—निगृह्णामि) वश मे करता हूँ।

मूलार्थ— हे मुने! यह मन ही साहसिक और रौद्र दुष्टाश्व है जो कि चारो ओर भागता है। मैं उसको कन्थक जाति मान अश्व की तरह धर्म शिक्षा द्वारा वश मे करता हूँ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं तं मे कहसु गोयमा ॥५६॥

अन्वयार्थ और मूलार्थ पूर्ववत्

कुप्पहा बहवे लोए, जेसिं नासन्ति जन्तवो।
उद्धाणे कह वट्टन्तो, तं न नाससि गोयमा ! ॥६०॥

अन्वयार्थ —(लोए—लोके) संसार मे (बहवे—बहवः) बहुत से (कुप्पहा—कुपथा) कुमार्ग हैं (जसि—यें) जिनसे (जन्तवो—जीवा) जीव (नासन्ति—नाश पाते हैं (त—त्वम्) तुम (अद्धाणे—अध्वनि) मार्ग मे (कह—कथम् कैसे) (वहन्तो—वर्तमान) चलते हुए (गोयमा ! हे गौतम !) (न-न नश्यसि) नाश को प्राप्त नही होते हैं।

मूलार्थ —हे गौतम ! लोक मे ऐसे बहुत कुमार्ग हैं जिन पर चलने से जीव उन्मार्ग से पतित हो जाते हैं परन्तु आप चलते हुए उससे भ्रष्ट क्यों नहीं होते ?

जे य मग्गेण गच्छन्ति, जे य उम्मग्ग पट्ठिया।
ते सव्वे वेइया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी ! ॥६१॥

अन्वयार्थ —(हे मुणी ! हे मुने) हे मुने ! जो (य+और) (मग्गेण-मार्गाणि)(गच्छन्ति—जाते हैं) य—और (जे—ये(जो) उम्मग्गं—उन्मार्गम्) कुमा-

र्ग पर (पट्ठया—प्रस्थिताः) चल रहे हैं (ते—वे)(सव्वे—सर्वे) सब (मज्झ—मया) मुझ से (वेइया—विदिताः) जाने गये हैं (तो—तस्मात्) (अहं—मैं) (नस्सामि—नश्यामि) सन्मार्ग से च्युत नहीं होता हूं।

मूलार्थ—हे मुने ! जो सन्मार्ग से जाते हैं और जो उन्मार्ग पर प्रस्थान कर रहे हैं उन सब को मैं जानता हूँ। अतः मैं सन्मार्ग से च्युत नहीं होता।

मग्गे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवन्त तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६२॥

अन्वयार्थ—[के—कः] कौनसा [मग्गो—मार्ग] रास्ता [वुत्ते—उक्त] बताया गया है। इत्यादि समग्र पूर्ववत् गाथा की व्याख्या की तरह जानना।

मूलार्थ—हे गौतम ! वह सुमार्ग और कुमार्ग क्या है? इत्यादि प्रथमके मूलार्थ से जानना।

कुप्पवयणपासण्डी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गो हि उत्तमे ॥६३॥

अन्वयार्थ—[कुप्पवयण—कुप्रवचन के माननेवाले [पासण्डी—पाखण्डी लोग [सव्वे—सर्वे] सभी [उम्मग्गपट्ठिया—उन्मार्गप्रस्थिताः] उन्मार्ग में चलते हैं [सम्मग्गं—सन्मार्ग] सन्मार्ग तु—तो [जिणक्खाय—जिनाख्यातम्] जिनदेव-भाषित [एस—एषः] यह [मग्गे—मार्ग] है [हि—निश्चय से] तु—तो [उत्तमे—उत्तम] है।

मूलार्थ—कुदर्शनवादी सभी पाखण्डी लोग कुमार्ग पर चलते हैं। सन्मार्ग तो जिन देव का वचन है और यही उत्तम मार्ग है।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥६४॥

पूर्ववत् अन्वयार्थ—मूलार्थ है।

महाउदगवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
सरणं गई पइट्ठं य, दीवं कं मन्नसि ? मुणी ! ॥६५॥

अन्वयार्थ—[हे मुणी—हे मुने!] [महाउदगवेगेणं—महोदकवेगेन] महान् उदक के वेग से [वुज्झमाणाण—उह्यमनानाम्] बहते हुए [पाणिण—प्राणिनाम्] अल्प शक्तिवाले प्राणियो को [सरण—शरणम्] शरण रूप [गई—गतिम्] गतिरूप और [पइट्ठं—प्रतिष्ठाम्] प्रतिष्ठारूप [दीवं—द्वीपम्] द्वीप [कं—कौनसा] मन्नसि (मन्यसे) मानते हो ?

मूलार्थ—हे मुने! महान् जल के वेग मे बहते हुए अल्पसत्त्ववाले प्राणियो को शरणागति और प्रतिष्ठा रूप द्वीप आप कौन सा मानते हो ?

अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ न विज्जई ॥६६॥

अन्वयार्थ—[वारिमज्झे—वारिमध्ये] समुद्र के बीच में [एगो—एक] [महादीवो—महाद्वीप] [अत्थि—अस्ति] है वह [महालओ—महालयः] अधिक विस्तार वाला है। [महाउदवेगस्स—महोदकवेगस्य] जल के महान् वेग की [तत्थ—तत्र] वहाँ [गई—गति] [न विज्जई—न विद्यते] नही है।

मूलार्थ—समुद्र के बीच मे एक महाद्वीप है। वह बडे विस्तार वाला है। जल के महान् वेग की वहा गति नही है।

दीवे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंत तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६७॥

अन्वयार्थ—[दीवे—द्वीपः] य—और [के—कः] कौनसा [वुत्ते—उक्तः] कहा गया है [इइ—इति] ऐसा [केसी—केशी कुमारने [गोयम—गौतमम्] गौतम के प्रति [अब्बवी—अब्रवीत्] बोले इत्यादि सर्व पूर्ववत् जानना।

मूलार्थ—हे गौतम! वह महाद्वीप कौनसा कहा गया है। इस प्रकार केशी कुमार के कहने पर गौतम स्वामी इस प्रकार बोले :

जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥६८॥

अन्वयार्थ—[जरामरणवेगेणं—जरामरणवेगेन] जरामरण के वेग से [वुज्झमाणाण—उह्यमानानाम्] डूबते हुए [पाणिण—प्राणिनाम्] प्राणियों का [धम्मो—धर्मः] धर्म ही [दीवो—द्वीप है [पइट्ठा—प्रतिष्ठा] प्रतिष्ठान है [य—और] [गई—गतिरूप है] [सरणशरणभूत है] [उत्तमं—उत्तम है]

मूलार्थ—जरा-मरण के वेग से डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म, द्वीप प्रतिष्ठान (आधार) है और उसमें जाना उत्तम शरण रूप है।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु, गोयमा ॥६९॥

इस गाथा का अन्वयार्थ और मूलार्थ पहले कर दिया गया है।

अण्णवंसि महोहंसि, नावा विपरिधावई ।
जंसि गोयममारूढो, कहं पारं गमिस्ससि ॥७०॥

अन्वयार्थ—[महोहंसि—महौघे] महा प्रवाह वाले [अण्णवंसि—अर्णवे] समुद्र में [नावा—नौः] नौका भी [विपरिधावई—विपरिधावति] विपरीत रूप से चारों ओर भाग रही है। [जंसि—यस्याम्] जिस पर [आरूढो—चढ़ाहुआ] [गोयम !—हे गौतम !] तू [कहं—कथम्] कैसे [पारं—पारको [गमिस्ससि—गमिष्यसि] प्राप्त होगा ?

मूलार्थ—महाप्रवाह वाले समुद्र में एक नाव विपरीत रूप से भाग रही है। जिस पर आप आरूढ-सवार हो रहे हैं तो फिर आप कैसे पार जा सकोगे ?

जा उ अस्साविणी नावा, नसा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥७१॥

अन्वयार्थ—(जा—या) जो (उ—तु) तो (अस्साविणी—आस्राविणी) छिद्र सहित (नावा—नौका है) (सा—वह) (पारस्स—पारस्य) पार को गामिणी—जानेवाली) (न—नहीं) है। (जा—जो) (उ—तु) तो (निरस्साविणी—निरास्राविणी) छिद्र रहित (नावा—नौ) नौका है (साउ—सा तु) वह तो (पारस्स—पारको) (गामिणी—जानेवाली है।

मूलार्थ—जो छिद्र सहित नाव है वह पार जाने वाली नहीं है। जो तो विना छेद की है वह तो निश्चय पार पहुँचाने वाली है।

नावा य इइ का वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
तओ केसि वुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७२॥

अन्वयार्थ—(नावा—नौ.) य—च (का—कौनसी) (वुत्ता—उक्ता) कही गई है, (इइ—इति) ऐसा वचन (केसी—केशी कुमार) (गोयमं—गौतमम्) गौतमस्वामी से (अब्बवी—अब्रवीत्) बोले। इत्यादि सब पदार्थ पूर्ववत् जानना।

मूलार्थ—वह नौका कौनसी कही गई है इस प्रकार केसी कुमार ने गौतम स्वामी से कहा। इत्यादि पूर्ववत् अर्थ जानना।

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चई नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, ज तरंति महेसिणो ॥७३॥

अन्वयार्थ—(सरीर—शरीरम्) शरीर को (नाव—नौ·) नौका (ति—इति) ऐसा (आहु—आहु) तीर्थंकर देव कहते हैं (जीवो—जीवः) जीव को नाविओ—नाविक) (वुच्चइ—उच्यते) कहा जाता है (संसारो—संसार·) संसार को (अण्णवो—अर्णव) समुद्र (वुत्तो—उक्तः) कहा गया है (ज—यम्) जिस समुद्र को (महेसिणो—महर्षय) महर्षि लोग (तरंति—तैर जाते हैं।

मूलार्थ—तीर्थंकर देव ने इस शरीर को नौका के समान कहा है और जीव को नाविक कहा है। यह संसार ही समुद्र है जिसे महर्षि लोग पारकर जाते हैं।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झ, तं मे कहसु गोयमा ॥७४॥

इस गाथा का अन्वयार्थ-मूलार्थ पूर्ववत् जानना

अंधयारे तमे घोरे, चिट्ठंति पाणिणो बहू।
को करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं ॥७५॥

अन्वयार्थ—(बहू—बहवः) बहुत से (पाणिणो—प्राणिनः) प्राणी घोरे तमे अन्धयारे—घोरे तमसि अंधकारे) घोर तमरूप अंधकार में (चिट्ठ—तिष्ठन्ति) ठहरते हैं। (सव्वलोगम्म—सर्वलोके) सब लोक में (पाणिण—प्राणिनाम्) प्राणियों के लिए (को—कः) कौन (उज्जोय—उद्योतम्) प्रकाश (करिस्सइ—करिष्यति) करेगा।

मूलार्थ—हे गौतम! बहुत से प्राणी घोर अंधकार में स्थित हैं। इन सब प्राणियों को लोक में कौन प्रकाश देता है?

उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोयपभंकरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं ॥७६॥

अन्वयार्थ—(सव्वलोयपभंकरो—सर्वलोकप्रभाकरः) सर्व लोक में प्रकाश करने वाला (विमलो भाणू—विमलोभानुः) निर्मल (मेघरहित) सूर्य (उग्गओ—उद्गतः) उदय हुआ। (सो—वह ही) (सव्वलोगम्मि—सर्वलोक में) (पाणिण—प्राणिनाम्) प्राणियों को (उज्जोय—उद्योतम्) प्रकाश को (करिस्सइ—करिष्यति) करेगा।

मूलार्थ—हे भगवान् लोक भर में प्रकाश करने वाला निर्मल सूर्य उदय हुआ है वही इस संसार में सब जीवों को प्रकाशित करेगा।

भाणू अ इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७७॥

इस गाथा का अन्वयार्थ-मूलार्थ पूर्ववत् जानना।

उग्गओ खीणसंसारो, सव्वण्णू जिणभक्खरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं ॥७८॥

अन्वयार्थ—(खीणसंसार—क्षीणसंसार) क्षीण किया है संसार को जिसने ऐसा (सव्वण्णू—सर्वज्ञ) (जिणभक्खरो—जिनभास्करः) सर्वज्ञ तीर्थंकर रूप सूर्य का (उग्गओ—उद्गतः) उदय हुआ है (सो—वही) (सव्वलोगम्मि—सर्वलोक में) (पाणिणं—प्राणिनाम्) प्राणियों को (उज्जोय—उद्योतम्) (करिस्सइ—करिष्यति) करेगा।

मूलार्थ—जिन का संसार क्षीण हो चुका है ऐसे सर्वज्ञ जिनेन्द्र रूप सूर्य का उदय हुआ है। वही सब लोक में प्राणियों को प्रकाशित करेगा।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नोमे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झ, तं मे कहसु गोयमा ! ॥७९॥

शेष पूर्ववत् है

सारीरमाणसेदुक्खे, वज्झमाणाण पाणिणं।
खेमं सिवमणावाहं, ठाणं किं मन्नसी मुणी ! ॥८०॥

अन्वयार्थ.—(मुणी ! हे मुने !) (सारीरमाणसेदुक्खे—शारीरमानसै-दुखैः) शारीरिक, मानसिक दुःखों से (वज्झमाणाण—बाध्यमानानाम्) बाध्यमान पीडित (पाणिण—प्राणियोंके लिए) (खेम—क्षेमम्) व्याधि रहित (सिवं—शिवम्) सर्व उपद्रव रहित (अणावाहं—अनाबाधम्) स्वाभाविक बाधा रहित (ठाण—स्थानम्) (किं—किम्) कौनसा (मन्नसी—मन्यसे) मानते हो।

मूलार्थ—हे मुने ! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेम और सब उपद्रवों से रहित तथा निर्विघ्न स्थान आप किसको मानते हैं ?

अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जत्थ नत्थि जरामच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥८१॥

अन्वयार्थ—(लोगग्गमि—लोकाग्रे) लोक के अग्र भागमें (दुरारुहं—दुरारोहम्) दुःख से चढ़ने योग्य (एग—एकम्) एक (धुवं—ध्रुवम्) निश्चल (ठाणं—स्थानम्) स्थान है (जत्थ—यत्र) जहाँ (जरामच्चू—जरामृत्यु) बुढ़ापा और मृत्यु (तहा—तथा) (वाहिणो, वेयणा—व्याधयः वेदना:) (न—नहीं) (अत्थि—अस्ति) है।

मूलार्थ—लोक के ऊपर कठिनाई से चढ़ने योग्य एक निश्चल स्थान है जहाँ बुढ़ापा, मृत्यु, व्याधि और वेदनाएँ नहीं हैं।

ठाणे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥८२॥

अन्वयार्थ—(ठाणे—स्थानम्) वह स्थान (य—और) (के—किम्) कौनसा (वुत्ते—उक्तम्) कहा गया है इत्यादि शेष सब प्रथम की तरह जानना ।

निव्वाणंति अवाहंति सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो ॥८३॥

अन्वयार्थ—(महेसिणो—महर्षिण:) महर्षिजन (जं—यत्) जिस स्थान को (चरंति—प्राप्त करते हैं) वह स्थान (निव्वाण—निर्वाणम्) निर्वाण (ति—इस प्रकार) (अवाहं—अबाधम्) बाधा रहित (ति—इस प्रकार (सिद्धी—सिद्धि:) (लोगग्ग—लोकाग्रम्) लोकाग्र (एव—पादपूर्ति में) य—और (खेमं—क्षेमम्) (सिवं—शिवम्) और (अणाबाहं—अनाबाधम्) बाधारहित है ।

मूलार्थः—हे मुने ! जिस स्थान को प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण अव्याबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध इन नामों से विख्यात है ।

तं ठाणं सासयवासं, लोगग्गंमि दुरारुहं ।
जं संपत्ता न सोयन्ति, भवोहन्तकरा मुणी ॥८४॥

अन्वयार्थ—(मुणी ! हे मुने) (तं—तत्) वह (ठाणं—स्थानम्) स्थान (सासयवासं—शाश्वतवासम्) शाश्वतवासरूप है (लोगग्गंमि—लोकाग्रे) लोक के अग्रभाग पर स्थित है (दुरारुहं—दुरारोहम्) परन्तु उस पर चढ़ना अत्यन्त कठिन है । (जं—यत्) जिसको (संपत्ता—सम्प्राप्ताः) प्राप्त करके (भवोहन्तकरा भवौघान्तकराः) भव (संसार) के प्रवाह (जन्म—मरण) का अन्त करनेवाले मुनिजन (नसोयन्ति—न शोचन्ति) सोच नहीं करते हैं ।

मूलार्थ—हे मुने वह स्थान शाश्वतवासरूप है (अविनाशी है) लोक के अग्रभाग में स्थित है ! परन्तु दुरारोह है । तथा जिस को प्राप्त कर भव परम्परा का अन्त करने वाले मुनिजन सोच नहीं करते हैं ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥
नमो ते संसयातीत ! सव्वसुत्त महोयही ! ॥८५॥

मूलार्थ—जिन का संसार क्षीण हो चुका है ऐसे सर्वज्ञ जिनेन्द्र रूप सूर्य का उदय हुआ है। वही सब लोक में प्राणियों को प्रकाशित करेगा।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नोमे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, त मे कहसु गोयमा! ॥७६॥

शेष पूर्ववत् है

सारीरमाणसेदुक्खे, बज्झमाणाण पाणिणं।
खेमं सिवमणाबाहं, ठाणं किं मन्नसी मुणी! ॥८०॥

अन्वयार्थ—(मुणी! हे मुने!) (सारीरमाणसेदुक्खे—शारीरमानसै-दुखैः) शारीरिक, मानसिक दुःखों से (बज्झमाणाण—बाध्यमानानाम्) बाध्य-मान पीडित (पाणिण—प्राणियोंके लिए) (खेम—क्षेमम्) व्याधि रहित (सिवं—शिवम्) सर्व उपद्रव रहित (अणाबाहं—अनाबाधम्) स्वाभाविक बाधा रहित (ठाण—स्थानम्) (किं—किम्) कौनसा (मन्नसी—मन्यसे) मानते हो।

मूलार्थ—हे मुने! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीडित प्राणियों के लिए क्षेम और सब उपद्रवों से रहित तथा निर्विघ्न स्थान आप किसको मानते हैं?

अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जत्थ नत्थि जरामच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥८१॥

अन्वयार्थ—(लोगग्गमि—लोकाग्रे) लोक के अग्र भागमें (दुरारुहं—दुरारोहम्) दुःख से चढ़ने योग्य (एग—एकम्) एक (धुव—ध्रुवम्) निश्चल (ठाण—स्थानम्) स्थान है (जत्थ—यत्र) जहाँ (जरामच्चू—जरामृत्यु) बुढ़ापा और मृत्यु (तहा—तथा) (वाहिणो, वेयणा—व्याधयः वेदनाः) (न—नहीं) (अत्थि—अस्ति) हैं।

मूलार्थ—लोक के ऊपर कठिनाई से चढ़ने योग्य एक निश्चल स्थान है जहाँ बुढ़ापा, मृत्यु, व्याधि और वेदनाएँ नहीं हैं।

ठाणे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥८२॥

अन्वयार्थ—(ठाणे—स्थानम्) वह स्थान (य—और) (के—किम्) कौनसा (वुत्ते—उक्तम्) कहा गया है इत्यादि शेष सब प्रथम की तरह जानना ।

निव्वाणंति अबाहंति सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो ॥८३॥

अन्वयार्थ —(महेसिणो—महर्षिणः) महर्षिजन (ज—यत्) जिस स्थान को (चरंति—प्राप्त करते हैं) वह स्थान (निव्वाणं—निर्वाणम्) निर्वाण (ति—इस प्रकार) (अबाहं—अबाधम्) बाधा रहित (ति—इस प्रकार (सिद्धी—सिद्धिः) (लोगग्गं—लोकाग्रम्) लोकाग्र (एव—पादपूर्ति मे) य—और (खेम—क्षेमम्) (सिवं—शिवम्) और (अणाबाहं—अनाबाधम्) बाधारहित है ।

मूलार्थः—हे मुने ! जिस स्थान को प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण अव्याबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध इन नामों से विख्यात है ।

तं ठाणं सासयवासं, लोगग्गंमि दुरारुहं ।
जं संपत्ता न सोयन्ति, भवोहन्तकरा मुणी ॥८४॥

अन्वयार्थ—(मुणी ! हे मुने) (तं—तत्) वह (ठाणं—स्थानम्) स्थान (सासयवासं—शाश्वतवासम्) शाश्वतवासरूप है (लोगग्गंमि—लोकाग्रे) लोक के अग्रभाग पर स्थित है (दुरारुहं—दुरारोहम्) पर तु उस पर चढ़ना अत्यन्त कठिन है । (ज—यत्) जिसको (संपत्ता—सम्प्राप्ताः) प्राप्त करके (भवोहन्तकरा भवौघान्तकराः) भव (संसार) के प्रवाह (जन्म—मरण) का अन्त करनेवाले मुनिजन (नसोयन्ति—न शोचन्ति) सोच नही करते हैं ।

मूलार्थ—हे मुने वह स्थान शाश्वतवासरूप है (अविनाशी है) लोक के अग्रभाग में स्थित है । परतु दुरारोह है । तथा जिस को प्राप्त कर भव परम्परा का अन्त करने वाले मुनिजन सोच नहीं करते हैं ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥
नमो ते संसयातीत ! सव्वसुत्त महोयही ! ॥८५॥

अन्वयार्थ—(गोयम ! हे गौतम !) (ते—तव) तेरी (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) ठीक है (मे—मेरा) (इमो—इमम्) यह (संसओ—संशय) (छिन्नो—कट गया दूर हो गया (ससयातीत !—हे संशयातीत !) हे संदेह को मिटाने वाले (सव्वसुत्तमहोयही !—सर्वसूत्रहोदधे !) हे सब सूत्रों के महा सागर (ते—तुभ्यम्) नमो—आपको नमस्कार है।

मूलार्थ—हे गौतम ! आप की प्रज्ञा साधु है। आपने मेरे सब संशय को छेदन कर दिया अतः हे संशयातीत !—हे सर्वसूत्र के पारगामी ! आपको नमस्कार है।

एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे।
अभिवन्दित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ॥८६॥

अन्वयार्थ—(एव—इस प्रकार (संसए—संशये) संशय (छिन्ने—दूर हो जाने पर (घोरपरक्कमे—घोरपराक्रम) घोर पराक्रम वाले (केसी—केशीमुनि) (महायसं—महायशम्) महान्यशस्वी (गोयमं—गौतम स्वामी को) (सिरसा—शिरसा) शिर से (अभिवंदित्ता—अभिवन्द्य) वंदना करके (तु—पुन.)।

मूलार्थ—इस तरह संशयो के दूर हो जाने पर घोर पराक्रम वाले केशी मुनि ने महायशस्वी गौतमस्वामी को शिर से वंदना करके।

पंचमहव्वयधम्मं, पडिवज्जंइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥८७॥

अन्वयार्थ—(तत्थ—तत्र) उस तन्दुक वन में (पंचमहव्वयधम्मं—पंच-महाव्रतधर्मम्) पांचमहाव्रतरूपधर्म को (भावओ—भावतः) भाव से (पडि-वज्जई—प्रतिपद्यते) ग्रहण किया। क्योंकि (पुरिमस्स—पूर्वस्य) पहले तीर्थंकर के और (पच्छिमम्मि—पश्चिमे) पश्चिम (चरम) तीर्थंकर के (मग्गे—मार्गे) मार्ग [नियम] में 'सुहावहे—सुखावहे' सुखदायक कल्याणदायक पंचयम रूप धर्म का पालन करना बतलाया है।

केसी गोयमओ निच्चं, तम्मि आसि समागमे।
सुयसीलसमुक्करिसो, महत्थत्थविणिच्छओ ॥८८॥

अन्वयार्थ—(तम्मि—तस्मिन्) उस तन्दुक वन में (केसी गोयमओ—केशीगौतमयो) केशी और गौतम का (निच्च—नित्यम्) सदा (समागमे—समागम) (आसि—आसीत्) हुआ। उसमें (सुयसीलसमुक्कसो—श्रुतशील-समुत्कर्ष.) श्रुत, शील, ज्ञान, चारित्र का सम्यक् उत्कर्ष (संहरथत्थविणिच्छओ—महार्थार्थविनिश्चय) मुक्तिके अर्थ का साधक शिक्षा व्रतादि रूप का विशिष्ट निर्णय।

मूलार्थ—उस तन्दुक वन में केशी मुनि और गौतम स्वामी का जो नित्य समागम हुआ उसमें श्रुत, शील, ज्ञान और चारित्र का सम्यक् उत्कर्ष जिसमें है; ऐसे मुक्तिसाधक शिक्षाव्रत आदि नियमों का विशिष्ट निर्णय हुआ।

तेसिया परिसा सव्वा, समग्गं समुट्ठिया।
संथुया ते पसीयन्तु, भवयं केसिगोयमे त्ति बेमि ॥८९॥

अन्वयार्थ—(सव्वा—सर्वा) सब (परिसा—परिषत्) परिषद् (तोसिया—तोषिता) सन्तुष्ट होकर (समग्ग—सन्मार्गम्) सन्मार्ग में समुवट्ठिया—समुपस्थिता) लग गई (भवय—भगवन्तौ) (केसिगोयमे—केशिगौतमौ) केशी मुनि और गौतम स्वामी (संथुया—संस्तुतौ) स्तुति किये गये (ते—तौ) वे दोनों (पसीयन्तु—प्रसीदताम्) प्रसन्न हो। (त्तिबेमि—इति ब्रवीमि) ऐसे कहता हूँ।

मूलार्थः—सर्व परिषद् उत्तम संवाद को सुनकर सन्मार्ग में प्रवृत्त हो गई तथा भगवान् केशीकुमार और गौतम स्वामी प्रसन्न हों। इस प्रकार सभा ने स्तुति की।

केसिगोयमभिज्जं तेवीसइममं अज्झयणं सम्मत्तं ॥२३॥
केशीगौतमीयं त्रयोविंशमध्ययनम् समाप्तम् ॥२३॥

—:०:—

अह समिइओ चउवीसइमं अज्झयणं
अथ समितयः (इति) चतुर्विंशमध्ययनम्

अट्ठ पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
पंचेव य समिईओ, तओ, गुत्तीउ आहिया ॥१॥

अन्वयार्थ—(समिई—समितय.) (य—और) (तहेव—तथैव) इसी प्रकार (गुत्ती—गुप्तय·) (अट्ठ—अष्टौ) आठ (पवयणमायाओ—प्रवचनमाता) प्रवचन माताएं हैं जैसे (पचवे—पञ्चैव) (समिइओ—समितय·) (य—और) (तओ—तिस्र) तीन (गुत्तीउ—गुप्तय) गुप्तिया (आहिया—आख्याता) कही गई हैं।

मूलार्थ—समिति और गुप्तिरूप आठ प्रवचन माताएं हैं। जैसे पाच समितियां और तीन गुप्तियां।

इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥२॥

अन्वयार्थ—(इरियाभासेसणादाणे—ईर्याभाषैषणादाने) ईर्या भाषा, एषणा, आदान (य—और) (उच्चारे—उच्चार) रूप (समिई—समितय·) समितियाँ हैं (इय—इति) (मनगुत्ती—वयगुत्ती, कायगुत्तीय—मनगुप्ति, वचोगुप्ति, कायगुप्तिश्च) (अट्ठमा—अष्टमी) आठवीं।

मूलार्थ—ईर्या समिति, भाषा समिति, आदान समिति और उच्चार समिति तथा मनगुप्ति, वचन गुप्ति और आठवीं काय गुप्ति है यही आठ प्रवचन माताएं हैं तात्पर्य ईर्या- गति परिणाम, भाषा-भाषणविधि एषणा-निर्दोष अन्नादि का विधि पूर्वक लेना, आदान-वस्त्रपात्रादि का ग्रहण और निक्षेप में यत्नों से काम लेना, उच्चार मलमूत्रादि त्याग में भी यतना करना

मन वचन, काय को वश में रखना। समिति के प्रवचन और गुप्ति के प्रविचार तथा अविचार उभय रूप होने से परस्पर भेद है।

एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया।
दुवालसंगं जिणक्खायं, मायं जत्थ उ पवयणं ॥३॥

अन्वयार्थः—(एयाओ—एता.) ये (अट्ठा—अष्ट) आठ (समिइओ—समितियाँ (समासेण—सक्षेप से) (वियाहिया—व्याख्याता) वर्णन की गई हैं। (जिणक्खाय—जिनख्यातम्) जिनकथित (दुवालसगं—द्वादशागम्) रूप (पवयण—प्रवचनम्) प्रवचन (माय—मातम्) समाविष्ट—अन्तर्भूत है।

मूलार्थ—ये आठ समितियाँ सक्षेप से वर्णन की गई हैं जिनभाषित द्वादशाग रूप प्रवचन इन्हीं के अन्दर समाया हुआ है।

आलम्बणेण कालेण, मग्गेण जायणाइ य।
चउकारणपरिसुद्धं, हजए इरियं रिए ॥४॥

अन्वयार्थ—(संजए—सयत) सयमी पुरुष (आलम्बणेण—आलम्बनेन) आलम्बन से (कालेण—काल से) (मग्गेण—मार्गेण) मार्ग से (जयणाइ—यतनया) यतना से (चउकारणपरिसुद्ध—चतुष्कारणपरिशुद्धाम्) इन चार कारणों से परिशुद्ध (इरिय—इर्याम्) इर्या को (रिए—रीयेत) प्राप्त करे।

मूलार्थ.—आलम्बन, काल, मार्ग और यतना इन चार कारणों की परिशुद्धि से सयमी साधु गति को प्राप्त करे वा गमन करे।

तत्थ आलम्बणं, नाणं दंसणं चरणं तहा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पह वज्जिए ॥५॥

अन्वयार्थ—(तत्थ—तत्र) इर्या के चार कारणो मे (आलम्बणं—आलम्बनम्) (नाणं—ज्ञान) (तहा—तथा) (दसण, चरणं—दर्शन, चरणाम्) दर्शन और चरित्र (काले—कालः) (य—और) (दिवसे—दिवसः) (वुत्ते—उक्तः) कहा गया है और (उप्पह—उत्पथ) उत्पथ से (वज्जिए—वर्जित) रहित (मग्गे—मार्ग) है।

मूलार्थ—ईर्या के उत्तम कारणों में से आलम्बन ज्ञान दर्शन चारित्र है काल दिवस है और उत्पथ (कुमार्ग) का त्याग मार्ग है।

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
जयणा चउव्विहा वुत्ता तं मे कित्तयओ सुण ॥६॥

अन्वयार्थ—(जयणा—यतना) यतना (दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ चेव—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः) द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव से [चउव्विहा—चतुर्विधा] चार प्रकार की [वुत्ता—उक्ता] कही गई हैं [तं—ताम्] उसे (मे—मुझसे) (कित्तयओ—कीर्तयतः) कहते हुए (सुण—शृणु) सुनो।

मूलार्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से यतना चार प्रकार की है। मैं तुम से कहता हूँ, तुम सुनो।

दव्वओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्तं च खेत्तओ।
कालओ जाव रीइज्जा, उवउत्ते य भावओ ॥७॥

अन्वयार्थ—(दव्वओ—द्रव्यतः) द्रव्य से (चक्खुसा—चक्षुषा) आँखों से (पेहे—प्रेक्षेत) देखकर चले य—और (खेत्तओ—क्षेत्रतः) क्षेत्र से (जुगमित्त—युगमात्रम्) चार हाथ प्रमाण देखे (कालओ—कालतः) काल से (जाव—यावत्) जबतक (रीइज्जा—रीयेत) चलता रहे (भावओ—भावतः) भाव से (उवउत्ते—उपयुक्त) उपयोग पूर्वक गमन करे।

मूलार्थ—द्रव्य से आँखों से देखकर चले। क्षेत्र से चार हाथ प्रमाण देखे, कालसे-जबतक चलता रहे भावसे उपयोग पूर्वक चले।

इन्दियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते रियं रिए ॥८॥

अन्वयार्थ—(इन्दियत्थे—इन्द्रियार्थान्) इन्द्रियों के विषयों को (सज्झायं—स्वाध्यायम्) (पंचहा—पंचधा) पाँच प्रकार के स्वाध्याय को (विव-

विवर्जित—विवर्ज्य) परित्याग करके (तम्मुत्ती—तन्मूर्ति) तन्मय सन्—गमन मे तत्पर होता हुआ। (तप्पुरक्कारे—तत्पुरस्कारः) उस को आगे कर (ईर्या को प्रधान रखता हुआ (उवउत्ते—उपयुक्त) उपयोग पूर्वक (रियं—ईर्याम्) ईर्या में (रिए—रीयेत) गमन करे।

मूलार्थ.—इन्द्रियों के विषयो और पाच प्रकार के स्वाध्याय पाच स्वाध्याय वाचना, पृच्छना, परावर्तना, धर्म कथा, अनुप्रेक्षा को परित्याग करके तन्मय होकर ईर्या को सामने रखता हुआ उपयोग से गमन करे।

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया॥
हासे भए मोहरिए, विकहासु तहेव य॥९॥

अन्वयार्थ—(कोहे—क्रोधे) (माणे—माने) (य—और) (मयाए—मायायाम्) य—और (लोभे—लोभे) (हासे—हासे) (भए—भये) च (मोहरिए—मौखर्ये) (तहेव—तथैव) (विकहासु—विकथासु) क्रोध मे, मान मे माया मे लोभ मे हास्य मे भय में मौखर्य मे उसी प्रकार विकथाओं में (उवउत्तया—उपयुक्तता) उपयोग रखना।

मूलार्थ—क्रोध, मान, माया, लोभ, हसी, भय, वकवादीपन, परनिन्दा, चुगली और स्त्री आदि की असत् कथा मे उपयोग मत रखना चाहिए।

एयाइं अट्ठठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए।
असावज्जं मियं काले, भास भासिज्ज पन्नवं॥१०॥

अन्वयार्थ—(संजए—संयतः) संयमी (एयाइं—एतानि) ये (अट्ठ—अष्टौ) आठ ठाणाइं (स्थानानि) स्थानो को (परिवज्जित्तु—परिवर्ज्य) छोड़ कर (पन्नवं—प्रज्ञावान्) बुद्धिमान् (काले—समयानुसार) (असावज्जं—असावद्याम्) निर्दोष (मियं—मिताम्) थोडी (भास—भाषाम्) भाषा को (भासिज्ज—भाषेत्) बोले।

मूलार्थ—बुद्धिमान् संयत पुरुष उक्त आठ स्थानों को परित्याग कर समयानुसार परिमित (थोड़े अक्षरो वाली) और निर्दोष भाषा को बोले।

गवेसणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा।
आहारोवहिसेज्जाए, एए तिन्नि विसोहए ॥११॥

अन्वयार्थ—(गवेसणाए—गवेषणायाम्) गवेषणा मे (गहणे—ग्रहणे) ग्रहणैषणा (च—और) (परिभोगेसणा—परिभोगैषणा) (जा—या) जो (य—और) (आहारोवहिसेज्जाए—आहारोपधिशय्यासु) आहार उपधि और शय्या (एए—एता) ये (तिन्नि—तिस्र) तीनो की (वि—अपि) भी (सोहए—शोधयेत्) शुद्धि करे।

मूलार्थ—गवेषणा (आहारादि की खोज करना) ग्रहणैषणा (विचार पूर्वक निर्दोष आहार लेना, परिभोगैषणा-आहारकाल मे निन्दा-स्तुति से रहित हो कर आहार करना तथा आहार, उपधि उपकरण शय्या (तृणादि युक्त) इन तीनो की शुद्धि करे।

उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं।
परिभोयम्मि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) साधु (जयं—यतमानो) यतना करता हुआ (पढमे—प्रथमायाम्) प्रथम एषणा मे (उग्गमुप्पायणं—उद्गम और उत्पादन दोष) (बीए—द्वितीयाम्) दूसरी एषणा मे (एसणं—एषणादोषान्) एषणादोषों शंका आदि दोषो को (सोहेज्जा—शोधयेत्) शुद्धि करे। (परिभोयम्मि—परिभोगैषणायाम्) परिभोगैषणा मे (चउक्कं—चतुष्कम्) चारो (भोजन, शय्या, वस्त्र और पात्र) की (विसोहेज्ज—विशोधयेत्)

मूलार्थ—संयमी यति प्रथम एषणा मे उद्गम तथा उत्पादन आदि दोषो की शुद्धि करे दूसरी एषणा मे शंकितादि दोषो को शुद्धि करे। तीसरी एषणा में-पिंड, शय्या, वस्त्र और पात्र आदि की शुद्धि करे। प्रथम मे उद्गम मे १६ दोष उत्पन्न मे १६ द्वितीय मे १० तृतीय मे पिंड वस्त्र, पात्र, शय्या, निन्दास्तुति ५ — ४७ दोष

ओहोवहोवग्गहियं, भण्डगं दुविहं मुणी।
गिण्हन्तो निक्खिवन्तो वा, पउंजेज्ज इमं विहिं ॥१३॥

अन्वयार्थ—(मुणी—मुनि) (ओहोवहो—रजोहरणादि औघोपधि) (उवग्गहियं—दंडादि) औपग्रहिकोपधि तथा (भंडगं—भाण्डकम्) भाण्डोपकरण (दुविहं—द्विविधम्) दो प्रकार का उपकरण (गिण्हंते—गृह्णन्) ग्रहण करता हुआ वा (निक्खिवन्तो—निक्षिपन्) रखता हुआ (इमं—इमम्) इस (विहिं—विधिम्) विधि को (पउंजेज्ज—प्रयुञ्जीत) प्रयोग करे।

मूलार्थ—रजोहरणादि औघोपधि और दंडादि औपग्रहिकोपधि तथा दो प्रकार का उपकरण इनका ग्रहण और रखता हुआ साधु वक्ष्यमाण विधि का अनुसरण करे। अर्थात्—इनका ग्रहण तथा रखना विधि सहित करे।

चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई।
आइए निक्खिवेज्जा वा दुहओ वि समिए सया ॥१४॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) साधु (जयं—यतः) यतनावाला होकर (चक्खुसा—चक्षुषा) आंखों से (पडिलेहित्ता—प्रतिलेख्य) प्रतिलेखन कर-देख कर (पमज्जेज्ज—प्रमार्जन) करे (सया—सदा) वा (दुहओवि—द्विधापि) दोनों प्रकार की उपधि का (आइए—आददीत) ग्रहण निक्खिवेज्जा—निक्षिपेत्) निक्षेप में (समिए—समित) समिति वाला होवे।

मूलार्थ—यतमी साधु आंखों से देखकर दोनों प्रकार की उपधि (रजोहरणादि-दण्डादि) का प्रमार्जन करे। उसके ग्रहण-रखने में सदा समिति वाला होवे।

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लियं।
आहारं उवहिं देहं, अन्नं यावि तहाविहं ॥१५॥

अन्वयार्थ—(उच्चार—उच्चारम) मल (पासवण—प्रस्रवणम्) मूत्र (खेलं—मुखका) खखार (सिंघाण—नाककामैल) (जल्लियं—जल्लकम्) शरीर का मल (आहारं—आहारम्) उवहिं—उपधिम् (देहं—देहम्) वा वा (अन्नं—अन्यम्) वा वि (अथवा—भी) (तहाविहं—तथाविधम्) वैसा फेंकने।

मूलार्थ—विष्ठा, मल, थूक, नाकमैल, शरीर मैल, आहार, उपधि, शरीर तथा और भी इसी प्रकार फेंकने योग्य पदार्थों को यतना से फेंके।

अणावायमसलोए, अणावाए चेव सलोए।
आवायरसंलोए, आवाए चेव संलोए ॥१६॥

अन्वयार्थ—(अणावाय—अनापातम्) आगमन से रहित (असलोए—असलोकम्) देखता भी नही हो (च—पाद पूर्ति मे) (एव—निश्चय) (अणावाए—अनापातम्) आगमन से रहित (सलए—संलोकम्) देखने वाला (होइ—भवति) होता है। (आवाय—आपातम्) आता है (असलोए—असलोकम्) देखता नही (आवाए—आपातम्) आता है (च—और) (एवं—पादपूर्ति) (सलोए—सलोकम्) देखता भी है।

मूलार्थ—१ आता भी नही और देखता नही। २—आता नही परन्तु देखता है। ३—आता है परन्तु देखता नही। ४—आता भी है और देखता भी है।

अणावायमसलोए, परस्सणुवघाइए।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिरकालकयम्मिय ॥१७॥

अन्वयार्थ—(अणावय—अनापाते) अनापात (असलोए—असलोके) असलोक—स्थान मे (परस्स—परस्य) दूसरे जीवों के (अणुवघाइए—अनुपघातिक) हिंसक स्थान नही (समे—सम भूमि मे) या-अथवा (अज्झुसिरे—अशुषिरे) तृण, पत्तों से ढका स्थान नही वहा। (अचिरकालकयम्मि—अचिरकालकृते) थोड़े समय के अचित हुए स्थान मे (अवि—अपि)

मूलार्थ—अनापात, जहां लोग आते नही, असलोक जहां लोग देखते नहीं पर जीवों का उपघात करने वाला न हो। सम अर्थात् विषम न हो और घास आदि से आच्छादित न हो तथा थोड़े समय का अचित्त न हुआ हो ऐसे स्थान पर मलमूत्रादि त्याज्य पदार्थों को छोड़ें।

विच्छिण्णे दूरमोगाढे, नासन्ने बिलवज्जिए।
तसपाणबीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥१८॥

अन्वयार्थ—(विच्छिण्णे—विस्तीर्णे) (दूर मोगाढे) नीचे दूर तक अचित्त (नासन्ने—ग्रामादि के समीप न हो (बिलवज्जिए—बिलवर्जित)

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लंघण पल्लंघणे, इन्दियाण य जुंजणे ॥२४॥

अन्वयार्थः—(ठाणे—स्थाने) स्थान में (निसीयणे—निषीदने) बैठने में (च—समुच्चयार्थ) (एव—पादपूर्तिमें) (तहेव—उसी प्रकार) (तुयट्टणे—त्वग्वर्तने) शयन करने में (उलघण में (य—और) (पल्लघणे—प्रलघण में) (य—तथा) (इन्द्रियाण—इन्द्रियाणाम्) इन्द्रयो को विषये में (जुञणे—जोड़ने मे ।)

मूलार्थ—स्थान मे, बैठने मे, तथा शयन करने मे लघन और प्रलघन मे एव इन्द्रियो को शब्दादि विषयो के साथ जोडने मे यतना चाहिए । विवेक रखना चाहिए ।

सरम्भ समारम्भे, आरम्भम्मि तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जई—यतिः) (सरम्भे—समारम्भे) तहेव—उसी प्रकार (य—और) (काय—शरीर को (पवत्तमाण—प्रवर्त्तमानम्) प्रवृत्त हुये (जय—यतना वाला) नियत्तेज्ज—दूर करे) ।

मूलार्थ—यतना वाला मुनि, सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ मे लगे हुये शरीरको हटा ले-दूर करे ।

एयाओ पञ्चसमिईओ, चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियतणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥२६॥

अन्वयार्थ —(एयाओ—एताः) ये (पचसमिईओ—पचसमितयः) पाच समितियाँ (चरणस्स—चरणस्य) चारित्र की (पवत्तणे—प्रवर्तने) प्रवृत्ति य—और (गुत्ती—गुप्तय') गुप्तियाँ (सव्वसो—सर्वस) सब तरह से (असुभत्थेसु—अशुभार्थेभ्यः) अशुभ अर्थो से य—और शुभ अर्थो से निवर्तने) निवृत्ति के लिए (वुत्ता—उक्ता) कही गई हैं ।

अन्वयार्थ—(जई—यति) साधु (सरम्भ—सरम्भे) मन में मारने का विचार (समारम्भे=दुःख देने के लिये मन मे सकल्प करना (आरम्भे—पर जीवों के प्राण हरण करने का अशुभ ध्यान का आवलवन करना अथवा कार्य को आरम्भ करना। (य—पुन) (पवत्ताण—प्रवर्त्तमानम्) प्रवृत्त हुये (मण—मनः) मन को (जय—यतम्) यतना वाला (नियत्तेज्ज—निवर्त्तयेत्) रोके।

मूलार्थ—सयमशील मुनि सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त हुए मन की प्रवृत्ति को रोके।

सच्चा तहेव मोसा य, सचमोसा तहेव य।
चउत्थी असच्च मोसा य, वयगुत्ती चउव्विहा॥२२॥

अन्वयार्थ—(सच्चा—सत्या) (तहेव—उसी प्रकार) मोसा—मृषा) (य—च) (सच्चमोसा—सत्यामृषा) सत्य (चउत्थी—चौथी) (असच्च-मोसा—असत्यामृषा)इस प्रकार (वयगुत्ती—वचोगुप्ति) वचनगुप्ति (चउव्विहा—चार प्रकार की है।

मूलार्थ—सत्य वाग्गुप्ति, तद्वत् सत्यामृषावाग् गुप्ति और चौथी असत्या-मृषावाग्गुप्ति ऐसे चार की वचन गुप्ति कही गई है।

संरम्भ समारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई॥२३॥

अन्वयार्थः—(जई—यतिः) (सरम्भे—समारम्भे) (तहेव—उसी प्रकार (आरम्भे) (य—च) (पवत्तमाण—प्रवर्तमानम्) प्रवृत्त हुये (वय—वचः) वचन को (तु—निश्चय करके) (जय—यतना वाला) (नियत्तेज्ज—निवर्त्तयेत्) हटा ले।

मूलार्थ—सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में लगे हुये वचन को सयमी साधु यतना वाला हटा ले (न बोले)।

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लंघण पल्लंघणे, इन्दियाण य जुंजणे ॥२४॥

अन्वयार्थः—(ठाणे—स्थाने) स्थान में (निसीयणे—निषीदने) बैठने में (च—समुच्चयार्थे) (एव—पादपूर्तिमें) (तहेव—उसी प्रकार) (तुयट्टणे—त्वग्वर्तने) शयन करने में (उल्लंघण में (य—और) (पल्लंघणे—प्रलंघन में) (य—तथा) (इन्दियाण—इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियों को विषये में (जुंजणे—जोड़ने में ।)

मूलार्थ—स्थान में, बैठने में, तथा शयन करने में लंघन और प्रलंघन में एवं इन्द्रियों को शब्दादि विषयों के साथ जोड़ने में यतना चाहिए। विवेक रखना चाहिए।

संरम्भ समारम्भे, आरम्भम्मि तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) (सरम्भे—समारम्भे) तहेव—उसी प्रकार (य—और) (काय—शरीर को (पवत्तमाण—प्रवर्तमानम्) प्रवृत्त हुये (जयं—यतना वाला) नियत्तेज्ज—दूर करे) ।

मूलार्थः—यतना वाला मुनि, संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में लगे हुये शरीरको हटा ले-दूर करे।

एयाओ पञ्चसमिईओ, चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥२६॥

अन्वयार्थ—(एयाओ—एताः) ये (पचसमिईओ—पचसमितयः) पांच समितियां (चरणस्स—चरणस्य) चारित्र की (पवत्तणे—प्रवर्तने) प्रवृत्ति य—और (गुत्ती—गुप्तयः) गुप्तियां (सव्वसो—सर्वसः) सब तरह से (असुभत्थेसु—अशुभार्थेभ्यः) अशुभ अर्थों से य—और शुभ अर्थों से निवर्तने) निवृत्ति के लिए (वुत्ता—उक्ता) कही गई हैं।

अन्वयार्थ—(जई—यति) साधु (सरम्भ—सरम्भे) मन मे मारने का विचार (समारम्भे=दु ख देने के लिये मन मे सकल्प करना (आरम्भे—पर जीवो के प्राण हरण करने का अशुभ ध्यान का आवलबन करना अथवा कार्य को आरम्भ करना। (य—पुन) (पवत्ताण—प्रवर्तमानम्) प्रवृत्त हुये (मण—मनः) मन को (जय—यतम्) यतना वाला (नियत्तेज्ज—निवर्तयेत्) रोके।

मूलार्थ—सयमशील मुनि सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ मे प्रवृत्त हुए मन की प्रवृत्ति को रोके।

सच्चा तहेव मोसा य, सचमोसा तहेव य।
चउत्थी असच्च मोसा य, वयगुत्ती चउव्विहा ॥२२॥

अन्वयार्थ—(सच्चा—सत्या) (तहेव—उसी प्रकार) मोसा—मृषा) (य—च) (सच्चमोसा—सत्यामृषा) सत्य (चउत्थी—चौथी) (असच्च-मोसा—असत्यामृषा)इस प्रकार (वयगुत्ती—वचोगुप्ति) वचनगुप्ति (चउव्विहा—चार प्रकार की है।

मूलार्थ—सत्य वागुगुप्ति, तद्वत् सत्यामृषावाग् गुप्ति और चौथी असत्या-मृषावागुगुप्ति ऐसे चार की वचन गुप्ति कही गई है।

संरम्भ समारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु, नियतेज्ज जयं जई ॥२३॥

अन्वयार्थ.—(जई—यति.) (सरम्भे—समारम्भे) (तहेव—उसी प्रकार (आरम्भे) (य—च) (पवत्तमाण—प्रवर्तमानम्) प्रवृत्त हुये (वय—वच:) वचन को (तु—निश्चय करके) (जय—यतना वाला) (नियत्तेज्ज—निवर्तयेत्) हटा ले।

मूलार्थ—सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ मे लगे हुये वचन को सयमी साधु यतना वाला हटा ले (न बोले)।

अह जन्नइज्जं पंचवीसइमं अज्झयणं
अथ यज्ञीयं पंचविंशतितममध्ययनम्

माहणकुलसंभूओ, आसि विप्पो महायसो ।
जायाइ जमजन्नम्मि, जयघोसो त्ति नामओ ॥१॥

अन्वयार्थ—(माहणकुलसंभूओ—ब्राह्मकुलसंभूत) ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ (महायसो—महायश.) महायशस्वी (जमजन्नम्मि—यमयज्ञे) यमयज्ञ में (जायाइ—यायाजी) यज्ञ में अनुरक्त (जयघोसो—जयघोष) त्ति—इति) ऐसे (नामओ—नामतः) नाम से (विप्पो—विप्र) ब्राह्मण (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुआ जयघोष नाम से प्रसिद्ध एक महायशस्वी विप्र यमयज्ञ में अनुरक्त अत. भाव रूप से यज्ञ करने वाला था ।

इन्दियग्गामनिग्गाही, मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयंते, पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥२॥

अन्वयार्थ—(इन्दियग्गाम—इन्द्रियग्राम) इन्द्रियों के समूह को (निग्गाही—निग्राही) वश में रखनेवाला (मग्गगामी—मार्गगामी) मोक्षमार्ग में गमन करनेवाला (महामुणी—महामुनिः) (गामनुगामं—ग्रामानुग्रामम्) एक गाँव से दूसरे गाँव क्रम से (रीयंते—रीयमानः) फिरता हुआ (वाराणसिं—वाराणसीम्) वाराणसी (पुरिं—पुरीम्) पुरी को (पत्तो—प्राप्त) गया ।

मूलार्थ—इन्द्रिय-समूह का निग्रह करने वाला, मोक्ष-मार्ग का अनुगामी वह महामुनि ग्रामानुग्राम विचरता हुआ वाराणसी नाम की नगरी को गया ।

मूलार्थः—ये पाचा समितिया चरित्र की प्रवृत्ति के लिए कही गई हैं। और तीनो गुप्तियां शुभ—अशुभ सब प्रकार के अर्थों मे निवृत्ति के लिए कही गई हैं।

एयाओ पवयणमाया, जे सम्म आयरे मुणी ।
सो खिप्प सव्वससारा, विप्पमुच्चइ पण्डिए ॥२७॥

अन्वयार्थ—(जे—य) जो मुनि (एयाओ—एता) ये (पवयणमाया—प्रवचनमातृ) प्रवचन-माताओ को (सम्म—सम्यक्) अच्छी तरह (आयरे—अचारेत्) आचरण करे (सो—स)(पडिए—पडित) वह मुनि (सव्वसमारा—सर्वससारात्) सर्व ससार से (खिप्प—क्षिप्रम्) शीघ्र (विप्पमुच्चइ—विप्र-मुच्यते) बिल्कुल छूट जाता है।

मूलार्थ—जो मुनि इन प्रवचन-माताओ का भलीभाँति आचरण करता है। वह पडित (ज्ञानी) मुनि ससार-चक्र से शीघ्र ही छूट जाता है, ऐसा कहता हूँ।

इति समिइयो चउवीसइम अज्झयण समत्त ॥२४॥
इति समितयश्चतुर्विंशमध्ययनं समाप्तम् ॥२४॥

— ० —

अह जन्नइज्जं पंचवीसइमं अज्झयणं
अथ यज्ञीयं पंचविंशतितममध्ययनम्

माहणकुलसंभूओ, आसि विप्पो महायसो ।
जायाइ जमजन्नम्मि, जयघोसो त्ति नामओ ॥१॥

अन्वयार्थ—(माहणकुलसंभूओ—ब्राह्मकुलसंभूत.) ब्राह्मण-कुल मे उत्पन्न हुआ (महायसो—महायशः) महायशस्वी (जमजन्नम्मि—यमयज्ञे) यमयज्ञ मे (जायाइ—यायाजी) यज्ञ मे अनुरक्त (जयघोसो—जयघोष) त्ति—इति) ऐसे (नामओ—नामतः) नाम से (विप्पो—विप्र) ब्राह्मण (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—ब्राह्मणकुल मे उत्पन्न हुआ जयघोष नाम से प्रसिद्ध एक महा यशस्वी विप्र यमयज्ञ मे अनुरक्त अतः भाव रूप से यज्ञ करने वाला था ।

इन्दियग्गामनिग्गाही, मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयंते, पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥२॥

अन्वयार्थ—(इन्दियग्गाम—इन्द्रियग्राम) इन्द्रियो के समूह को (निग्गाही—निग्राही) वशमे रखनेवाला (मग्गगामी—मार्गगामी) मोक्षमार्ग मे गमन करनेवाला (महामुणी—महामुनिः) (गामनुगाम—ग्रामानुग्रामम्) एक गाँव से दूसरे गाँव क्रम से (रीयंत—रीयमानः) फिरता हुआ (वाराणसि—वाराणसीम्) वाराणसी (पुरिं—पुरीम्) पुरी को (पत्तो—प्राप्त) गया ।

मूलार्थ—इन्द्रिय-समूह का निग्रह करने वाला, मोक्ष-मार्ग का अनुगामी वह महामुनि ग्रामानुग्राम विचरता हुआ वाराणसी नाम की नगरी को गया ।

वाराणसीए बहिया, उज्जाणम्मि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसथारे, तत्थ वासमुवागए ॥३॥

अन्वयार्थ—(वाणरसीए—वाराणस्या॰) वाराणसी के (बहिया—बहिः) बाहर (मणोरमे—मनोरमे) मनोरम (उज्जणाम्मि—उद्याने) उद्यान मे (फासुए—प्रासुके) निर्दोष (सेज्जसथारे—शय्यासस्तारे) शय्या और सस्तारक पर (तत्थ—वहां) उस वन मे (वास—निवास को) (उपागए—उपागत) प्राप्त किया ।

मूलार्थ—वे मुनि वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान मे निर्दोष शय्या और सस्तारक पर विराजमान होते हुए वहां रहने लगे ।

अह तेरोव कालेरा, पुरीए तत्थ माहरो ।
विजयघोसो त्ति नामेरा, जन्न जयइ वेयवी ॥४॥

अन्वयार्थ:—(अह—अथ) इसके बाद (तेरोव—तस्मिन्नेव) उसी (कालेण—काले) (तत्थ—तत्र) उस (पुरीए—पुर्याम्) पुरी मे (वेयवी—वेद॰ विद्) वेदों का जानकार (विजयघोस—विजयघोष:) (ति—इति) इस (नामेण—नाम्ना) नाम से प्रसिद्ध (माहणो—ब्राह्मण) (जन्न—यज्ञम्) यज्ञ को (जयइ—यजति) यजन करता था ।

मूलार्थ—उस समय उसी (वाराणसी) नगरी मे वेदो का ज्ञाता विजयघोष नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण यज्ञ करता था ।

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमरणपाररो ।
विजयघोसस्स जन्नम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ॥५॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) (तत्थ—वहां) (से—वह) (अणगारे—) साधु (मासक्खमण—मासक्षमण) मासोपवास को (पारणे—पारणा) के लिए (विजयघोसस्स—विजयघोषस्य) विजयघोष के (जन्नम्मि—यज्ञे) यज्ञ मे (भिक्खट्ठा—भिक्षार्थम्) भिक्षा के लिए (उवट्ठिए—उपस्थित) उपस्थित हुआ ।

मूलार्थ—उस समय वह अनगार मासोपवास की पारणा के लिए विजयघोष के यज्ञ में भिक्षा के लिए उपस्थित हुआ।

समुवट्ठियं तहिं सन्तं, जायगो पडिसेहिए।
न हु दाहामि ते भिक्ख, भिक्खू जायाहि अन्नओ ॥६॥

अन्वयार्थ—(समुवट्ठियं—समुपस्थितम्) उपस्थित हुये (तहिं—तत्र) उस यज्ञ में (सन्त—विद्यमान) जयघोष मुनि को (जायगो—याजक) यज्ञ-करने वाले विजयघोष ने (पडिसेहए—प्रतिषेधयति) निषेध करता है (ते—तुभ्यम्) तुझे (हु—निश्चय ही) (भिक्ख—भिक्षाम्) (न दाहामि) नहीं दूंगा (हे भिक्खू!) हे भिक्षो! (अन्नओ—अन्यत:) दूसरी जगह में (जायाहि—याचस्व) मांगो।

मूलार्थ—जब जयघोष मुनि उस यज्ञ में भिक्षा के लिए उपस्थित हुआ, तब यज्ञ करने वाले विजयघोष ने प्रतिषेध करते हुये कहा, हे भिक्षु! मैं तुझे भिक्षा नहीं दूंगा अत: अन्यत्र जाकर याचना करो।

जे य वेयविऊ विप्पा, जन्नट्ठा य जे दिया।
जोइ सगं विऊ जे य, जे य धम्माण पारगा ॥७॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जो (य—और) (वेयविऊ—वेदविद.) वेदज्ञाता (विप्पा—विप्रा) (जे—जो) (जन्नट्ठा—यज्ञार्था) यज्ञ करने वाला (दिया—द्विजा:) ब्राह्मण हैं (य—और) (जे—जो) (जोइ सगविऊ—ज्योतिदशास्त्राङ्ग विदः) ज्योतिषाग के ज्ञाता हैं (य—पुन:) (जे—जो) (धम्माण—धर्माणाम्) (धर्मों के (पारगा—पारगा) पारगामी हैं।

मूलार्थ—हे भिक्षो! जो वेदों के जानने वाले विप्र हैं तथा जो यज्ञ के करने वाले द्विज हैं और जो धर्मशास्त्रों के पारगामी हैं।

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य।
तेसिं अन्नमिणं देयं, भो भिक्खू सव्वकामियं ॥८॥

अन्वयार्थ —(जे—जो) (पर—परम्) दूसरे को (य—और) (अप्पाण—आत्मानम्) अपने को (समुद्धत्तु—समुद्धर्तुम्) उद्धार करने के लिए (समत्था—समर्था) समर्थ हैं (हे भिक्खू—हे भिक्षो !) हे भिक्षु ! (सव्वकामिय—सर्वकाम्यम्) सभी कामना को पूर्ण करने वाला (इण—इदम्) यह (अन्न—अन्न) देय—देने योग्य है ।

मूलार्थ—जो दूसरों और अपने का उद्धार कर सकते हैं, हे भिक्षु उनके लिए सभी कामों को पूरा करने वाला यह अन्न बनाया गया है ।

सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ।
नवि रुट्ठो नवि तुट्ठो, उत्तमट्ठ गवेसओ ॥६॥

अन्वयार्थ—(तत्थ—तत्र) उस यज्ञशाला में (जायगेण—याजकेन) यज्ञ करने वालले के द्वारा (सो—वह) (महामुणी—महामुनि) (एव—इस प्रकार) (पडिसिद्धो—प्रतिसिद्ध)(वि—भी)(उत्तमट्ठगवेसओ—उत्तार्थगवेषक) मोक्ष को ढूंढने वाला (न रुट्ठो, न तुट्ठो—न रुष्ट, न तुष्ट) क्रोधित हुआ न प्रसन्न हुआ ।

मूलार्थ—इस प्रकार उस यज्ञ में भिक्षा के लिए प्रतिषेध किए जाने पर भी महामुनि जयघोष न नाराज हुये न प्रसन्न हुये क्योंकि वे मुक्ति की खोज करने वाले थे ।

नन्नट्ठ पाणहेउ वा, नवि निव्वाहणाय वा ।
तेसिं निमोक्खणट्ठाए, इमं वयणमब्बवी ॥१०॥

अन्वयार्थ—(नन्नट्ठं—नान्नार्थम्) न अन्न के लिए (नविपाणहेउ—नाविपानहेतुम्) न पानी के लिए(न-निव्वाहणाय—न निर्विहणाय) नवस्त्रादि निर्वाह के लिए किन्तु (तेसि—तेषाम्) उनके (विमोक्खणाय—विमोक्षणाय) कर्मबन्धन से छुड़ाने के लिए (इमं—इदम्) इस कहे जाने वाले (वयण—वचन को (अब्बवी—बोले ।

मूलार्थ.—न तो अर्थ केलिए, न पानी के लिये तथा न किसी प्रकार के वस्त्रादि निर्वाह के लिए किन्तु उन याजकों को कर्मबन्धन से मुक्त करने के लिये जयघोष मुनि ने उनके प्रति वक्ष्यमाण वचन कहे ।

नवि जाणासि वेयमुहं, नवी जन्नाण ज मुहं ।
नक्खत्ताणमुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥११॥

अन्वयार्थ—(नवि—नापि) न तो (वेयमुहं—वेदमुखम्) वेदों के मुख को (जाणासि) जानता है (नवि—नापि) न तो (जन्नाण—यज्ञानाम्) यज्ञों का (ज—यत्) जो (मुंह—मुख) है उसको (च—और) (नक्खत्ताण—नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों का (ज—यत्) जो (मुंह—मुख है) (धम्माण—धर्माणाम्) धर्मों का (ज—यत्) जो (मुह—मुख है) ।

मूलार्थ—न तो तुम वेदों के मुख को ही जानते हो और न तो यज्ञों के मुख को । नक्षत्रों के मुख को भी तुम नहीं जानते हो और(धर्मों के मुख का भी तुम को ज्ञान नहीं है ।

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
न ते तुम वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जो (परमप्पाण—परमात्मानम्) अपने और दूसरे की आत्मा को (समुद्धत्तु—समुद्धर्तुंम्) उद्धार करने के लिये (समत्था—समर्थाः) समर्थ हैं । (ते—तान्) उनको (तुम—त्वम्) तुम (न—नहीं) (वियाणासि—जानते हो) (अह—यदि) (जाणासि—जानते हो) (तो—तदा) तो (भण—कहो) ।

मूलार्थ—जो अपने और दूसरे की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं, उनको तुम नहीं जानते हो ! यदि जानते हो तो कहो !

तस्सक्खेव पमोक्खं च, अचयन्तो तहिं दिओ ।
सपरिसो पंजली होउं, पुच्छई तं महामुणि ॥१३॥

अन्वयार्थ—(तहि—तत्र) वहाँ (दिओ—द्विजः) ब्राह्मण (विजयघोष) (तस्स—तस्य) उस मुनि के (क्खेव पमोक्खं—आक्षेपप्रमोक्षम्) आक्षेप का उत्तर देने के लिए (अचयन्तो—अशक्नुवन्) असमर्थ होता हुआ (सपरिसो—सपरिषत्) मण्डली के सहित (पंजली—प्राञ्जलिः) (तं—उस) (महामुणि—महामुनिसे) (पुच्छइ—पृच्छति) पूछता है ।

मूलार्थ—उस मुनि के आक्षेपों का उत्तर देने में असमर्थ हुआ वह ब्राह्मण विजयघोष अपनी मंडली के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि (जयघोष) से पूछने लगा ।

> वेयाण च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं ।
> नक्खत्ताण मुह बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥१४॥

अन्वयार्थ—(वेयाण—वेदानाम्) वेदों के (मुह—मुख) मुख को (बूहि—ब्रूहि) बोलो। (जन्नाण—यज्ञानाम्) यज्ञों का (जं—यत्) जो (मुह—मुख है) वह (बूहि—ब्रूहि) बोलो। (नक्खत्ताण—नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों का (मुह—मुख को) (बूहि—बोलो) (वा—अथवा) (धम्माण—धर्माणाम्) धर्मों का (मुह—मुख को) (बूहि—बोलो) ।

मूलार्थ—वेदों के मुख को जानते हो तो बताओ। यज्ञों के मुख को, नक्षत्रों के मुख को तथा धर्मों के मुख को बताओ।

> जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
> एयं मे ससयं सव्वं, साहू कहसु पुच्छिओ ॥१५॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जो (परमप्पाण—परमात्मानम्) (एव—ही) (य—और) अपने और दूसरे को (समुद्धत्तु—समुद्धर्तुम्) उद्धार करने के लिए (समत्था—समर्थाः) समर्थ हैं (एयं—एनम्) इस (सव्व—सर्वम्) सब (मे—मम) मेरे (ससय—संशय को) (साहू !—हे साधो !) मेरा (पुच्छिओ—पृष्ट) मैंने पूछा उसको (कहसु—कथय) कहो ।

मूलार्थ—जो अपनी तथा दूसरों की आत्मा को संसार-सागर से पार करने में समर्थ हैं। उन्हें भी कहो। मेरे ये सब संशय हैं। मेरे पूछने पर आप इस विषय में उत्तर कहें।

> अग्गिहुत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसामुहं ।
> नक्खत्ताण मुहं चन्दो, धम्माण कासवो मुहं ॥१६॥

अन्वयार्थ (अग्गिहुत्तमुहा—अग्निहोत्रमुखा) (वेया—वेदा) अग्निहोत्र वेदों का मुख है (जन्नट्ठी—यज्ञार्थी) यज्ञ का अर्थी (वेयसा—वेदसाम्) यज्ञ

(वेयसा—वेदसाम्) यज्ञ का (मुहं—मुख है) (नक्खत्ताणं—नक्षत्राणां का) नक्षत्रों का (मुहं—मुखम्) (चंदो—चन्द्रः) चन्द्र है (धम्माणं—धर्माणाम्) धर्मों का (मुहं—मुखम्) (कासवो—काश्यप (ऋषभदेव)) है।

मूलार्थ—अग्निहोत्र वेदों का मुख है। यज्ञ के द्वारा कर्मक्षय करना यज्ञ का मुख है। चन्द्रमा नक्षत्रों का मुख है और धर्मों का मुख भगवान् ऋषभ देव हैं।

जहा चन्द गहाईया, चिट्ठन्ति पञ्जलीउडा।
वन्दमाणा नमसन्ता, उत्तम मणहारिणो ॥१७॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (मणहारिणो—मनोहारिणः) मन को हरण करने वाले (गहाईया—ग्रहादिकाः) नक्षत्रादि तारागण (पंजलउडा—प्राञ्जलिपुटाः) हाथ जोड़ कर (उत्तमं—प्रधानम्) प्रधान (चंदं—चन्द्रम्) चन्द्र को (वन्दमाणा—वन्दमानाः) वन्दन करते हुए (नमसन्ता—नमस्यन्तः) नमस्कार करते हुए (चिट्ठंति—तिष्ठन्ति) स्थित हैं। उसी प्रकार इन्द्रादि देव भगवान् काश्यप [ऋषभ देव] की सेवा करते हैं।

मूलार्थ—जैसे सर्वप्रधान चन्द्रमा को मनोहर नक्षत्रादि तारागण हाथ जोड़ कर वंदना-नमस्कार करते हुए स्थित हैं। उसी तरह इन्द्रादिदेव भगवान् ऋषभ की सेवा करते हैं।

अजाणगा जन्नवाई, विज्जामाहणसपया।
मूढा सज्झायतवसा, भासछन्ना इवग्गिणो ॥१८॥

अन्वयार्थः—[जन्नवाई—यज्ञवादिनः] यज्ञके कथन करने वाले [अजाणगा—अजनाना] तत्व से अनभिज्ञ[विज्जामाहणसपया—विद्याब्राह्मणसपदाम्] विद्या और ब्राह्मण की सपदासे अनभिज्ञ [सज्झायतवसा—स्वाध्यायतपसा] स्वाध्याय और तप से भी [भासछन्ना—भस्माछन्ना.] भस्म से ढकी हुई[अग्गिणो—] अग्नियों की तरह [मूढा—अनभिज्ञ हो।

— की

मूलार्थ—उस मुनि के आक्षेपों का उत्तर देने मे असमर्थ हुआ वह ब्राह्मण विजयघोष अपनी मडली के साथ हाथ जोडकर उस महामुनि (जयघोष) से पूछने लगा ।

वेयाण च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण ज मुह ।
नक्खत्ताण मुह बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥१४॥

अन्वयार्थ—(वेयाण—वेदानाम्) वेदों के (मुह—मुख) मुखको (बूहि—ब्रूहि) बोलो। (जन्नाण—यज्ञानाम्) यज्ञों का (ज—यत्) जो (मुह—मुख है) वह (बूहि—ब्रूहि) बोलो। (नक्खत्ताण—नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों का (मुह—मुखको) (बूहि—बोलो) (वा—अथवा) (धम्माण—धर्माणाम्) धर्मों का (मुह—मुख को) (बूहि—बोलो) ।

मूलार्थ—वेदों के मुख को जानते हो तो बताओ। यज्ञों के मुख को, नक्षत्रों के मुख को तथा धर्मों के मुख को बताओ ।

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
एय मे ससयं सव्वं, साहू कहसु पुच्छिओ ॥१५॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जो (परमप्पाण—परमात्मानम्) (एव—ही) (य—और) अपने और दूसरे को (समुद्धत्तु—समुद्धर्तुम्) उद्धार करने के लिए (समत्था—समर्था) समर्थ हैं (एय—एतम्) इस (सव्व—सर्वम्) सब (मे—मम) मेरे (संसय—संशय को) (साहू !—हे साधो !) मया (पुच्छिओ—पृष्ट.) मैंने पूछा उसको (कहसु—कथय) कहो ।

मूलार्थ—जो अपनी तथा दूसरो की आत्मा को ससार-सागर से पार करने मे समर्थ है। उसे भी कहो। मेरे ये सब सशय हैं। मेरे पूछने पर आप उस विषय मे अवश्य कहे।

अग्गिहुत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसामुहं ।
नक्खत्ताण मुहं चन्दो, धम्माणं कासवो मुह ॥१६॥

अन्वयार्थ—(अग्गिहुत्तमुहा—अग्निहोत्रमुखाः) (वेया—वेदा) अग्निहोत्र वेदों का मुख है(जन्नट्ठी—यज्ञार्थी) यज्ञ का अर्थी (वेयसा—वेदसाम्) यज्ञ

से कर्मक्षय जो करता वही यज्ञ का (मुह—मुख है) (नक्खत्ताणं—नक्षत्रों का) (मुह—मुख) (चन्दो—चन्द्रः) चन्द्र है (धम्माण—धर्माणाम्) धर्मों का (मुहं—मुखं) (कासवो—काश्यपः (ऋषभदेव) हैं।

मूलार्थ—अग्निहोत्र वेदों का मुख है। यज्ञ के द्वारा कर्मों का क्षय करना यज्ञ का मुख है। चन्द्रमा नक्षत्रों का मुख है और धर्मों का मुख भगवान् ऋषभ देव हैं।

जहा चन्दं गहाईया, चिट्ठंति पजलीउडा।
वन्दमाणा नमसन्ता, उत्तमं मणहारिणो ॥१७॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (मणहारिणो—मनोहारिण) मन को हरण करने वाले (गहाईया—ग्रहादिका) नक्षत्रादि तारागण (पजलउडा—प्राञ्जलिपुरा) हाथ जोड कर (उत्तम—प्रधानम्) प्रधान (चन्द—चन्द्रम्) चन्द्र को (वन्दमाणा—वन्दमाना) वन्दन करते हुये (नमसन्ता—नमस्यन्तम्) नमस्कार करते हुए (चिट्ठति—तिष्ठन्ति) स्थित हैं। उसी प्रकार इन्द्रादि देव भगवान् काश्यप [ऋषभ देव] की सेवा करते हैं।

मूलार्थ—जैसे सर्वप्रधान चन्द्रमा को मनोहर नक्षत्रादि तारागण हाथ जोड कर वंदना-नमस्कार करते हुए स्थित है। उसी तरह इन्द्रादिदेव भगवान् ऋषभ की सेवा करते हैं।

अजाणगा जन्नवाई, विज्जामाहणसपया।
मूढा सज्झायतवसा, भासछन्ना इवग्गिणो ॥१८॥

अन्वयार्थः—[जन्नवाई—यज्ञवादिन] यज्ञके कथन करने वाले [अजाणगा—अजनाना] तत्त्व से अनभिज्ञ [विज्जामाहणसपया—विद्याब्राह्मणसपदाम्] विद्या और ब्राह्मण की सपदामें अनभिज्ञ [सज्झायतवसा—स्वाध्यायतपसा.] स्वाध्याय और तप से भी [भासछन्ना—भस्माछन्ना] भस्म से ढकी हुई [अग्गिणो—अग्नय] अग्नियों की तरह [मूढा—अनभिज्ञ हो।

मूलार्थ—हे यज्ञवादी ब्राह्मणो! तुम ब्राह्मण की विद्या और सपदा से अनभिज्ञ हो। तथा स्वाध्याय और तप के विषय में भी मूढ हो। अतः तुम

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) अग्नि द्वारा (निद्धन्तमलपावगं—निर्ध्मातमलपावकम्) शुद्ध किया गया (जायरूवं—जातरूपम्) सुवर्ण (मट्ठं—मृष्टम्) निर्मल होता है उसी तरह (रागदोसभयाईयं—रागद्वेषभयातीतम्) राग, द्वेष और भय से रहित जो है (तं—उसे) (वयं—हम) (माहणं—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम—ब्रूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जैसे अग्नि द्वारा शुद्ध किया हुआ सुवर्ण तेजस्वी और निर्मल हो जाता है उसी प्रकार राग, द्वेष और भय से रहित जो है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

तवस्सियं किसं दंतं, अवचियमंससोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तवस्सियं—तपस्विनम्) तपस्वी (किसं—कृशम्) दुर्बल (दन्तं—दान्तम्) इन्द्रियों को दमन करने वाला (अवचियमंससोणियं—अपचितमांसशोणितम्) जिसका मांस और रुधिर कम हो गया है (सुव्वयं—सुव्रतम्) व्रतशील (पत्तनिव्वाणं—प्राप्तनिर्वाणम्) जिसने परमशान्ति को प्राप्त किया है (तं—उसको) (वयं—हम) (माहणं—ब्राह्‌मण) (बूम—ब्रूमः) कहते हैं।

मूलार्थ—जो तपस्वी, दुर्बल, संयमी, जिसका मांस रुधिर कम हो गया है और परम शान्ति को जो प्राप्त हुआ है उसे हम ब्राह्‌मण कहते हैं।

तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेण तं वयं बूम माहणं ॥२३॥

अन्वयार्थ—जो (तसपाणे—त्रसप्राणिनः) त्रस प्राणियों को और (संगहेण—संग्रहेण) संक्षेप या विस्तार से (थावरे—स्थावरान्) (वियाणेत्ता—विज्ञाय) अच्छी तरह जानकर (तिविहेण—त्रिविधेन) मन, वचन, काया तीन प्रकार से (न हिंसइ—न हिनस्ति) नहीं हिंसा करता है। (तं—उसको) (वयं—हम) (माहणं—ब्राह्‌मणम्) ब्राह्‌मण (बूम—ब्रूमः) कहते हैं।

मूलार्थ—जो ब्राह्‌मण त्रस और स्थावर प्राणियों को कम या अधिक रूप से भलीभांति जानकर मन, वचन, काया तीनों योगों से हिंसा नहीं करता है उसे हम ब्राह्‌मण कहते हैं।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो, त वय बूम माहण ॥२४॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) (कोहा—क्रोधात्) क्रोध से वा (हासा—हास्यात्) हसी से (लोहा—लोभात्) लोभ से वा (भया—भयात्) भय से (जो) (मुस—मृषाम्) झूठ को (न वयइ—न वदति) नहीं बोलता है (त—वय) उसको हम (माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जो क्रोध, हसी, लोभ अथवा भय से झूठ नहीं बोलता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

चित्तमन्तमचित्तं वा, अप्प वा जइ वा बहुं।
नगिण्हाइ अदत्त जे, तं वयं बूम माहण ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) जो (चित्तमन्त—चित्तवन्तम्) चेतना वाले (अचित्त—चेतना रहित) (अप्प—अल्पम्) थोड़ा वा (बहुं—बहुम्) बहुत को (अदत्त—बिना दिये हुये को) (न गिण्हाइ—न गृह्णाति) नहीं लेता है। त—उसे (वय—हम) (माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम—ब्रूमः) कहते हैं।

मूलार्थ—यदि जो सचित्त वा अचित्त थोड़ी वा बहुत वस्तु बिना दी हुई को नहीं लेता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

दिव्वमाणुस्स ते रिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा कायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥२६॥

अन्वयार्थ—जो (दिव्वमाणुस्सतेरिच्छ—दिव्यमानुष्यतैरश्चम्) देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सम्बन्धी (मेहुण—मैथुनम्) मैथुन को (मणसा कायवक्केण—मनसाकायवाचा) मन, वचन, शरीर से (न सेवइ—न सेवते) सेवन नहीं करता है। (त—उसे) (वय—हम) (माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम—ब्रूमः) कहते हैं।

मूलार्थ—जो देव, मनुष्यतिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन को मन, वचन, शरीर से सेवन नहीं करता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२७॥

अन्वयार्थः—(जहा—जैसे) (पोमं—पद्मम्) कमल (जले—जल में) (जायं—जातम्) उत्पन्न हुआ और (वारिणा—जल से) (नोवलिप्पइ—नोपलिप्यते) उपलिप्त नहीं होता है। (एवं—उसी प्रकार) जो (कामेहिं—कामैः) कामभोगों (अलित्तं—अलिप्तम्) नहीं लिप्त रहता है [तं—उसे] [वयं—हम] [माहणं—ब्राह्मणम्] (बूम—ब्रूमः) कहते हैं।

मूलार्थ—जैसे जल में पैदा हुआ कमल जल में मिला नहीं रहता है उसी प्रकार जो कामवासनाओं में उत्पन्न हुआ उनमें लिप्त नहीं रहता हम उसको ब्राह्मण कहते हैं।

अलोलुयं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२८॥

अन्वयार्थ—(अलोलुयं—अलोलुपम्) लोलुपता से रहित (मुहाजीविं—मुधाजीविनम्) निर्दोष) भिक्षा-वृत्ति से जीवन चलाने वाला (अणगारं—गृह मठादि से रहित) (अकिंचणं—द्रव्यादि रहित) (गिहत्थेसु—गृहस्थेषु) गृहस्थों में (असंसत्तं—असंसक्तम्) आसक्ति रहित हो (तं—उसको) (वयं—हम) (माहणं—ब्राह्मण) (बूम—कहते हैं।)

मूलार्थ—जो अज्ञात वृत्ति वाला है, लोलुपता से रहित, अनगार और अकिंचन वृत्ति वाला गृहस्थों में आसक्ति न रखने वाला है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जहित्ता पुव्वसंजोगं, नाइसंगे य बन्धवे ।
जो न सज्जइ भोगेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२९॥

अन्वयार्थ—जो (पुव्वसंजोग—पूर्वसंयोगम्) पहले के सम्बन्ध (नाइसंगे—ज्ञातिसंगान्) ज्ञातियों का संग (य—और) (बन्धवे—बान्धवान्) भाई बन्धुओं को (जहित्ता—हित्वा) छोड़कर (भोगेसु—भोगेषु) भोगों में

(न सज्जइ—न सजति) आसक्त नहीं होता (तं वयं बूम माहूण—उसको हम ब्राह्मण कहते हैं।

मूलार्थ—जो पूर्वसयोग तथा जाति-बन्धुओ के सम्बन्ध को छोडकर भोगों (सासारिक सुखो) में आसक्त नही रहता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

पसुबन्धा सव्ववेया, जट्ठं पावकम्मुणा ।
न तायन्ति दुस्सील, कम्माणि बलवन्ति हि ॥३०

अन्वयार्थ—(सव्वेया—सर्ववेदा) सभी वेद (पसुबन्धा—पशुबन्धा) पशु के बध-बन्धन के लिए (च—और) (पावकम्मुणा—पापकर्मणा) पाप कर्मका (जट्ठ—इष्टम्) यज्ञ हेतु है। वेद या वेदपाठी (त दुस्सील—दुःशीलम्) उस दुराचारी यज्ञकर्त्ता को (न तायति—न त्रायन्ते) रक्षा नही करते (हि—यत) क्योकि (कम्मणि—कर्माणि) कर्म (बलवन्ति—बलवान् होते हैं)।

मूलार्थ—सब वेद पशुओं के बध-बन्धन के समर्थक हैं और यज्ञ पाप कर्म का कारण है, दुराचारी की रक्षा वे नही करते बल्कि दुर्गति में पहुँचाते हैं क्योकि कर्म ही बलवान् है। जैसा कर्म वैसा फल।

न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणे।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥३१॥

अन्वयार्थः—(मुणिएण—मुण्डितेन) शिर मुड़ाने से (समणे—श्रमणः) साधू (न—नही) (रण्णवासेण—अरण्यवासेन) वन वास करने से (मुणी—मुनि) (नही) तथा (कुसचीरेण—कुशचीरेण) कुशवल्कल मात्र धारण से (तावसो—तापसः) तपस्वी (न—नही) होता है।

. मूलार्थ—शिर मुड़ा देने मात्र से कोई श्रमण नही होता, ओंकार मात्र से ब्राह्मण, वन मे निवास मात्र से मुनि तथा कुशवल्कल मात्र धारण करने से कोई तपस्वी नही है। ये सब बाह्य चिन्ह सिर्फ पहचान के लिये हैं। कार्य सिद्धि का सम्बन्ध तो अन्तरग साधनों से ही है।

समयाए समणो होइ बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण य मुणी होइ तवेण होइ तावसो ॥ ३२॥

अन्वयार्थ—(समयाए—समतया) समभाव से (समणो—श्रमण) श्रमण (होइ—भवति) होता है । (बम्भचेरेण—ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से (बम्भणो—ब्राह्मणः) ब्राह्मण होता है (य—च) और (नाणेण—ज्ञानेन) ज्ञान से (मुणी—मुनिः) मुनि (होइ—भवति) होता है। (तवेण—तपसा) तप से (तावसो—तपसाः) तपस्वी (होइ—भवति) होता है।

मूलार्थ—समभाव से श्रमण ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है ।

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वईसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३॥

अन्वयार्थ—(कम्मुणा—कर्मणा) कर्म से (बम्भणो—ब्राह्मण) (होइ—भवति) होता है। (कम्मुणा—कमणा) कम से (खत्तिओ—क्षत्रियः) क्षत्रिय (होइ—भवति) होता है। (वईसो—वैश्य) (कम्मुणा —कर्मणा) कर्म से (होइ—भवति)होता है। (सुद्दो—शूद्रः) (कम्मुणा—कर्मणा) कर्म से ही। (हवइ भवति) होता है।

मूलार्थ—(कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है, और कर्म से ही शुद्र होता है।

एए पाउकरे बुद्धे जेहि होइ सिणायओ ।
सव्व कम्मविणिम्मुक्कं तं वयं बूम माहणं ३४॥

अन्वयार्थ— [एए—एतान्] अनन्तरोक्त धर्मों को जो (बुद्धे—बुद्ध) बुद्ध ने—सर्वज्ञ ने (पाउकरे प्रादुरकार्षीत) प्रकट किया। (जेहिं—यैः) जिनसे (सिणायओ—स्नातक) (होइ—भवति) होता है। (सव्व—सर्व) सब (कम्मविणिम्मुक्क—कर्मविनिर्मुक्त) कर्मो से विनिर्मुक्त हो जाता है (तं—तं) उसको (वयं—वयं) हम (माहणं—ब्राह्मणं) ब्राह्मण (बूम—ब्रूमः) कहते है।

मूलार्थ—इस धर्म को बुद्ध ने सर्वज्ञ ने प्रकट किया, जिससे कि यह जीव स्नातक हो जाता है। और कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है, उसी को हम ब्राह्मण कहते है।

एवं गुण समाउत्ता, जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समत्था समुद्धत्तु, परमप्पाणमेव य ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ :— (एव- एव) पूर्वोक्त (गुणसमाउत्ता—गुणसमायुक्ताः) गुणों से समायुक्त (जे—ये) जो (दिउत्तमा — द्विजोत्तमाः) द्विजोत्तम (भवन्ति—भवन्ति) होते हैं (ते—ते) (समुद्धत्तु — समुद्धर्तुं) उद्धार करने को (समत्था—समर्थाः) समर्थ है। (परम्—परम्) पर के (य—च) और (अप्पाणं—आत्मानं) अपने आत्मा का (एव—एव) एव अवधारणार्थक है।

मूलार्थ— उक्त प्रकार के गुणों से युक्त जो द्विजेन्द्र है। वे ही स्वात्मा को और पर को संसार समुद्र से पार करने को समर्थ हैं।

एवं तु संसए छिन्ने, विजयघोसे य बम्भणे ।
समुदाय तओ तं तु, जय घोसं महामुणिं ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ :— (एव—एव) इस प्रकार (संसए — संशये) संशय के (छिन्ने—छिन्ने) छेदन हो जाने पर (विजयघोसे—विजयघोष) विजयघोष (बम्भणे—ब्राह्मण) ब्राह्मण (य—च) फिर (समुदाय —समादाय) सा- निश्चय कर (तओ—तत) तदनन्तर (तं—तं) उसको (जयघोस—जयघो- षम्) (महामुणि—महामुनिम्) महामुनि को पहिचान लिया। (तु—तु) वाक्यालङ्कार में है।

मूलार्थ — इस प्रकार संशय के छेदन हो जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने विचार करके जयघोष मुनि को पहिचान लिया कि यह मेरा भ्राता है।

तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली ।
माहणत्तं जहाभूयं सुट्ठु, मे उवदंसियं ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ :— (तुट्ठे—तुष्टः) तुष्ट हुआ (विजयघोसे—विजयघोषः) विजयघोष (इणम्—इदम्) यह वक्ष्यमाण वचन (कयञ्जली—कृताञ्जलि) हाथ जोड़कर (उदाहु—उदाह) कहने लगा। (माहणत्त—ब्राह्मणत्वं) ब्राह्मणत्व (जहाभूय—यथाभूत) यथाभूत यथार्थ (सुट्ठु—सुष्ठु) भली-भाँति (मे—मे) मुझे (उवदंसियं—उपदर्शितम्) उपदर्शित किया।

मूलार्थ —प्रसन्न हुआ विजयघोष हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा कि हे भगवन्! आपने ब्राह्मणत्व के यथावत् स्वरूप को मेरे प्रति बहुत ही अच्छी तरह प्रदर्शित किया है।

तुब्भे जइया जन्नाणं तुब्भे वेय विऊ विऊ।
जोईसंगविऊ तुब्भे तुब्भे धम्माण पारगा ॥३८॥

अन्वयार्थ—(तुब्भे-यूय) आप (जन्नाण-यज्ञाना) यज्ञों के (जइया-यष्टारः) यजन करने वाले हैं। (तुब्भे-यूय) आप (वेयविऊ-वेदविदः) वेदों के वेत्ता हैं, (विऊ-विदः) विद्वान हैं। (तुब्भे-यूय) आप (जोइसंग-विऊ-ज्योतिषाङ्ग विदः) ज्योतिषाङ्ग के पंडित हैं। (तुब्भे-यूय) आप (धम्माण -धर्माणां) धर्मों के (पारगा - पारगा) पारगामी हैं।

मूलार्थ— हे भगवन् आप यज्ञों के करने वाले हैं, आप वेदों के ज्ञाता वेद विद्या के पंडित हैं। आप ज्योतिषाङ्ग के वेत्ता और धर्मों के पारगामी हैं।

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं परमप्पाणमेव य
समणुग्गहं करेहऽम्हं भिक्खेणं भिक्खु उत्तमा ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थ :— [तुब्भे-यूय] आप [समत्था - समर्था . समर्थ हैं [उद्धत्तुं-समुद्धर्तुं] उद्धार करने में (परम्-परम्) पर का (य-च) और (अप्पाणम्-आत्मानम्) अपने आत्मा का (एव-एव) पादपूर्ति में है. [तम्-तत्] इसलिए [भिक्खेण - भैक्षेण] भिक्षा से [अम्ह - अस्माकं] हमारे ऊपर [समणुग्गहं-समनुग्रहं] अनुग्रह [भिक्खु उत्तमा - भिक्षूत्तमाः] हे भिक्षुओं में उत्तम [करेह-कुरुत] करो।

मूलार्थ :— हे परमोत्तम भिक्षु आप अपने और पर के आत्मा का उद्धार करने

प्रधान धर्म को श्रवण करके दीक्षित हो गया।

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
जयघोसविजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४५॥
त्ति बेमि

अन्वयार्थ :— [खवित्ता—क्षपयित्वा] क्षयकर के [पुव्वकम्माइ—पूर्वकर्माणि] पूर्व कर्मों को [संजमेण—संयमेन] संयम से [य—च] और [तवेण—तपसा] तप से [जयघोस विजयघोसा—जयघोषविजयघोषौ] जयघोष और विजयघोष [अणुत्तर—अनुत्तरां] सर्वप्रधान [सिद्धि—सिद्धिं] सिद्धि को [पत्ता—प्राप्तौ] प्राप्त हुए [त्ति-बेमि—इति ब्रवीमि] इस प्रकार मैं कहता हूँ।

मूलार्थ :— संयम और तप के द्वारा पूर्व कर्मों को क्षय करके जयघोष और विजयघोष दोनों सर्वप्रधान सिद्धगति को प्राप्त हो गये।

इति जन्नइज्जं पञ्चवीसइमं अज्झयणं समत्तं ॥२५॥
इति यज्ञीयं पञ्चविंशतितममध्ययनं
समाप्तम् ॥२५॥

यह यज्ञीय नामक पच्चीसवाँ अध्ययन समाप्त हुआ।

अह मोक्खमग्गगई अट्ठावीसइमं अज्झयणं

अथ मोक्षमार्गगतिरष्टाविंशतितममध्ययनम्

मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं ।
चउकारण संजुत्तं, नाणदंसण लक्खणं ॥ १ ॥

अन्वयार्थ — (मोक्खमग्गगइ—मोक्षमार्गगति) मोक्षमार्ग की गति को) (तच्च—तथ्या) यथार्थ (जिणभासिय—जिनभाषिताम्) जिनभाषित और चउकारण संजुत्त) (चउकारण सजुत्तं—चतु. कारणसयुक्ता) चार कारण से सयुक्त (नाणदसणलक्खण—ज्ञान दर्शन—जिसका लक्षण है.) (सुणेह—शृणुत सुनो, ।

मूलार्थ—चार कारणो से युक्त, ज्ञान और दर्शन जिसके लक्षण हैं। ऐसी जिन भाषित मोक्ष की यथार्थ गति को तुम मुझसे सुनो ।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गु त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥२॥

अन्वयार्थ—(नाण—ज्ञान) ज्ञान (च—च) और (दसण—दर्शन) दर्शन (च—च) समुच्चय अर्थ मे है, (एव—एव) निश्चयार्थक है, (चरित्त—चरित्र) चरित्र (तहा—तथा) उसी प्रकार [तवो—तप] तप [च—च] पुन. [एस—एष] यह [मग्गु त्ति—मार्ग इति] मार्ग—इस प्रकार (पन्नतो—प्रज्ञप्त) प्रतिपादन किया है (वरदंसिहि—वरदर्शिभि.) प्रधानदर्शी (जिणेहिं—जिनै.] जिनेन्द्र देवो ने ।

मूलार्थ—प्रधानदर्शी जिनेन्द्रदेवो ने ज्ञान दर्शन चरित्र और तप यह मोक्ष का मार्ग प्रतिपादन किया है ।

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।
एवं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सोग्गइं ॥३॥

अन्वयार्थ —[नाण —ज्ञान] ज्ञान [दंसण —दर्शन] दर्शन [च] और [चरित्त —चारित्र] चारित्र [तहा तथा] उसी प्रकार [तवो —तप] तप [एव—एव] इस [मग्गमणुप्पत्ता—मार्गमनुप्राप्ता] मार्ग को आश्रित हुए [जीवा—जीवा] जीव [सोग्गइ—सुगति] सुगति को [गच्छन्ति —गच्छन्ति] चले जाते हैं [एव-एव] निर्धारण मे [च-च] समुच्चय अर्थ मे है।

मूलार्थ—इस ज्ञान दर्शन चारित्र और तप के आश्रित हुए जीव सुगति को प्राप्त हो जाते हैं।

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं ।
ओहिनाण तु तइयं मणनाणं च केवलं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ — (तत्थ—तत्र) उनमे (नाण—ज्ञान) ज्ञान (पंचविह—पचविध) पाँच प्रकार का है, सुय—श्रुत) श्रुतज्ञान (आभिनिबोहिय—आभिनिबोधिकम्) आभिनिबोधिकज्ञान (तु—तु) और (तइय—तृतीय) तीसरा (ओहिनाण—अवधिज्ञान) अवधिज्ञान (मणनाण—मनोज्ञान)मन पर्यवज्ञान (च—च) और केवल—केवलम्) केवल—ज्ञान ।

मूलार्थः— उनमें ज्ञान पाँच प्रकार का है यथा—श्रुतज्ञान आभिनोबोधिकज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्याय और केवलज्ञान ।

एयं पंचविहं नाणं दव्वाण य गुणाण य ।
पज्जवाणं च सव्वेसिं नाण नाणीहि दंसियं ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ —)एयं—एतत्) यह अन्तरोक्त (पंचविह—पचविध) पंचविध (नाण—ज्ञान)ज्ञान (दव्वाण—द्रव्याणा) द्रव्यो का (य—च) और (गुणाण—गुणाना) गुणो का (य—च) तथा (सव्वेसि—सर्वेषा) सर्व (पज्जवाण—पर्यायाणा) पर्यायो का (नाण—ज्ञानं) ज्ञान (नाणीहि—ज्ञानभि) ज्ञानियो ने (दंसिय—दर्शितम्) उपदेशित किया है, (य—च) समुच्चायक है।

मूलार्थ — ज्ञानी पुरुषों ने द्रव्य गुण और उनके समस्त पर्यायों के ज्ञानार्थ यह पूर्वोक्त पाँच प्रकार का ज्ञान बतलाया ।

गुणाणमासओ दव्वं एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु उभओ अस्सिया भवे ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः— (गुणाण—गुणानां) गुणों का (आसओ—आश्रय) आश्रय (दव्व—द्रव्यं) द्रव्य है, (एगदव्वास्सियागुणा—एकद्रव्याश्रितागुणा) एक द्रव्य के आश्रितगुण है, (उभओअस्सिया—उभयोराश्रिता) दोनों के जो आश्रित (भवे—भवन्ति) होता यह [पज्जवाण—पर्यायाणा] पर्यायों का [लक्खणं—लक्षण] लक्षण है ।

मूलार्थ— गुणों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं तथा एक द्रव्य के आश्रित जो (वर्ण—रस—गन्धादि तथा ज्ञानादि धर्म) हो वे गुण है और द्रव्य तथा गुण इन दोनों के आश्रित होकर जो रहे, उन्हें पर्याय कहते हैं ।

धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जन्तवो
एस लोगो त्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहि ॥७॥

अन्वयार्थ—[धम्मो—धर्म] धर्म [अधम्मो—अधर्म] अधर्म [आगास—आकाश] आकाश [कालो—काल] काल [पुग्गल—जन्तवो—पुद्गलजन्तवः] पुद्गल जीव [एस—एष] यह षड्द्रव्यात्मक [लोगो त्ति—लोक इति] लोक इस प्रकार [पन्नत्तो—प्रज्ञप्त] प्रतिपादन किया है । [वरदंसिहि—वरदर्शिभि] श्रेष्ठदर्शी [जिणेहि—जिनै] जिनेन्द्रों ने ।

मूलार्थ—केवलदर्शी जिनेन्द्रों ने इस लोक को धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव इस प्रकार से षड्द्रव्य रूप प्रतिपादन किया है ।

धम्मो अधम्मो आगासं दव्वं इक्किक्कमाहियं
अणंताणि य दव्वाणि कालो पुग्गल जन्तवो ॥८॥

अन्वयार्थ— [धम्मो—धर्म] धर्म [अधम्मो—अधर्म] अधर्म [आगास—आकाश] आकाश [दव्व—द्रव्य] द्रव्य [इक्किक्क—एकैक] एक एक [आहियं—आख्यातम्] कहा गया है । [य—च] और [अणं—

करता है उसे निसर्गरुचि अर्थात् निसर्ग-रुचि-सम्यक्त्व वाला कहते हैं।

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई ।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥१९॥

अन्वयार्थ— (जो—य:) जो (परेण—परेण) पर के (व—वा) अथवा (छउमत्थेण—छद्मस्थेन) छद्मस्थ के द्वारा (जिणेण—जिनेन) जिन के द्वारा (उवइट्ठे—उपदिष्टान्) उपदिष्ट किए हुए (एए—एतान्) [illegible] (भावे—भावान्) भावों का (सद्दहई—श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है (उवएसरुइ—उपदेशरुचि) उपदेशरुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्य:) [illegible] (उ—तु) पादपूर्ति में (च) [illegible] (एव) अवधारणार्थक है।

सूत्रार्थ— जो छद्मस्थ के द्वारा अथवा जिन के द्वारा इन पूर्वोक्त उपदिष्ट भावों को सुनकर श्रद्धा करता है उसे उपदेशरुचि कहते हैं।

रागो दोसो मोहो, अन्नाण जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नाम ॥२०॥

अन्वयार्थ— (रागो—राग:) राग (दोसो—द्वेष:) द्वेष (मोहो—मोह:) मोह (अन्नाण—अज्ञान) अज्ञान (जस्स—यस्य) जिसका (अवगयं—अपगतं) दूर (होइ—भवति) हो जाता है, (आणाए—आज्ञया) आज्ञा में (रोयंतो—रोचमान:) रुचि करता है (सो—स:) (खलु) निश्चय से आणारुई—आज्ञारुचि (नाम) नाम वाला है।

सूत्रार्थ— जिस पुरुष के राग द्वेष मोह और अज्ञान दूर हो गये हैं तथा जो आज्ञा से रुचि करता है, उसको आज्ञा रुचि कहते हैं।

जो सुत्तमहिज्जन्तो सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।
अंगेण बहिरेण व सो सुत्तरुइ त्ति नायव्वो ॥२१॥

अन्वयार्थ— (जो (सुत—सूत्र) सूत्र को (अहिज्जन्तो—अधीमान) पढ़ता हुआ (सुएण-श्रुतेन) श्रुत से (ओगाहई—अवगाहते) अवगाहन करता है, (सम्मत्तं—सम्यक्त्वम्) सम्यक्त्व को (उ—तु) पादपूर्ति में (अंगेण—अङ्गेन)

करता है, उसे निसर्गरुचि अर्थात् निसर्गरुचि–सम्यक्त्व–वाला कहते हैं।

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई ।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥१६॥

अन्वयार्थ :— (जो—य.) जो (परेण—परेण) पर के (व—वा) अथवा (छउमत्थेण—छद्मस्थेन) छद्मस्थ के द्वारा (जिणेण—जिनेन) जिन के द्वारा (उवइट्ठे—उपदिष्टान्) उपदिष्ट कहे गये (एए—एतान्) इन पूर्वोक्त (भावे—भावान्) भावो का (सद्दहई=श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है, (उवएसरुइ—उपदेशरुचि) उपदेशरुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्य) चाहिये (उ—तु) पादपूर्ति मे (च) पुनः (एव) अवधारणार्थक है।

मूलार्थ :— जो छद्मस्थ के द्वारा अथवा जिन के द्वारा इन पूर्वोक्त उपदिष्ट भावो को सुनकर श्रद्धा करता है, उसे उपदेशरुचि कहते हैं।

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नाम ॥२०॥

अन्वयार्थ— (रागो—राग) राग (दोसो—द्वेष) द्वेष (मोहो—मोह) मोह (अन्नाण—अज्ञान) अज्ञान (जस्स यस्य) जिसका (अवगय—अपगत) दूर (होइ—भवति) हो जाता है, (आणाए—आज्ञया) आज्ञा से (रोयंतो—रोचमान) रुचि करता है (सो—स) (खलु) निश्चय मे आणारुई—आज्ञारुचि (नाम) नाम वाला है।

मूलार्थ— जिस पुरुष के राग द्वेष मोह और अज्ञान दूर हो गये हैं तथा जो आज्ञा से रुचि करता है, उसको आज्ञा रुचि कहते है।

जो सुत्तमहिज्जन्तो सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।
अंगेण बहिरेण व सो सुत्तरुइ त्ति नायव्वो ॥२१॥

अन्वयार्थ— (जो (सुत—सूत्र) सूत्र को (अहिज्जन्तो—अधीमान) पढ़ता हुआ (सुएण—श्रुतेन) श्रुत से (ओगाहई—अवगाहते) अवगाहन करता है, —— मत सम्यक्त्वम्) सम्यक्त्व को (उ—तु) पादपूर्ति मे (अंगेण—अङ्गेन)

करता है वह निसर्गरुचि अर्थात् निसर्ग-सम्यक्त्व वाला कहा है।

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥१९॥

अन्वयार्थ— (जो य) जो (परेण परेण) पर के (छ ...) अथवा (छउमत्थेण छद्मस्थेन) छद्मस्थ के द्वारा (जिणेण जिनेन) जिन के द्वारा (उवइट्ठे उपदिष्टान्) उपदिष्ट करके (एए एतान्) इन [चेव (भावे भावान्) भावों का (सद्दहई- श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है, (उवएसरुइ - उपदेशरुचि:) उपदेशरुचि (त्ति इति) इस प्रकार (नायव्वो ज्ञातव्य:) जानना चाहिए (उ तु) पादपूर्ति में (च) पुनः (एव) अवधारणार्थक है।

मूलार्थ— जो छद्मस्थ के द्वारा अथवा जिन के द्वारा इन पूर्वोक्त उपदिष्ट भावों को सुनकर श्रद्धा करता है वह उपदेशरुचि कहा है।

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नाम ॥२०॥

अन्वयार्थ— (रागो राग) राग (दोसो द्वेष) द्वेष(मोहो मोह) मोह (अन्नाणं —अज्ञान) अज्ञान (जस्स यस्य) जिसका (अवगयं -अपगत) दूर (होइ—भवति) हो जाता है, (आणाए -आज्ञया) आज्ञा से (रोयंतो— रोचमान) रुचि करता है (सो —स) (खलु) निश्चय से आणारुई—आज्ञारुचि (नाम) नाम वाला है।

मूलार्थ— जिस पुरुष के राग द्वेष मोह और अज्ञान दूर हो गये हैं तथा जो आज्ञा से रुचि करता है, उसको आज्ञा रुचि कहते हैं।

जो सुत्तमहिज्जन्तो सुएण ओगाहई उ सम्मत्त।
अंगेण बहिरेण व सो सुत्तरुइ त्ति नायव्वो ॥२१॥

अन्वयार्थ— (जो (सुत—सूत्र) सूत्र को (अहिज्जन्तो—अधीमान) पढ़ता हुआ (सुएण-श्रुतेन) श्रुत से (ओगाहई—अवगाहते) अवगाहन करता है, (सम्मत्त सम्यक्त्वम्) सम्यक्त्व को (उ—तु) पादपूर्ति में (अंगेण—अङ्गेन)

अन्वयार्थ - (दव्वाण—द्रव्याणा) द्रव्यों के (सव्वभावा—सर्वभावा.) सर्व भाव (सव्वपमाणेहि—सर्वप्रमाणै) सर्व प्रमाणों से (जस्स—यस्य) जिसको (उवलद्धा—उपलब्धा) उपलब्ध है (सव्वाहि—सर्वै) सर्व (नयविहीहि—नयविधिभि) नयविधियों से (वित्थाररुइ—विस्ताररुचि) विस्ताररुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये।

मूलार्थ - द्रव्यों के सब भावों को जिसने सब प्रमाणों और सर्व नयों से जान लिया है उसको विस्तार रुचि कहते हैं।

दंसणनाणचरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु
जो किरिया भावरुई सो खलु किरियारुई नाम ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ - (दसणनाण चरित्ते-दर्शन ज्ञान चारित्रे) दर्शन ज्ञान चरित्र (तवविणए-तपोविनये) तप विनय (सच्च-समिइ गुत्तीसु-सत्यसमिति-गुप्तिषु) सत्य समिति गुप्तियों मे (जो-य) (किरियाभावरुई-क्रियाभावरुचि,) क्रिया भाव रुचि है, (सो-स) (खलु) निश्चय ही (किरिया-क्रिया) क्रिया (रुई-रुचि) नाम-नाम से प्रसिद्ध है।

मूलार्थ - दर्शन-ज्ञान चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति, और गुप्तियों मे जो क्रिया भाव रुचि है, अर्थात् उक्त क्रियाओं का सम्यक् अनुष्ठान करते हुए सम्यक्त्व को प्राप्त किया है वह क्रिया रुचि-सम्यक्त्व वाला है।

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, सखेवरुइत्ति होइ नायव्वो
अविसारओ पवयणे, अणुभिग्गहिओ य सेसेसु ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ - (अणभिग्गहिय कुदिट्ठी—अनभिगृहीत कुदृष्टि) नही ग्रहण की है कुदृष्टि जिसने (सखेवरुइत्ति-सक्षेपरुचिरिति) संक्षेप रुचि इस प्रकार (होइ-भवति) होता है, (नायव्वो-ज्ञातव्य.) जानना चाहिये (अविसारओ—अविशारद) विशारद नही है (पवयणे-प्रवचने) प्रवचन मे (य-च) तथा (अणभिग्गहिओ-अनभिगृहीत) अनभिगृहीत है (सेसेसु-शेषेषु) शेष कपिलादि मतो मे।

मूलार्थ—जो जीव असत् मत या वाद मे फसा हुआ नही और वीतराग के प्रवचन मे भी नहा है किन्तु उसकी श्रद्धा शुद्ध है उसे सक्षेप रुचि कहते हैं।

जो अत्थिकायधम्मं सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च
सद्दहइ जिणाभिहियं सो धम्मरुइत्ति नायव्वो ॥२७॥

अन्वयार्थ :—(जो-य:) जो (अत्थिकायधम्मं—अस्तिकायधर्मं) अस्तिकायधर्मं (च-) और (सुयधम्म—श्रुतधर्मं) श्रुतधर्मं (खलु) निश्चयार्थक है, (चरित्तधम्म-चरित्रधर्मं) चरित्र धर्म का (जिणाभिहियं—जिनाभिहितं) जिन-कथित का (सद्दहइ—श्रद्धत्ते) श्रद्धान करता है, (सो—स) वह (धम्मरुइ—धर्मरुचि) धर्मरुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो-ज्ञातव्य) जानना चाहिये।

मूलार्थ :—जो जीव जिनेन्द्रकथित अस्तिकायधर्म (द्रव्यादिरूप) श्रुतधर्म-(शास्त्रप्रवचनरूप) और चरित्र धर्म (समितिगुप्त्यादिरूप) का यथार्थरूप में श्रद्धान करता है वह धर्म रुचि सम्यक्त्व वाला है।

परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणं वावि
वावन्न कुदंसणवज्जणा, य सम्मत्त सद्दहणा ॥२८॥

अन्वयार्थ :—(परमत्थसंथवो—परमार्थसंस्तव) परमार्थ का संस्तव [वा] अथवा [सुदिट्ठपरमत्थसेवण—सुदृष्टपरमार्थसेवन] भली प्रकार से देखा है परमार्थ जिसने उसकी सेवा करनी [वा] वैसा कृत्य करनी [अवि-अपि] अपि समुच्चय में [य—च] और [वावन्नकुदंसणवज्जणा—व्यापन्नकुदर्शनवर्जन] सन्मार्ग से पतित, कुदर्शनी का त्याग करना [सम्मत्तसद्दहणा-सम्यक्त्वश्रद्धानम्] सम्यक्त्व की श्रद्धा है।

मूलार्थ :—परमार्थ तत्त्व का बार बार गुण गान करना, जिन महापुरुषों ने परमार्थ भली भाँति देखा है उनकी सेवा शुश्रूषा करना जो सम्यक्त्व से सन्मार्ग से पतित हो गये हैं, तथा जो कुदर्शनी-असत्य दर्शन में विश्वास रखते हैं उनकी संगति न करना यह सम्यक्त्व की श्रद्धा है, अर्थात् इन उक्त गुणों से सम्यक्त्व की श्रद्धा प्रकट होती है।

नत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूणं, दंसणे उ भइयव्वं
सम्मत्त चरित्ताइं जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥२९॥

तवो य दुविहो वुत्तो बाहिरब्भंतरो तहा
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तहा ॥३४॥

अन्वयार्थ—(तवो—तपः) तप (दुविहो—द्विविधं) दो प्रकार का (वुत्तो—उक्त) कहा है। (बाहिर—बाह्यम्) बाह्य (तहा—तथा) तथा (अब्भतरो— आभ्यन्तर) आभ्यन्तर [य—च] पुन. [बाहिरो—बाह्यम्] बाह्य [छव्विहो—षड्विध] षड्विध छः प्रकार का (वुत्तो—उक्त) कहा है। [एव] इसी प्रकार (अब्भन्तरो—आभ्यन्तरं) आभ्यन्तर [तवो—तपः] तप भी षट् प्रकार का है।

मूलार्थ—बाह्य और अभ्यान्तर भेद से तप दो प्रकार का है। उसमें बाह्य के छः भेद हैं और अभ्यान्तर तप भी छः प्रकार का है।

नाणेण जाणई भावे दंसणेण य सद्दहे
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥३५ ॥

अन्वयार्थ—[नाणेण—ज्ञानेन] ज्ञान से [भावे—भावान्] भावों को [जाणई—जानाति] जानता है। [य—च] फिर [दसणेण—दर्शनेन] दर्शन से [सद्दहे—श्रद्धत्ते] श्रद्धा करता है। [चरित्तेण] चरित्र से [निगिण्हाई—निगृह्णाति] आश्रवों का निरोध करता है। [तवेण—तपसा] तपस [परिसुज्झई—परिशुध्यति] यह जीव शुद्ध होता है।

मूलार्थ—यह जीव ज्ञान के द्वारा पदार्थों को जानता है, दर्शन से उन पर श्रद्धान करता है, चरित्र से कर्माश्रवों को रोकता है, और तप से शुद्धि को प्राप्त होता है।

खवेत्ता पुव्वकम्माइं संजमेण तवेण य
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमन्ति महेसिणो ॥३६ ॥

अन्वयार्थ – [खवेत्ता—क्षपयित्वा] क्षय करके [पुव्वकम्माइं—पूर्वकर्माणि] पूर्व कर्मों को [संजमेण—संयमेन] संयम से [य—च] और (तवेण—तपसा) तप से (सव्वदुक्खपहीणट्ठा—प्रहीणसर्वदुःखार्थाः) जिसमें सब दुःख नष्ट हो जाते हैं उस सिद्ध पद के वास्ते (महेसिणो—महर्षयः) महर्षि लोग (पक्कमन्ति—प्रक्रामन्ति) पराक्रम करते हैं, (त्ति—इति) [illegible] मैं (बेमि—ब्रवीमि) मैं कहता हूं।

मूलार्थ—इस प्रकार तप और संयम के द्वारा पूर्व कर्मों का क्षय करके सर्व प्रकार के दुःखों से रहित जो सिद्ध पद उसके लिए महर्षि जन पराक्रम करते हैं।

॥ अष्टाविंशाध्ययन समाप्त ॥

अह कम्मप्पयडी तेत्तीसइमं अज्झयणं

अथकर्मप्रकृतित्रयस्त्रिंशत्तममध्ययनम्

अट्ठ कम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्वि जहाकमं
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवट्टई ॥१॥

अन्वयार्थ— (अट्ठ—अष्ट) आठ (कम्माइ—कर्माणि) कर्मों को (वोच्छामि—वक्ष्यामि) कहूँगा (आणुपुव्वि—आनुपूर्व्या) आनुपूर्वी से (जहाकम—यथाक्रमम्] क्रमपूर्वक [जेहिं—यैं] जिन कर्मों से (बद्धो—बद्धः) बधा हुआ (अय) यह (जीवो—जीव) [ससारे—ससारे] ससार मे (परिवट्टई—परिवर्तते) परिवर्तन करता है।

मूलार्थ— मैं आठ प्रकार के कर्मों को आनुपूर्वी और यथाक्रम से कहूँगा जिन कर्मों से बधा हुआ यह जीव इस ससार मे परिवर्तन करता है।

नाणस्सावरणिज्जं दसणावरणं तहा
वेयणिज्जं तहा मोहं आउकम्मं तहेव य ॥२॥
नामकम्मं च गोयं च अंतरायं तहेव य
एवमेयाइं कम्माइं अट्ठेव उ समासओ ॥३॥

अन्वयार्थ—(नाणस्सावरणिज्ज—ज्ञानस्यावरणीय) ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय कर्म [दसणावरण—दर्शनावरण] दर्शनावरणीय [तहा—तथा] तथा [वेयणिज्ज—वेदनीय] वेदनीय कर्म [मोह—मोहम्] मोहनीयकर्म [य—च] और [तहेव—तथैव] उसी प्रकार [आउकम्म—आयुकर्म] आयुकर्म [च] और [नामकर्म—नामकर्म] नामकर्म (च) तथा [गोय—गोत्र] गोत्रकर्म [य—च] पुनः (तहेव—तथैव) उसी प्रकार अंतराय—अन्तराय] अन्तरायकर्म (एव) इस प्रकार [एयाइ—एतानि] ये [अट्ठेव—अष्टैव] आठ ही [कम्माइ—कर्माणि] कर्म [समासओ—समासतः] सक्षेप से कहे हैं। [उ—तु] पादपूर्ति मे है।

ावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु नाम
आठ ही कर्म सक्षेप मे हैं।

नाणावरणं पंचविहं सुयं आभिणिबोहियं
ओहिनाणं च तइयं, मणनाणं च केवलं ॥४॥

अन्वयार्थ—(नाणावरण—ज्ञानावरण) ज्ञानावरण (पंचविह—पञ्चविध) पांच प्रकार का है, (सुय—श्रुत) श्रुत (आभिणिबोहिय—आभिनिबोधिक) आभिनिबोधिक (तइय—तृतीय) तृतीय (ओहिनाण—अवधिज्ञान) अवधिज्ञान (मणनाण—मनोज्ञान) मन पर्यवज्ञान (च) और (केवल—केवलम्) केवलज्ञान।

मूलार्थ—ज्ञानावरणीय कर्म पाँच प्रकार का है। यथा—(१) श्रुतज्ञानावरण (२) आभिनिबोधिक ज्ञानावरण (३) अवधिज्ञानावरण (४) मनःपर्यव ज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण।

निद्दा तहेव पयला, निद्दानिद्दा पयलापयला य
तत्तो य थीणगिद्धी उ पंचमा होइ नायव्वा ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(निद्दा—निद्रा) निद्रा (तहेव—तथैव) उसीप्रकार (पयला—प्रचला) प्रचला (निद्दानिद्दा—निद्रा) निद्रा (य-च) और (पयलापयला—प्रचला—प्रचला) प्रचला प्रचला (तत्तो—ततः) तदनन्तर (य—च) पुनः (थीणगिद्धी—स्त्यानगृद्धि) अत्यन्त घोरनिद्रा (पंचमा—पंचमी) पाँचवीं (होइ—भवति) होती है, (नायव्वा—ज्ञातव्या) इस प्रकार जाननी चाहिये।

मूलार्थ—निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि, यह पाँच प्रकार की निद्रा जाननी चाहिये।

चक्खुमचक्खूओहिस्स,दसणे केवले य आवरणे
एवं तु नवविगप्प नायव्व दसणावरणं ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—चक्खुमचक्खूओहिस्स—चक्षुरचक्षुरवधे) चक्षु अचक्षु अवधि के (दसणे—दर्शने) दर्शन में (य—च) और (केवले—केवले) केवल ज्ञान में (आवरणे—आवरणम्) (एव) इस प्रकार (नवविगप्प—नवविकल्प) नौ विकल्प—भेद (दसणावरण—दर्शनावरणम्) दर्शनावरण के (नायव्व—ज्ञातव्य) (जानने चाहिये (तु) पादपूर्ति में

मूलार्थ—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और

केवलदर्शनावरण, ये चार तथा पूर्वोक्त पांच निद्रा इस प्रकार नो भेद दर्शनावरणीय कर्म के जानने चाहिये।

> वेयणीयं पि य दुविहं सायमसायं च आहियं ।
> सायस्स य बहु भेया एमेव असायस्स वि ॥७॥

अन्वयार्थ—(वेयणीयंपि—वेदनीयमपि) वेदनीय कर्म भी (दुविह—द्विविध) दो प्रकार का (आहिय—आख्यातम्) कहा गया है। (सायमसाय—सातमसात) सातारूप असातारूप (च) और (सायस्स—सातस्य) साता के (उन्तु) भी (बहू—बहवः) बहुत से (भेदा—भेदा.) भेद हैं (एमेव—एवमेव) इसी प्रकार (असायस्स वि—असातस्यापि) असाता के भी बहुत भेद हैं।

मूलार्थ—वेदनीय कर्म भी दो प्रकार का है, १—सातावेदनीय और २—असातावेदनीय। सातावेदनीय के भी अनेक भेद हैं, तथा असातावेदनीय भी बहुत प्रकार का कहा गया है।

> मोहणिज्जं पि दुविहं दंसणे चरणे तहा ।
> दंसणे तिविहं वुत्तं चरणे दुविहं भवे ॥८॥

अन्वयार्थ—(मोहणिज्जपि—मोहनीयमपि) मोहनीय भी (दुविहं—द्विविध) दो प्रकार का है, दसणे (दर्शने) दर्शन में (तहा—तथा) (चरणे—चरणे) चरित्र में (दसणे—दर्शने) दर्शन में (तिविह—त्रिविध) तीन प्रकार का (वुत्त—उक्तं) कहा है (चरणे—चरणे) चरण विषयक (दुविहं—द्विविधं) दो प्रकार का (भवे—भवेत्) होता है।

मूलार्थ—मोहनीय कर्म भी दो प्रकार का कहा है, जैसे कि दर्शन में और चरित्र में अर्थात् दर्शन मोहनीय और चारित्रमोहनीय इनमें दर्शनमोहनीय के तीन भेद कहे हैं, और चारित्रमोहनीय दो प्रकार का है।

> सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तमेव य ।
> एयाओ तिन्नि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दंसणे ॥९॥

अन्वयार्थ—(सम्मत—सम्यक्त्व) सम्यक्त्व (मिच्छत्तं—मिथ्यात्व]

मिथ्यात्व (एव—एव) उसी प्रकार (सम्मामिच्छत्त—सम्यङ्मिथ्यात्व) सम्यक्त्व और मिथ्यात्व (य—च) पुनः (एयाओ—एताः) ये (तिन्नि—तिस्रः) तीनों (पयडीओ—प्रकृतयः) प्रकृतियाँ (मोहणिज्जस्स—मोहनीयस्य) मोहनीय कर्म की (दसणे—दर्शने) दर्शन में (चेव) पाद पूर्ति में है।

मूलार्थ—सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, और सम्यक्त्व मिथ्यात्व मोहनीय, ये तीनों प्रकृतियाँ मोहनीय कर्म की दर्शन विषयक होती हैं अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्म की ये तीन प्रकृतियाँ उत्तर भेद हैं।

चरित्तमोहणं कम्मं दुविहं तु वियाहियं।
कसायमोहणिज्जं च नोकसायं तहेव य ॥१०॥

अन्वयार्थ—(चरित्तमोहणं—चारित्रमोहन) चारित्रमोहनीय (कम्म—कर्म) [दुविह—द्विविध) दो प्रकार का (वियाहियं—व्याख्यातम्) कथन किया है, (कसायमोहणिज्ज—कषाय मोहनीय) कषायमोहनीय (तहेव—तथैव) उमी प्रकार (नोकमाय—नोकषायमोहनीय] (च) समुच्चयार्थक (य—तु) यावत्।

मूलार्थ—चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा है। यथा कषाय मोहनीय और नोकषायमोहनीय।

सोलसविहभेएणं कम्मं तु कसायजं।
सत्तविहं नवविहं वा कम्मं च नोकसायजं ॥११॥

अन्वयार्थ—(सोलसविहं—षोडशविधं) सोलह प्रकार के (भेएणं—भेदेन) भेद से (कम्मं—कर्म) कर्म (कसायजं—कषायजं) कषाय से उत्पन्न होने वाला होता है, (तु) फिर (कम्मं—कर्म) नोकसायजं—नोकषाय के कारण से उत्पन्न होने वाला (सत्तविहं—सप्तविधं) सात प्रकार का (वा) अथवा (नवविहं—नवविधं) नव प्रकार का होता है।

मूलार्थ—कषायमोहनीय कर्म सोलह प्रकार का है और सात अथवा नव प्रकार का नोकषाय मोहनीय कहा है।

नेरइयतिरिक्खाउं मणुस्साउं तहेव य ।
देवाउयं चउत्थं तु आउकम्मं चउव्विहं ॥१२॥

अन्वयार्थः— (नेरइयतिरिक्खाउ — नैरयिकतिर्यगायु) नैरयिकायु-नरक की आयु-तिर्यक् की आयु (य-च) और (तहेव- तथैव) उसी प्रकार (मणुस्साउ-मनुष्यायुः) मनुष्य की आयु (तु) फिर(चउत्थ-चतुर्थं) चतुर्थ (देवाउय-देवायु) देवों की आयु (आउकम्म-आयुः कर्म) आयु कर्म (चउव्विहं-चतुर्विध) चार प्रकार का है ।

मूलार्थः— आयुकर्म चार प्रकार का है, नरकायु, तिर्यगायु मनुष्यायु और देवायु ।

नामकम्मं तु दुविहं सुहमसुहं च आहियं ।
सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुहस्स वि ॥१३॥

अन्वयार्थ — नामकम्म-नामकर्म (दुविह-द्विविध) दो प्रकार का (आहियं-आख्यातम्) कहा गया है। (सुह-शुभ) शुभ (च) और (असुहं-अशुभं अशुभ (सुहस्स उ-शुभस्यतु) शुभ नाम कर्म के भी (बहूभेया-बहवो भेदा.) बहुत भेद हैं (एमेव-एवमेव) इसी प्रकार (असुहस्स वि-अशुभस्यापि) अशुभ के भी बहुत भेद है ।

मूलार्थ— नाम कर्म का दो प्रकार से वर्णन किया गया है शुभ नाम और अशुभ नाम, शुभ नाम कर्म के बहुत भेद हैं तथा अशुभ नाम कर्म के भी अनेक भेद हैं।

गोयं कम्मं दुविहं, उच्चं नीयं च आहियं ।
उच्चं अट्ठविहं होइ, एवं नीयंपि आहियं ॥१४॥

अन्वयार्थ.— (गोयकम्म-गोत्र कर्म) (दुविह-द्विविध) दो प्रकार का (आहियं-आख्यातम्) कहा है। उच्च-उच्च) उच्चगोत्र (च) और (नीय-नीच) नीच गोत्र (उच्चं-उच्च) उच्च गोत्र (अट्ठविहं-अष्टविध) आठ प्रकार का (होइ-भवति) होता है, (एवं) इसी प्रकार (नीयं पि नीचमपि) नीच गोत्र भी आठ प्रकार का (आहियं-आख्यातम्) कहा है ।

(दुण्हपि—द्वयोरपि) दोनो ही कर्मों की (य—च) और (तहेव—तथैव) उसी प्रकार (वेयणिज्जे—वेदनीये) वेदनीय कर्म की (य—च) और अतराए—अन्तराये) अन्तराय (कम्मम्मि—कर्मणि) कर्म की (एसा—एषा) यह (ठिई—स्थिति) स्थिति (वियाहिया—व्याख्याता) वर्णन की गई है।

मूलार्थ—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय तथा वेदनीय और अन्तराय, इन चार कर्मों की स्थिति उक्त प्रकार से वर्णन की गई है।

उदही सरिस नामाण, सत्तरिं कोडि कोडीओ
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥२१॥

अन्वयार्थ—(उदही सरिसनामाण—उदधिसदृङ्नाम्ना) उदधिसदृश नामवाले (सत्तरिं—सप्तति) सत्तर (कोडि—कोडीओ—कोटिकोटय) कोटाकोटिसागरोपम (मोहणिज्जस्स—मोहनीयस्य) मोहनीय कर्म की (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति है, (जहन्निया—जघन्यका) जघन्य स्थिति (अंतोमुहुत्त—अन्तर्मुहूर्त की है।

मूलार्थ—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा कोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण की है।

तेत्तीस सागरोवमा उक्कोसेण वियाहिया
ठिई उ आउकम्मस्स अंतो मुहुत्तं जहन्निया ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तेत्तीस सागरोवमा—त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) तेंतीससागरोपम प्रमाण (उक्कोसेण—उत्कर्षेण) उत्कृष्टता से (ठिई—स्थिति) स्थिति (वियाहिया—व्याख्याता) कथन की गई है (आउकम्मस्स—आयुकर्मणः) आयुकर्म की (अंतोमुहुत्तं—अन्तर्मुहूर्तं) अन्तर्मुहूर्त प्रमाण (जहन्निया—जघन्यक) जघन्य स्थिति है (उ) प्राग्वत्

मूलार्थ—आयुकर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की कथन की गई है।

उदहीसरिसनामाण वीसई कोडिकोडिओ
नामगोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्त जहन्निया ॥२३॥

अन्वयार्थ—(उदहीसरिसनामाण=उदधिसदृड्नाम्ना) समुद्र सदृश नाम वाले (वीसई कोडिकोडीओ—विंशतिः कोटिकोटयः) बीस कोटाकोटि सागरोपम की (नामगोत्ताणउक्कोसा—नामगोत्रयोरुत्कृष्टा) नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति है, (जहन्निया—जघन्यका) जघन्यस्थिति (अट्ठमुहुत्त—अष्टमहूर्ता) आठ मुहूर्त की है।

मूलार्थ—नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की प्रतिपादन की है।

सिद्धाणणंतभागो य अणुभागा हवंति उ
सव्वेसुवि पएसग्गं, सव्व जीवेसु इच्छियं ॥२४॥

अन्वयार्थ— (सिद्धाणणंतभागो य—सिद्धानामनन्तभागश्च) सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र (अणुभागा—अनुभागा) अनुभाग—रसविशेष (हवंति—भवन्ति) होते हैं, (सव्वेसु वि-सर्वेष्वपि) सब अनुभागों में (पएसग्ग—प्रदेशाग्र प्रदेशों के अग्र—परमाणु का परिमाण (सव्वजीवेसु—सर्वजीवेभ्य) सब जीवों से (इच्छिय —अतिक्रान्तम्) अधिक है (तु) पादपूर्ति में है।

मूलार्थ—सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र कर्मों का अनुभाग-रस होता है, फिर सब अनुभाग में कर्मपरमाणु सब जीवों से अधिक हैं।

तम्हा एएसि कम्माणं, अणुभागा वियाणिया
एएसि संवरे चेव, खवणे य जए बुहो ॥२५॥

अन्वयार्थ—(तम्हा—तस्मात्) इसलिए (एएसि—एतेषां) इन (कम्माण—कर्मणाम्) कर्मों के (अणुभागा—अनुभागान्) अनुभागों को (वियाणिया—विज्ञाय) जानकर के (एएसि—एतेषां) इनके (संवरे—संवरे) संवर में (च) और (खवणे—क्षपणे) क्षय करने में (बुहो—बुधः) तत्त्व का जानने वाला (जए—यतेत) यत्न करे (य) समुच्चय में है, (एव) निश्चय में है, (त्ति बेमि—इति ब्रवीमि) इस प्रकार मैं कहता हूं।

मूलार्थ—इसलिए इन कर्मों के विपाक को जानकर बुद्धिमान जीव इनके निरोध और क्षय करने में यत्न करे।

(इति कम्मप्पयडी समत्ता)
इति कर्म प्रकृति समाप्ता
त्रयस्त्रिंशत्तमाध्ययन समाप्त ॥

मूलार्थः—नील लेश्या का वर्ण नीले अशोक वृक्ष के समान चाष पक्षी के परों के सदृश और स्निग्ध वैडूर्यमणि के समान होता है।

अयसीपुप्फसंकासा कोइलच्छद सनिभा
पारे वयगीवनिभा काऊलेसा उ वण्णओ ॥६॥

अन्वयार्थ—अयसी पुप्फ सकासा—अतसी पुष्प सकाश—अलसी पुष्प के समान (कोइ लच्छद सनिभा—कोकिलच्छद सनिभा) कोयल के परों के समान (पारेवयगीवनिभा —पारावतग्रीवानिभा—पारावत —कबूतर की ग्रीवा के सदृश (वण्णओ—वर्णतः) वर्ण से (काऊलेसा—कापोतलेश्या (उ—तु) होती है।

मूलार्थ—जिस रंग का अलसी का पुष्प होता है, कोयल के पर होते हैं और कबूतर के ग्रीवा सदृश होती है। उसी प्रकार का कापोतलेश्या का वर्ण-रंग होता है।

हिंगुलधाउसंकासा तरुणाइच्च संनिभा
सुयतुंडपईवनिभा, तेओलेसा उ वण्णओ ॥७॥

अन्वयार्थ—(हिंगुलधाउसंकासा—हिंगुलधातु संकाशा) हिंगुल—शिगरफ धातु के सदृश (तरुणाइच्चसंनिभा—तरुणादित्यसंनिभा) तरुणसूर्य के समान (सुयतुंडपईवनिभा—शुकतुण्डप्रदीपनिभा शुक की नासिका और प्रदीपशिखा के समान (तेओलेसा—तेजोलेश्या) तेजोलेश्या (वण्णओ—वर्णतः) वर्ण से (उ—तु) जाननी चाहिये।

मूलार्थ—हिंगुल धातु के सदृश तरुण सूर्य के सदृश और शुक की नासिका और प्रदीप शिखा के समान तेजोलेश्या का वर्ण होता है।

हरियालभेय संकासा, हलिद्दाभेयसमप्पभा
सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥८॥

अन्वयार्थ—(हरियालभेयसंकासा—हरितालभेद संकाशा) हरिताल के सदृश (हलिद्दाभेयसमप्पभा—हरिद्राभेदसमप्रभा) हरिद्रा के समान प्रभावाली (सणासणकुसुमनिभा)—सनासनकुसुमनिभा सन के पुष्प और असनपुष्प के तुल्य (पम्हलेसा—पद्मलेश्या) पद्मलेश्या (वण्णओ—वर्णतः) वर्ण से (उ—तु) जाननी चाहिए।

मूलार्थ—हरिताल और हल्दी के टुकड़ा के समान तथा सन और असन पुष्प के समान पीत पद्मलेश्या का रंग होता है।

संखककुंदसंकासा, खीरपूर समप्पभा
रययहार संकासा, सुक्कलेसाउ वण्णओ ॥९॥

अन्वयार्थ— (संखककुंदसंकासा—शंखाङ्ककुन्दसंकाशा) शंखअंक-मणि विशेष कुन्दपुष्प के सदृश (खीरपूरसमप्पभा—क्षीरपूरसमप्रभा) दूध की धारा समान प्रभावाली, रययहार संकासा—रजतहारसंकाशा) रजत-चांदी हार के समान (सुक्कलेसा—शुक्ललेश्या) शुक्ललेश्या (वण्णओ—वर्णत) र्ण से [उ] जाननी चाहिए।

भावार्थ—शंख अंक (मणिविशेष) मुचकुन्द के पुष्प और दुग्धधार तथा रजत हार के समान उज्वल वर्ण-श्वेत रंग शुक्ललेश्या का होता है।

जह कडुय तुंबगरसो , निंबरसो कडुयरोहिणिरसो, वा
एत्तोवि अणंतगुणो, रसो य किण्हाए नायव्वो ॥ १०॥

अन्वयार्थ—(जह—यथा) (कडुयतुंबगरसो—कटुकतुम्बकरस.) कटुक तुम्बक का रस (निंबरसो—निंबरस) नीम का रस (वा) अथवा (कडुयरोहिणिरसो—कटुकरोहिणीरस) कटुकरोहिणी का रस होता है। (एत्तो वि अणंतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुण) इससे भी अनन्तगुणा कटु रसो (किण्हाए—कृष्णाया) कृष्णलेश्या का (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये (य—च) प्राग्वत्।

मूलार्थ—जितना कटु रस कडुवे तुम्बे निंब और कटुरोहिणी का होता है उससे भी अनंत गुण अधिक कटु रस कृष्ण लेश्या का होता है।

जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा
एत्तो वि अणंत गुणो रसो उ नीलाए नायव्वो ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ—[जह—यथा] [तिगडुयस्स—त्रिकटुकस्य] त्रिकटु का [रसो—रस] रस [तिक्खो—तीक्ष्ण] तीक्ष्ण होता है।
[वा] अथवा [जह—यथा] यथा [हत्थिपिप्पलीए—हस्तिपिप्पल्या] गजपीपल का रस होता है। [एत्तो विअणंतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुण] इससे भी अनन्तगुण अधिक तीक्ष्ण [रसो—रस] [नीलाए—नीलाया] नीललेश्या का (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये। (य—च उ—तु) प्राग्वत्

मूलार्थ— नीललेश्या के रस को मघ मिर्च और सोंठ तथा गज पीपल के रस से भी अनन्तगुणा तीक्ष्ण समझना चाहिये।

जह तरुणअंबगरसो तुवर कविट्ठस्स वावि जारिसओ
एत्तो वि अणंतगुणो, रसोउ काऊए नाएव्वो ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (तरुणअंबगरसो—तरुणाम्रकरसः) तरुण—अपरिपक्व—आम्रफल का रस होता है। (वा) अथवा (तुवर कविट्ठस्स—तुवर कपित्थस्य) तुवर और कपित्थ के फल का (जारिसो—यादृशः) जैसा रस होता है। (एत्तो वि अणतगुणो— इतोऽप्यनन्तगुणः) इससे भी अणतगुणा अधिक (रसो—रसः) रस (उ—तु) निश्चयार्थक है। (काऊए—कापोतायाः) कापोतलेश्या का (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये (अवि—अपि) पादपूर्ति के लिए है।

भावार्थ— कापोतलेश्या के रस को कच्चे आम के रस और तुवर वा कपित्थ फल के रस की अपेक्षा अनन्तगुणा अधिक खट्टा समझना चाहिये।

जह परिण यंबगरसो पक्क कविट्ठस्स वावि जारिसओ
एत्तो वि अणंतगुणो रसो उ तेओए नाएव्वो ॥१३॥

अन्वयार्थ—(जह—यथा) यथा (परिणयंबगरसो—परिणताम्रकरसः) पके हुए आम फल का रस होता है। (वा) अथवा (अवि—अपि) पादपूर्ति के लिए है (जारिसओ—यादृशः) जैसा (पक्क कविट्ठस्स पक्वकपित्थस्य) पके हुए कपित्थ फल का रस होता है। (एत्तोवि अणंतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुणः) इससे भी अनन्त गुणा अधिक (रसो—रस), तेओए—तेजो लेश्या का (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिए (उ—तु) [illegible]

भावार्थ— पके हुए आमफल अथवा पके हुए कपित्थफल का जैसा खट्टा मीठा रस होता है। उससे भी अनन्तगुणा अधिक खट्टा मीठा रस तेजो लेश्या का समझना चाहिए।

वरवारुणीए व रसो विविहाण व आसवाण जारिसओ
महुमेरयस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएण ॥१४॥

अन्वयार्थ—(वरवारुणीए—वरवारुण्याः) प्रधान मदिरा का (व—इव) जैसा (रसो—रस) रस होता है (वा) अथवा (विविहाण—विविधानां) विविध प्रकार के (आसवाण—आसवानां) आसवों का (जारिसओ—यादृशः) जिस प्रकार का रस होता है (वा) अथवा (महुमेरयस्स—मधु—मैरेयकस्य) मधु और मैरेयक का (रसो—रस) रस होता है, (एत्तो—इतः) उससे (परएण—[illegible]) अनन्त गुणा अधिक [illegible] (पम्हाए—पद्मायाः) पद्म लेश्या का होता है।

मूलार्थ—प्रधान मदिरा, नाना प्रकार के आसव, तथा मधु और मैरेयक नाम की मदिरा का जिस प्रकार का रस होता उससे भी अनन्त गुणा अधिक रस पद्मलेश्या का है।

खज्जूरमुद्दियरसो, खीररसो खंडसक्कररसोवा
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥१५॥

अन्वयार्थ— (खज्जूरमुद्दियरसो—खर्जूरमृद्वीकारस) खजूर और मृद्वीका—दाख का रस [वा] अथवा [खीररसो—क्षीररस] दूध का रस है, (खंडसक्कररसो—खण्डशर्करारस) खांड और शर्करा का रस जैसा होता (एत्तोवि अणंत गुणो—इतोऽप्यनन्तगुणः) इससे भी अनन्त गुणा अधिक मध [सुक्काए—शुक्लाया] शुक्ललेश्या का रसो—रस उ—तु नायव्वो—ज्ञातव्य. जानना चाहिये।

मूलार्थ— खजूर दाख का रस तथा खांड का रस जैसा मधुर होता है उससे भी अनन्तगुणा शुक्ललेश्या का रस होता है।

जह गोमडस्सगन्धो सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स
एत्तोवि अणन्तगुणो लेसाण अप्पसत्थाणं ॥१६॥

अन्वयार्थ— [जह—यथा] जैसे [गोमडस्स—गोमृतस्य] गो के मृत शरीर की सुणगमडस्स—श्वनकमृतस्य] मरे हुए कुत्ते के [व—वा] अथवा [अहिमडस्स—अहिमृतस्य] मरे हुए सर्प की गन्ध होती है एत्तोवि अणन्तगुणो—इतोप्यनन्तगुण] इससे भी अनन्तगुण अप्पसत्थाण—अप्रशस्तानां] लेसाण—लेश्यानाम्] लेश्याओं की होती है।

मूलार्थ—जैसी मृतक गौ की, अथवा मरे हुए श्वान कुत्ते और मरे हुवे सर्प की गन्ध होती है। इससे भी अनन्तगुणा अधिक अप्रशस्त लेश्याओं की होती है।

जह सुरहि कुसुम गन्धो, गन्धवासाण पिस्समाणाणं
एत्तो वि अणंत गुणो, पसत्थलेसाण तिण्ह पि ॥१७॥

अन्वयार्थ—(जह—यथा) जैसे (सुरहिकुसुम गन्धो—सुरभिकुसुम गन्धः) सुगन्धि वाले पुष्पों की गन्ध होती है तथा (पिस्समाणाण—पिष्यमाणानाम्) पिसे हुवे (गन्ध वास [illegible]
है [एत्तोवि अणन्त [illegible]
—[पसत्थाणवि] [illegible]
होती है।

मूलार्थ—सुगन्धित पुष्प, अथवा सुगन्ध युक्त पीसे हुए गन्ध पदार्थों की जैसी प्रशस्त गन्ध होती है, उससे भी अनन्त गुण प्रशस्त गन्ध इन तीनों ही लेश्याओं की होती है।

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए य सागपत्ताण
एत्तो वि अणत गुणो, लेसाण अप्पसत्थाणं ॥१८॥

अन्वयार्थ [जह—यथा] यथा [करगयस्स—करपत्रस्य] करपत्र का [फासो—स्पर्श] स्पर्श [वा] अथवा [गोजिब्भाए—गोजिह्वायाः] गोजिह्वा का स्पर्श [य—च] और सागपत्ताण—शाकपत्राणाम्] शाकपत्रों का स्पर्श होता है, एत्तोवि अणतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुणः] इससे भी अनन्तगुणा अधिक स्पर्श [अप्पसत्थाण—अप्रशस्तानाम्] अप्रशस्त [लेसाण—लेश्यानाम्] लेश्याओं का होता है।

मूलार्थ—जैसा स्पर्श करपत्र, गोजिह्वा और शाकपत्रों का होता है, उससे अनन्तगुणा अधिक स्पर्श अप्रशस्त लेश्याओं का होता है।

जह बूरस्सव फासो, नवणीयस्स व सिरीस कुसुमाणं
एत्तो वि अणतगुणो, पसत्थ लेसाण तिण्हं पि ॥१९॥

अन्वयार्थ—[जह—यथा] जैसे [बूरस्स—बूरस्य] बूर—नाम की वनस्पति का [फासो—स्पर्श] स्पर्श [नवणीयस्स—नवनीतस्य] नवनीत का स्पर्श [व—वा] अथवा [सिरीस कुसुमाण—शिरीषकुसुमानाम्] सिरस के पुष्पों का स्पर्श होता है, एत्तोवि अणतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुणः] उससे भी अनन्तगुण अधिक स्पर्श [तिण्हंपि—त्रिसृणामपि] इन तीनों [पसत्थलेसाण—प्रशस्त लेश्यानां] प्रशस्त लेश्याओं का होता है [वि—अपि] प्राग्वत्

मूलार्थ— बूर वनस्पति विशेष, नवनीत-मक्खन और सिरस के पुष्पों का जितना कोमल स्पर्श होता है, उससे अनन्तगुणा अधिक कोमल स्पर्श इन तीनों प्रशस्त लेश्याओं का है।

तिविहो व नवविहो वा, सत्तावीसइ विहेक्कसीओ वा
दुसओ तेयालो वा लेसाणं होइ परिणामो ॥२०॥

अन्वयार्थ— (तिविहो—त्रिविधः) त्रिविध (व—वा) अथवा [नवविहो—नवविध] नवविध [वा] [illegible] [सत्तावीसइविह—सप्तविंशतिविधः) सत्ताईस विध प्रकार (वा) अ[illegible] [illegible]—एकाशीतिविधः] [illegible] प्रकार [वा] तथा [दुसओ[illegible]

अन्वयार्थ— (इस्सा—ईर्ष्या) ईर्षा से युक्त (अमरिसो—अमर्षः) हठ युक्त (अतवो—अतप) तप न करनेवाला (अविज्जमाया—अविद्या-माया विद्या से रहित, मायावी (अहीरिया—अह्रीकता) लज्जा से रहित (गेही—गृद्धियुक्त) लम्पट (पओसे—प्रद्वेष) अत्यन्त द्वेष करनेवाला (और) (सढे—शठ) असत्यभाषी (खुद्दो, साहसिओ, नरो—क्षुद्रः, साहसिकः नरः) नीच और साहसी मनुष्य (एयजोग समाउत्तो—एतद्योग समायुक्तः) इनयोगों वाला (नीललेसं—नीललेश्याम्) नीललेश्याको (परिणमे—परिणमेत) परिणामवाला होता है तु— निश्चय।

मूलार्थ— नीललेश्या के परिणामवाला पुरुष ईर्ष्यालु, हठी, असहनशील तपन करनेवाला, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, विषयी-लम्पट, द्वेषी, रसलोभी, शठ-धूर्त प्रमादी, स्वार्थी, आरम्भी, क्षुद्र और साहसी होता है।

> वंके वंक समायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए।
> पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारीए ॥२५॥
> उप्फालगदुट्ठवाई य तेणे यावि य मच्छरी।
> एयजोग समाउत्तो, काऊलेसं तु परिणमे ॥२६॥

अन्वयार्थ—[वंके—वक्र] वचन से कुटिल (वक्र समायारे—वक्र समाचार) वक्र ही क्रिया करनेवाला (नियडिल्ले—निकृतिमान्) छली [अणुज्जुए—अनृजुक] सरलता से रहित [पलिउंचग—परिकुञ्चक] अपने दोषों का ढाकनेवाला [ओवहिओ—औपधिक] परिग्रही [मिच्छदिट्ठी—मिथ्या दृष्टि] विपरीत दृष्टि [अणारिए—अनार्य] [उप्फालग दुट्ठवाई—उत्प्रासक-दुष्टवादी] मर्म भेदी और दुष्ट वचन बोलनेवाला [तेणे—स्तेनश्च] चोरी करनेवाला और [मच्छरी—मत्सरी] पराई सम्पत्ति को न सहन करनेवाला [एय—जोग समाउत्ता] इन योगों से युक्त [काउलेस—कापोतलेश्यारो] [परिणमे—परिणमन] प्राप्त होता है।

मूलार्थ —जो पुरुष वक्र कुटिल बोलता है, वक्र आचरण करता है, कपटी निजी दोषों को ढाँकता है, सरलता से रहित है, मिथ्या दृष्टि तथा अनार्य है। इसी प्रकार दूसरों को मर्म बात को प्रकट करने वाला, दुष्ट बोलने वाला चोर और ईर्ष्यालु मनुष्य कापोत लेश्या से युक्त होता है।

नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ।
विणीयविणए दंते, जोगवं उवहाणवं ॥२७॥
पियधम्मे दढधम्मे, अवज्जभीरू हिएसए ।
एयजोगसमाउत्तो, तेओलेसं तु परिणमे ॥२८॥

अन्वयार्थ—[नीयावित्ती—नीचैर्वृत्ति] नम्रतायुक्त [अचवले—अचपल] चपलता से रहित [अमाई—अमायी] मायारहित [अकुऊहले—अकुतूहल] हँसी मजाक इन्द्रजाल से रहित [विणीयविणए—विनीतविनय] परम विनयवान् [दंते—दान्त] संयमी [जोगवं—योगवान्] स्वाध्यायादि करने वाला [उवहाणवं—उपधानवान्] उपधान आदि तप करने वाला [पियधम्मे—प्रिय—धर्मा] धर्मप्रेमी [दढधम्मे—दृढधर्मा] धर्म में दृढ रहने वाला [अवज्जभीरू—अवद्यभीरु] पाप से डरने वाला [हिएसए—हितैषिणः] हितैषी—मुक्ति पथ को ढूंढने वाला [एयजोगसमाउत्तो—एतद्योगसमायुक्त] इन लक्षणों से युक्त [तेओलेसं—तेजोलेश्याम्] तेजोलेश्या को [परिणमे—परिणमेत्] प्राप्त होता है।

भावार्थ—नम्रता बर्ताव रखने वाला चपलता से रहित, छलकपट से रहित कुतूहल—हँसीठट्ठा और इन्द्रजाल आदि न करने वाला, परमविनयी, इन्द्रियजीत, स्वाध्याय में लगा रहने वाला और उपधान आदि तप को करने वाला, धर्मप्रेमी, धर्म में दृढ़ता रखने वाला, पापभीरु सब का हितैषी पुरुष तेजोलेश्या के परिणामों युक्त होता है।

पयणुकोह माणे य, माया लोभे य पयणुए ।
पसंत चित्ते दतप्पा, जोगवं उवहाणवं ॥२९॥
तहा पयणुवाई य, उवसते जिइंदिए ।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे ॥३०॥

अन्वयार्थ—[पयणुकोहमाणेय—प्रतनुक्रोधमानश्च] सूक्ष्म क्रोध—और मान वाला [माया लोभेय पयणुए—माया लोभश्च प्रतनुक] कपट—और लोभ को सूक्ष्म—कम करने वाला [पसंतचित्ते—प्रशान्तचित्त] अत्यन्त [शान्तचित्तवाला (दतप्पा—दन्तात्मा) जिसने आत्मा को वश में किया है, (जोगव-योगवान्) योगोंवाला स्वाध्यायी (उवहाणव उपधानवान्) उपधान तप करने वाला (तहा-तथा) (पयणुवाई-प्रतनुवादी) कम बोलने वाला (य-च) और (उवसते-उपशान्त) उपशान्त (जिइंदिए-जितेन्द्रिय) इन्द्रियों को वश में करने

वाला [illegible] (जोगवसमाउत्तः) इन योगों से युक्त पुरुष (पम्हलेसं [illegible]) [illegible] (परिणमे—परिणमेत) परिणत होता है।

मूलार्थ — [illegible] क्रोध, मान, माया और लोभ बहुत कम है। तथा [illegible] और मन का निग्रह करने वाला है। योग और उपधान वाला [illegible] और जितेन्द्रिय है। इन लक्षणों वाला वह पुरुष पद्म-[illegible] होता है।

अट्ट रुद्दाणि वज्जित्ता, धम्म सुक्काणि साहए।
पसंत चित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥३१॥
सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए।
एयजोग समाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे ॥३२॥

अन्वयार्थ — (अट्टरुद्दाणि-आर्तरौद्रे) आर्त और रौद्र ध्यानों को (वज्जित्ता-वर्जयित्वा) त्यागकर (धम्मसुक्काणि-धर्मशुक्ले) धर्म और शुक्ल ध्यान को (साहए-साधयेत्) साधना करे (पसंतचित्ते-प्रशान्तचित्त) प्रशान्त चित्त वाला (दंतप्पा-दान्तात्मा) (समिए-समित) समितियों से समिति (गुत्तिसु-गुप्तिभिः) गुप्तियों से (गुत्ते-गुप्तः) य-और (सरागे-सरागः) राग सहित (वीयरागे-वीतरागः) वा (उवसंते-उपशान्त)(जिइंदिए-जितेन्द्रियः)(एयजोगसमाउत्तो) इन योगों से युक्त पुरुष (सुक्कलेसं—शुक्ललेश्यां) शुक्ललेश्या को (परिणमे-परिणमेत) परिणत होता है।

मूलार्थ — आर्त और रौद्र इन ध्यानों को त्याग कर जो पुरुष धर्म और शुक्ल इन दो ध्यानों का आसेवन-चिन्तन करता है तथा प्रशान्तचित्त, दमितेन्द्रिय, पांचसमितियों से समिति और तीन गुप्तियों से गुप्त है, एवं अल्प राग वाला अथवा वीतरागी, उपशमनिमग्न और जितेन्द्रिय है वह शुक्ललेश्या से युक्त होता है।

असंखिज्जाणो सप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया।
संखाईया लोगा, लेसाण हवंति ठाणाइं ॥३३॥

अन्वयार्थ :— (असंखिज्जाण-असंख्येयानाम्) असंख्येय (ओसप्पिणीण-अवसर्पिणीनाम्) अवसर्पिणियों के तथा (उस्सप्पिणीण-उत्सर्पिणीनाम्) उत्सर्पिणियों के (जे-ये) जो ([illegible] समय है (संखाईया [illegible] (लोगा-लोकाः) लोक के जितने प्रदे[illegible] (लेसाण-[illegible] के (ठाणाइं-स्थानानि) स्थान (ह[illegible] [illegible] है।

मूलार्थ — असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों के जितने भी समय हैं तथा असंख्यातीत लोक में जितने आकाश प्रदेश हैं, उतने ही लेश्याओं के (शुभ और अशुभ लेश्यावों के) स्थान होते हैं।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, ते त्तीसा सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा किण्हलेसाए ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ :- (मुहुत्तद्ध-मुहूर्त्तार्द्धम्) अन्तर्मुहूर्त (तु) तो (जहन्ना-जघन्या) जघन्य और (तेत्तीसा सागरा-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) तैंतिससागरोपम (मुहुत्तहिया—मुहूर्त्ताधिका) मुहूर्त्तअधिक (उक्कोसा-उत्कृष्टा) उत्कृष्ट (ठिई—स्थिति) (होइ-भवति) होती है (किण्हलेसाए-कृष्णलेश्यायाः) कृष्णलेश्या की (नायव्वा-ज्ञातव्या) जाननी चाहिये।

मूलार्थ:- कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण और उत्कृष्ट-स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त सहित तैंतीस सागरोपम प्रमाण होती है ऐसा जानना चाहिए।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दसउदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ- (मुहुत्तद्ध-मुहूर्त्तार्द्धम्) अन्तर्मुहूर्त (तु) तो (जहन्ना-जघन्या) जघन्य (दसउदही दशोदधि) दस सागरोपम (पलिय-पल्योपम्) का (असंख भाग—असंख्य भाग) (अब्भहिया-अभ्यधिका) असंख्यातवां भाग अधिक (नीललेसाए-नीललेश्यायाः) नीललेश्यावों (उक्कोसा-उत्कृष्टा) उत्कृष्ट (ठिई स्थिति) (होइ-भवति) होती है ऐसा जानना चाहिये।

मूलार्थ:- नीललेश्या की जघन्य स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दस सागरोपम की जाननी चाहिये।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काउलेसाए ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ: -(मुहुत्तद्धं-अन्तर्मुहूर्त) तो (जहन्ना-जघन्य स्थिति) (उक्कोसा-उत्कृष्टा) (तिण्णुदही-त्र्युदधि) तीन सागरोपम (पलिय-पल्योपमका) (असंख भाग-मब्भहिया-असंख्यभागमभ्यधिका) असंख्यातवां भाग अधिक (काउलेसाए-कापोत-लेश्यायाः) कपोतलेश्या की (ठिई-स्थिति) होइ) होती है (नायव्वा-ज्ञातव्या) ऐसा जानना चाहिए।

दस उदहीपलिओवम, असंखभागं जहन्निया होइ ।
तेत्तीससागराइं, उक्कोसा होइ किण्हाए लेसाए ॥४३॥

अन्वयार्थ - (दस उदहीपलिओवम—दशोदधिपल्योपमा) दससागरोपम पल्योपम के (असंखभाग—असंख्यभागाधिका) असंख्यातवें भागअधिक (जहन्निया—जघन्यका) जघन्यस्थिति (होइ) होती है (किण्हाए—कृष्ण-लेश्यायाः) कृष्णलेश्याकी (उक्कोसा) उत्कृष्ट स्थिति (तेत्तीससागराइं—त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) तेतीससागरोपम की होइ—होती है।

मूलार्थ—कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दससागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीससागरोपम की होती है।

एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि, तिरियमणुस्साण देवाणं ॥४४॥

अन्वयार्थ— (एसा—एषा) (नेरइयाण—नैरयिकाणाम्) नारकियों की (लेसाण ठिई— लेश्यानां स्थितिः) लेश्याओं की स्थिति (तु—तो) (वण्णिया—वर्णिता) वर्णन की गई (होइ—है) (तेणपर—तेनपरम्) इसके आगे (तिरिय-मणुस्साण—तिर्यङ्मनुष्याणाम्) तिर्यक् पशु आदि और मनुष्यों की (देवाण—देवानाम्) देवों की स्थिति को (वोच्छामि—वक्ष्यामि) कहूँगा।

मूलार्थ— यह लेश्याओं की स्थिति नारकीय जीवों की कही गई है अब इसके आगे तिर्यक्-पशु पक्षी, मनुष्य और देवों की लेश्यास्थिति को कहूँगा।

अन्तोमुहुत्तमद्धं, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ ।
तिरियाण नराण वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥४५॥

अन्वयार्थ— (अन्तोमुहुत्तमद्धं— अन्तर्मुहूर्ताद्धा) अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण (लेसाण—लेश्यानाम्) लेश्याओं की (ठिई—स्थितिः) (जहिं जहिं—यस्मिन् यस्मिन्) जहाँ-जहाँ (जा—या) जो (उ—तु) जो कृष्णादि लेश्याएं हैं (तिरियाण—तिरश्चाम्) तिर्यंचों (वा)-अथवा (नराण—नराणाम्) नरों की कही है (केवलं—केवलाम्) (लेसं—लेश्याम्) शुक्ललेश्या (वज्जित्ता—वर्जयित्वा) छोड़कर।

मूलार्थ—तिर्यंच और मनुष्यों में शुक्ल लेश्या को छोड़कर अवशिष्ट सब लेश्याओं की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त की है।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।
नवहि वरिसेहि ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥४६॥

अन्वयार्थ– (मुहुत्तद्ध—अन्तर्मुहूर्तम्) अन्तर्मुहूर्त (तु—तो) (जहन्ना-जघन्या) जघन्य स्थिति (उक्कोसा—उत्कृष्टा) होइ—होती है) (पुव्वकोडी—पूर्वकोटी) पूर्व करोड (तु—तो) (नवहि वरिसेहि—नवभिवर्षैः) नव वर्षों से (ऊणा—ऊना) कम (सुक्कलेसाए—शुक्ललेश्यायाः) शुक्ललेश्या की स्थिति (नायव्वा—जानना चाहिए ।

मूलार्थ– शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्टस्थिति नव वर्ष कम एक करोड पूर्व की जाननी चाहिए।

एसा तिरियनराणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।
तेण परं वोच्छामि, लेसाणं ठिई उ देवाणं ॥४७॥

अन्वयार्थ– (एसा—एषा) यह (तिरियनराण—तिर्यङ्नराणाम्) तिर्यंच और मनुष्यों की (लेसाण—लेश्याओं की) (ठिई—स्थिति) (उ—तु) तो (वण्णिया—वर्णिता) वर्णन की गई (होइ—है) तेणपर—इसके बाद (देवाण—देवानाम्) देवों की (लेसाण—लेश्यानाम्) लेश्याओं की ठिई—स्थिति) (वोच्छामि) कहूँगा।

मूलार्थ– तिर्यंच और मनुष्यों की जो लेश्यायें हैं उनकी स्थिति का तो यह वर्णन मैंने कर दिया। अब इसके बाद देवों की लेश्यास्थिति को मैं कहूँगा।

दसवास सहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होइ।
पलियमसंखिज्ज इमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥४८॥

अन्वयार्थ— (दसवाससहस्साइ—दशवर्षसहस्राणि) दशहजार वर्ष की (जहन्निया—जघन्यका) किण्हाए—कृष्णायाः) कृष्णलेश्या की (ठिई—स्थिति) (होइ—होती है) (पलियमसंखिज्जइमो—पल्यो—पमासंख्येयतमभागः) पल्योपम के असंख्यातवें भाग (किण्हाए—कृष्णायाः की (उक्कोसा—उत्कृष्टा) स्थिति होइ—होती है।

मूलार्थ—कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार और (उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी है।

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं नीलाए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥४९॥

अन्वयार्थ — किण्हाए—कृष्णाया) कृष्णलेश्या की (जा—या) जो (खलु—निश्चय) निश्चय करके (ठिई—स्थिति) है (सा—वह) स्थिति उ—तु) तो (उक्कोसा—उत्कृष्टा) (समयमब्भहिया—समयाभ्यधिका) एक समय अधिक (जहन्नेण—जघन्येन) जघन्य (नीलाए—नीलायाः) नीललेश्या की स्थिति होती है (च—फिर) (उक्कोसा—उत्कृष्ट) उत्कृष्ट स्थिति पलिय—पल्योपम) (असंख—असंख्येयभागा) असंख्यातवां—भाग मात्र होती है ।

मूलार्थ—जितनी उत्कृष्ट स्थिति कृष्ण लेश्या की कही गई है वही एक समय अधिक जघन्य स्थिति नीललेश्या की है और नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी है।

जा नीलाए ठिई खलु,उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेण काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥५०॥

अन्वयार्थ —(जा—जो) (नीलाए—नीलाया) नीललेश्या की (ठिई—स्थिति) उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट कही है (सा—उ—सा—तु) वह तो (समय—एक समय (अब्भहिया—अभ्यधिका) अधिक जहन्नेण—जघन्य स्थिति (काऊए—कापोताया)कापोतलेश्या की होती है (च—और) (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति (पलिय —पल्योपमके (असंख—असंख्येय—भाग असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है।

मूलार्थ :— यावन्मात्र उत्कृष्ट स्थिति नील लेश्या की होती है, एक समय अधिक वही जघन्य स्थिति कापोत लेश्या की है तथा कापोत लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

तेण परं वोच्छामि, तेऊ लेसा जहा सुरगणाणं ।
भवणवइवाणमंतर, जोइसवेमाणियाण च ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ :— (तेण परम्—तेन परम्) । इसके बाद (जहा—जिस प्रकार) (भवणवइ—भवनपति) वाणमंतर—वाणव्यन्तर (जोइस—ज्योतिष्क) [illegible] (वेमाणियाण—वैमानिकानाम्) ।
: (सुरगणाण—सुरगणा-

देवताओं की (जहा—यथा) (तेऊलेसा—तेजो लेश्या) है—उसको कहूँगा—वक्ष्यामि) कहूँगा।

मूलार्थ :—इसके आगे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक की जिस प्रकार की तेजो लेश्या है उसको मैं कहूँगा।

पलिओवमंजहन्ना, उक्कोसा सागरा उ दुन्नहिया।
पलियमसंखेज्जेण, होइ भागेण तेऊए ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ :— (पलिओवम—पल्योपमम्) (जहन्ना—जघन्या) स्थिति (उक्कोसा—उत्कृष्टा) (दुन्नहिया—द्वयधिके) दो अधिक (सागरा सागरोपम (पलिय—पल्योपमम्) पल्योपम के (असंखेज्जेण—असंख्येयेन) ख्यातवें (भागेण=भागेन) (तेऊए —तेजस्या) तेजो लेश्या की स्थिति (होइ—भवति—होती है।

मूलार्थ :— तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की होती है। उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की है।

दसवाससहस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ।
दुन्नुदही पलिओवम, असंख भागं च उक्कोसा ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ :— (दसवाससहस्साइं—दशवर्षसहस्राणि) दस हजार वर्ष (तेऊए—तेजो लेश्या) तेजोलेश्या की (जहन्निया—जघन्यिका) जघन्य (ठिई—स्थिति) होइ—होती है (दुन्नुदही—द्वयुदधि) दो सागरोपम (पलिओवम—पल्योपम) के (असंखभाग—असंख्य भागाधिका) असंख्यातवां भाग अधिक (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति होती है।

मूलार्थ —तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है। और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की होती है।

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उसमयमब्भहिया
जहन्नेणं पम्हाए, दस उमुहुत्ताहियाइ उक्कोसा ॥

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं नीलाए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥४६॥

अन्वयार्थ — किण्हाए—कृष्णाया.) कृष्णलेश्या की (जा—या) जो (खलु—निश्चय) निश्चय करके (ठिई—स्थिति) है (सा—वह) स्थिति उ—तु) तो (उक्कोसा—उत्कृष्टा) (समयमब्भहिया—समयाभ्यधिका) एक समय अधिक (जहन्नेण—जघन्येन) जघन्य (नीलाए—नीलायाः) नीललेश्या की स्थिति होती है (च—फिर) (उक्कोसा—उत्कृष्ट) उत्कृष्ट स्थिति पलियं—पल्योपम) (असंख—असंख्येयभागा) असंख्यातवाँ—भाग मात्र होती है।

मूलार्थ—जितनी उत्कृष्ट स्थिति कृष्ण लेश्या की कही गई है वही एक समय अधिक जघन्य स्थिति नीललेश्या की है और नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी है।

जा नीलाए ठिई खलु,उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेण काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥५०॥

अन्वयार्थ — (जा—जा) (नीलाए—नीलायाः) नीललेश्या की (ठिई—स्थिति) (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट कही है (सा—उ—सा—तु) वही (समय—एक समय (अब्भहिया—अभ्यधिका) अधिक जहन्नेण - जघन्य स्थिति (काऊए - कापोतायाः) कापोत लेश्या की होती है (च—और) (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति (पलिय - पल्योपम के (असंख असंखेय—भागा) असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है।

मूलार्थ — जो उत्कृष्ट स्थिति नील लेश्या की होती है, एक समय अधिक वही जघन्य स्थिति कापोत लेश्या की है तथा कापोत लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

तेण परं वोच्छामि, तेऊ लेसा जहा सुरगणाणं ।
भवणवइवाणमन्तर, जोइसवेमाणियाणं च ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ — (तेण परं—[illegible]) इसके पर (जहा—जिस प्रकार) (भवणवइ—भवनपति) भवनपति - व्यन्तर (जोइस - [illegible]) च—और (वेमाणियाणं - वैमानिकानाम्) वैमानिक (सुरगणाणं—सुरगणा-

नाम्) देवगणों की (जहा—यथा) (तेऊलेसा—तेजो लेश्या) है—उसको (वोच्छामि—वक्ष्यामि) कहूँगा।

मूलार्थ :—इसके आगे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की जिस प्रकार की तेजो लेश्या है उसको मैं कहूँगा।

पलिओवमंजहन्ना, उक्कोसा सागरा उ दुन्नहिया।
पलियमसंखेज्जेणं, होइ भागेण तेऊए ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ :— (पलिओवम—पल्योपमम्) (जहन्ना—जघन्या) जघन्य स्थिति (उक्कोसा—उत्कृष्टा) (दुन्नहिया—द्व्यधिके) दो अधिक (सागरा—सागरोपम (पलिय—पल्योपमम्) पल्योपम के (असंखेज्जेण—असंख्येयेन) असंख्यातवें (भागेण—भागेन) (तेऊए—तैजस्या) तेजो लेश्या की स्थिति—भवति—होती है।

मूलार्थ :— तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की होती है। और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की होती है।

दसवाससहस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ।
दुन्नुदही पलिओवम, असंख भागं च उक्कोसा ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ :— (दसवाससहस्साइं—दशवर्षसहस्राणि) दश हजार वर्ष (तेऊए—तेजो लेश्याया:) तेजोलेश्या की (जहन्निया—जघन्यिका) जघन्य (ठिई—स्थिति) होइ—होती है (दुन्नुदही—द्व्युदधि) दो सागरोपम (पलिओवम—पल्योपम) के (असंखभागं—असंख्य भागाधिका) असंख्यातवां भाग अधिक (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति होती है।

मूलार्थ.—तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की होती है। और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की होती है।

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उसमयमब्भहिया।
जहन्नेणं पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहियाइ उक्कोसा ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थ :— (जो—या) जो (तेऊए—तेजो लेश्या की) (ठिई—स्थिति) होती है (सा—वह) उ—तु—तो (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट कही गई है (समय—एक समय) (अब्भहिया—अभ्यधिका) से अधिक (जहन्नेण—जघन्येन) जघन्य रूप से (पम्हाए—पद्मलेश्याया) पद्म लेश्या की स्थिति होती है (उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति) (मुहुत्ताहियाइ—मुहूर्त्ताधिका) अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस—दश सागरोपम की होती है (खलु—वाक्यालंकार में)।

मूलार्थ :— यावन्मात्र उत्कृष्ट स्थिति तेजो लेश्या की है। वही एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति है तथा उसकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक दश सागरोपम की होती है।

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं सुक्काए तेत्तीस मुहुत्तमब्भहिया ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ :— (जा—या) जो (पम्हाए—पद्म लेश्यायाः) पद्म लेश्या की (ठिई—स्थिति) होती है (साउ—सातु) वह तो (खलु—वाक्यालंकारे) (उक्कोसा—उत्कृष्ट रूप से) कही है (समयमब्भहिया—समयाभ्यधिका) एक समय अधिक (जहन्नेण—जघन्य रूप से) (सुक्काए—शुक्लाया) शुक्ल लेश्या की स्थिति होती है और (तेत्तीस मुहुत्तमब्भहिया—त्रयस्त्रिंशत्) सागरोपम से (मुहुत्तमब्भहिया—मुहूर्ताभ्यधिका) एक मुहूर्त अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

मूलार्थ — यावन्मात्र पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति कही गई है। उससे एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति होती है तथा शुक्ल लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम की होती है।

किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जइ ॥५६ ॥

अन्वयार्थ :— (किण्हा, नीला, काऊ—कृष्णा, नीला, कापोत लेश्या) (एयाओ—एता) ये (तिन्नि वि—तिस्रोऽपि) तीनों भी (अहम्म लेसाओ—अधर्म लेश्या) अधर्म लेश्याएं हैं (एयाहि—एताभि) इन (तिहि—तिसृभि) तीनों से (वि—अपि) भी (जीवो—जीव) (दुग्गइं—दुर्गतिम्) दुर्गति में (उववज्जइ—उत्पद्यते) उत्पन्न होता है।

मूलार्थ—सर्व लेश्याओं की परिणति (परिवर्तन) में अन्तिम समय पर किसी जीव की उत्पत्ति परभव (परलोक) में नहीं होती।

अंत मुहुत्तम्मि गए अंत मुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं जीवा, गच्छंति परलोयं ॥६०॥

अन्वयार्थ—(अन्तमुहुत्तम्मि—अन्तर्मुहूर्ते) अन्तर्मुहूर्त (गए—गते) बीतने पर (च) और (अन्तमुहुत्तम्मि—अन्तर्मुहूर्ते) अन्तर्मुहूर्त (सेसए—शेष) बाकी रहने पर (लेसाहिं—लेश्याभिः) लेश्याओं के (परिणयाहिं—परिणताभिः) परिवर्तन से (जीवा—जीवाः) जीव (परलोयं—परलोकम्) गच्छन्ति—जाते हैं।

मूलार्थ—अन्तर्मुहूर्त बीतने और अन्तर्मुहूर्त के शेष रहने पर लेश्या के परिवर्तन होने से जीव परलोक को जाते हैं।

तम्हा एयासि लेसाणं आणुभावे वियाणिया।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता पसत्थाओऽहिट्ठिए मुणी ॥६१॥

अन्वयार्थ—(तम्हा—तस्मात्) इसलिए (एयासि—एतासाम्) इन (लेसाणं—लेश्यानाम्) लेश्याओं का (आणुभावे—अनुभावान्) रस विशेषों को (वियाणिया—विज्ञाय) जानकर (अप्पसत्थाओ—अप्रशस्ता) अप्रशस्त (वज्जित्ता—वर्जयित्वा) त्याग कर (मुणी—मुनि) साधु (पसत्थाओ—प्रशस्ता) प्रशस्त लेश्याओं को (अहिट्ठिए—अधितिष्ठेत्) अंगीकार करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

मूलार्थ—इसलिए इन लेश्याओं के रस विशेष को जानकर साधु अप्रशस्त लेश्याओं को छोड़कर प्रशस्त लेश्याओं को स्वीकार करे।

इति लेश्याध्ययन समाप्त
इति लेश्या [illegible] समाप्तम्

अह अणगारज्झयणं णाम पंचतीस इमं अज्झयणं,

अथ अनगाराध्ययनं नाम पञ्चत्रिंशत्तममध्ययनम्।

सुणेह मे एगग्गमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं
जमायरंतो भिक्खू, दुक्खाणंतकरे भवे ॥१॥

अन्वयार्थ — (बुद्धेहि—बुद्धैः) सर्वज्ञों द्वारा (देसियं—देशितम्) उपदेश दिया गया है ऐसे (मग्गं—मार्गम्) मार्ग को (एगग्गमणा—एकाग्रमनसा (मे—मे) मुझसे (सुणेह—शृणुत) सुनो (ज—यम्) जिसको (आयरंतो—आचरन्) आचरण करता हुआ (भिक्खू—भिक्षु) साधु (दुक्खाण—दुःखानाम्) दुःखों का (अन्तकरे—अन्तकरः) नाश करने वाला (भवे—भवेत्) होवे।

मूलार्थ.— हे शिष्यो! बुद्धों (सर्वज्ञों के द्वारा उपदेश किये गये मार्ग को तुम मुझ से सुनो) जिस मार्ग का अनुसरण करने वाला भिक्षु सर्वप्रकार के दुःखों का अन्त कर देता है।

गिहवासं परिच्चज्जा- पव्वाज्जामस्सिए मुणी।
इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जति माणवा ॥२॥

अन्वयार्थ.— (मुणी—मुनि.) (गिहवास—गृहवासम्) गृहवास को बिलकुल (परिच्चज्जा—परित्यज्य) छोड़कर (पव्वजा—प्रव्रज्याम्) दीक्षाका (अस्सिए—आश्रित) आश्रय करने वाला (इमे संगे—इमान् सगान्) (वियाणिज्जा—विजानीयात्) जाने (जेहिं—यैः) जिनसे (माणवा—मानवा) (सज्जति—सज्यन्ते) बध जाते हैं।

मूलार्थः— गृहवास को छोड़कर प्रवज्या के आश्रित हुआ मुनि इन संगो को भलि-भांति जानने का यत्न करें। जिनसे ज्ञानावरणीयादि कर्मों के द्वारा फसे हुए मनुष्य बधन को प्राप्त होते हैं।

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अबंभसेवणं ।
इच्छाकामं च लोहं च, संजओ परिवज्जए ॥३॥

अन्वयार्थः (तहेव—तथैव) उसी प्रकार (संजओ—संयतः) साधु (हिंसं -हिंसाम्) हिंसा को (अलियं—अलीकम्) झूठ को (चोज्जं—चौर्यम्) चोरी को (अबम्भसेवणं- अब्रह्मसेवनम्) मैथुन क्रीडा को (च—और) (इच्छाकामं अप्राप्त वस्तु इच्छा (च) तथा (लोहं—लोभम्) लोभ को (परिवज्जए—परिवर्जयेत्) सर्व प्रकार से त्याग दें।

मूलार्थः— संयमी पुरुष हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन-क्रीडा, अप्राप्त वस्तु की इच्छा और लोभ इन सबका परित्याग कर देवें ।

मणोहरं चित्तघरं, मल्लधूवेण वासियं
सकवाडं पंडुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥४॥

अन्वयार्थ.–(मणोहर) मनको मोहने वाला (चित्तघर-चित्रगृहम्)चित्रगृह (मल्ल-माल्य) पुष्प मालाओं से (धूवेण-धूपेन) सुगन्धित पदार्थों से(वासियं-वासितम्) सुवासित तथा(सकवाड-सकपाटम्)किवाडो से युक्त(पंडुरुल्लोयं-पाण्डुरोल्लोचम्)श्वेत वस्त्रो से सुसज्जित-गृह की(मणसा-मनसा)मन से(वि-अपि)भी न (पत्थए-प्रार्थयेत्) प्रार्थना न करे

मूलार्थः—जो स्थान मन को लुभाने वाला चित्रों से सुसज्जित पुष्प मालाओ और अगर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यो से सुवासित, तथा सुन्दर वस्त्रो से सजा हुआ सुन्दर किवाड़ो से युक्त स्थान की साधु मन से भी इच्छा न करे।

इंदियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए ।
दुक्कराइं निवारेउं, कामराग विवड्ढणे ॥५॥

अन्वयार्थः— (कामराग विवड्ढणे-कामराग विवर्द्धने) कामराग को बढ़ानेवाले (तारिसम्मि-तादृशे) इस प्रकार के (उवस्सए-उपाश्रये) उपाश्रय में (भिक्खुस्स-भिक्षोः) भिक्षु के लिये (इंदियाणि-इन्द्रियाणि) इन्द्रियों का इसमे निवारेउं-निवारयितुम्) दूर रखना (दुक्कराइं-दुष्कराणि) कठिन है (धारेउं-धारयितुम्) भी पाठ आता है ।

मूलार्थः—इस प्रकार कामराग को बढाने वाला उपाश्रय मे साधु के इन्द्रियो को वश मे रखना कठिन है ।

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व इक्कओ ।
पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थाभिरोयए ॥६॥

अन्वयार्थ — (सुसाणे-श्मशाने) श्मशान मे (सुन्नगारे-शून्यगारे) शून्य घर में वा (रुक्खमूले-वृक्षमूले) वृक्ष के मूल में (व-अथवा) (इक्कओ-ऐकक:) अकेला (पइरिक्के-प्रतिरिक्ते) एकान्त में (परकडे-परकृते) दुसरो के लिये बनाये गये स्थान मे (तत्थ-तत्र) वहाँ (वासं-वास करने की (अभिरोयए-अभिरोचयेत्) इच्छा करे ।

मूलार्थः—अत. श्मशान मे, शून्यगृह मे, किसी वृक्ष के नीचे अथवा दूसरों के लिये बनाये गये एकान्त स्थान मे अकेला तथा राग द्वेष से रहित होकर साधु, निवास करने की इच्छा करे ।

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए ।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परम संजए ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(फासुयम्मि—प्रासुके) जीवादि से रहित शुद्ध स्थान मे (अणाबाहे—अनाबाधे) बाधा रहित स्थान मे (इत्थीहिं—स्त्रीभि) स्त्रियों से (अणभिद्दुए—एनभिद्रुते) अनाकीर्ण अर्थात् स्त्रियो के उपद्रवों से रहित (तत्थ—वहाँ) (परम संजए—परम सयत) परम सयमी (भिक्खू—भिक्षु) (वास—निवास का) (संकप्पए —संकल्पयेत्) सकल्प करे ।

मूलार्थः—प्रासुक—शुद्ध जीवादि की उत्पत्ति से रहित, अनाबाध—जीवादि की विराधना या स्व पर—पीडा से रहित—और स्त्रियों की बाधाओं से रहित जो स्थान है वहाँ पर परम सयमशील साधु निवास करने का सकल्प करे

न सयं गिहाइं कुव्विज्जा, णेव अन्नेहिं कारए ।
गिहकम्म समारंभे, भूयाणं दिस्सए वहो ॥८॥

अन्वयार्थ —(गिहकम्म समारंभे—गृहकर्मसमारंभे) गृहकार्य के समारंभ मे (भूयाणं—भूतानाम्) प्राणियो की (वहो—वध:) हिंसा (दिस्सए—दृश्यते)

दिखाई देती है अतः साधु (सयं—स्वयं) (गिहाइ—गृहाणि) घर (नकु—व्विज्जा—नकुर्यात्) न बनावे और (अन्नेहिं—अन्यैः) दूसरों से भी (णेव—नैव) नहीं (कारए—कारयेत्) बनवावे तथा कोई दूसरा बनाता है तो उसका अनुमोदना भी न करे।

मूलार्थः—भिक्षु स्वयं घर न बनावे, और दूसरों से भी न बनवावे तथा दूसरा बनाता हो तो उसकी स्वीकृति भी न दे। क्योंकि गृहकार्य के समारम्भ में अनेक जवों की हिंसा होती देखी जाती है।

तसाणं थावराणं च, सुहुमाणं बादराणं य।
तम्हा गिहसमारंभं, संजओ परिवज्जए ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(तसाण—त्रसानाम्) त्रसजीवों का (थावरण-स्थावराणाम्) स्थावर जीवों का (च—च) और (सुहुमाण—सूक्ष्माणाम्) सूक्ष्मजीवों का (य—च) और (बादराण—बादराणाम्) बादर जीवों का वध होता है (तम्हा—तस्मात्) इसलिये (गिहसमारंभ—गृहसमारम्भम्) गृहसमारंभ को (संजओ—संयत) संयमी पुरुष (परिवज्जए—परिवर्जयेत्) त्याग दे।

मूलार्थः—गृह के समारंभ में त्रस, स्थावर, सूक्ष्म तथा बादर स्थूल जीवों की हिंसा होती है, इसलिए संयमशील साधु गृह के समारम्भ को सर्व प्रकार से त्याग देवे।

तहेव भत्तपाणेसु, पयणे पयावणेसु य।
पाणभूयदयट्ठाए, न पए न पयावए ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(तहेव-तथैव) उसी प्रकार (भत्तपाणेसु-भक्तपानेषु) आहार पानी के विषय में जानना (पयणे-पचने) पाचन में-बनाने में (य-च) और (पयावणे-पाचनेषु) पकवाने में (पाणभूय-प्राणभूत) प्राणियों की (दयट्ठाए-दयार्थम्) दया के वास्ते (न पए-न पचेत्) न पकावे (न पयावए-न पाचयेत्) न पकवावे।

मूलार्थ — उसी तरह अन्न-पानी बनाने-पकाने और बनाने-पकवाने में भी- [त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा होती है] अतः प्राणियों पर दया करने के लिये संयमशील साधु न स्वयं अन्न को पकावे और न दूसरों से पकवावे।

जलधन्न निस्सिया जीवा, पुढवी कट्ठ निस्सिया ।
हम्मंति भत्तपाणेसु, तम्हा भिक्खू न पयावए ॥११॥

अन्वयार्थः—(जलधन्न निस्सिया—जलधान्य निश्रिता) जल और धान्य के आश्रित (जीवा-जीवाः) (पुढवी कट्ठनिस्सिया-पृथिवीकाष्ठ निश्रिता) पृथिवी और काष्ठ के सहारे रहने वाले (भत्तपाणेसु-भक्तपानेषु) आहार पानी के बनाने बनवाने में (हम्मनि-हन्यन्ते) मारे जाते हैं (तम्हा-तस्मात्) इससे (भिक्खू-भिक्षु) (न पयावए-न-पाचयेत्) अन्नादिको न पकावे न पकवावे ।

मूलार्थः—अन्न के पकाने और पकवाने मे जल और धान्य के आश्रित तथा पृथिवी और काष्ठ के आश्रित अनेक जीवों की हिंसा होती है । अतः भिक्षु अन्नादि को न पकावे और न पकवावे ।

विसप्पे सव्वओ धारे, बहुपाणि विणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥१२॥

अन्वयार्थ—(विसप्पे-विसर्पत्) फैलती हुई (सव्वओ-सर्वत) सर्व प्रकार से-सर्वदिशाओं से (धारे-धारम्) शस्त्र धारायें (बहुपाणि-विणासणे-बहुप्राणि विना-शनम्) अनेकानेक प्राणियों का विनाशक (नत्थि-नास्ति) नहीं है (जोइसमे-ज्योति समम्) अग्नि के समान (सत्थे-शस्त्रम्) शस्त्र (तम्हा-इसलिये) (जोइ-ज्योतिः) आग को (न दीवए-न दीपयेत्) प्रज्वलित न करें ।

मूलार्थः—सर्व प्रकार से अथवा सर्व दिशाओं मे फैली हुई धारायें जिसकी हैं । अनेकानेक प्राणियों का विघात करने वाला है, ऐसा अग्नि के समान कोई दूसरा शस्त्र नहीं है । अतः साधु अग्नि को कभी प्रज्वलित न करें ।

हिरण्णं जायरूवं, मणसावि न पत्थए ।
समलेट्ठु कंचणे भिक्खू, विरए कय विक्कए ॥१३॥

अन्वयार्थ—(कय विक्कए—क्रय विक्रयात्) क्रय—खरीद विक्रय—बेचना से (विरए—विरत) निवृत्त हुआ (समलेट्ठु कंचणे —समलोष्ट कांचनः) पाषाण और सुवर्ण जिसको समान है ऐसा (भिक्खू—भिक्षु) साधु (हरण्णं—हिरण्यम्) सुवर्ण (जायरूवं—जातरूपम्) चाँदी को तथा खरीद बिक्री भी (मणसा—मनसे) भी (न पत्थए—न प्रार्थयेत्) प्रार्थना न करे ।

मूलार्थ—क्रय-विक्रय (वस्तुओं के खरीदने और बेचने) से विरक्त और पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझनेवाला साधु सोने चाँदी आदि वस्तुओं के खरीद-बिक्री की मन से भी इच्छा न करे।

किणंतो कइओ होइ, विक्किणंतो य वाणिओ।
कय विक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू न भवइ तारिसो॥१४॥

अन्वयार्थ—(किणतो—क्रीणन्) पर वस्तु को खरीदने वाला (कइओ—क्रायक) (होइ—भवति) होता है (विक्किणतो—विक्रीणान) अपनी वस्तु—बेचने वाला (वाणिओ—वणिक्) होता है (क्य विक्कयम्मि—क्रय विक्रये) क्रय—विक्रय मे (वट्टंतो—वर्तमान) वर्तता हुआ (भिक्खू—भिक्षु) साधु (तारिसो—तादृश) वैसा-जैसा साधु लक्षण कहा गया है (न भवइ—नभवति) नहीं होता।

मूलार्थ—पर वस्तु को खरीदने वाला क्रायक—ग्राहक होता है और अपनी वस्तु को बेचने वाले को बनिया—व्यापारी कहते हैं। क्रय—विक्रय में पड़ने वाला—भाग लेनेवाला साधु, साधु नहीं कहलाता।

भिक्खियव्वं न केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा।
कय विक्कओ महादोसो, भिक्खवत्ती सुहावहा॥१५॥

अन्वयार्थ—(भिक्खियव्वं—भिक्षितव्यम्) भिक्षा करनी चाहिए (न केयव्वं—न क्रेतव्यम्) मूल्य से कोई वस्तु नहीं खरीदनी चाहिए (भिक्खुणा—भिक्षुणा) भिक्षु को (भिक्खवत्तिणा—भिक्षु वृत्तिना) भिक्षा वृत्ति वाले को (कयविक्कओ—क्रयविक्रयो) क्रय विक्रय में (महादोसो—महान् दोष) महादोष है (भिक्खवत्ती—भिक्षावृत्ति) (सुहावहा—सुखावहा) सुख देने वाली है।

मूलार्थ—भिक्षु को भिक्षावृत्ति से ही निर्वाह करना चाहिए, परन्तु मूल्य देकर कोई वस्तु नहीं लेना चाहिए। कारण कि क्रय विक्रय में महान् दोष है और भिक्षा वृत्ति सुख देने वाली है।

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहा सुत्तमणिंदियं।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिंडवाय १

अन्वयार्थ—(मुणी—मुनिः) (जहासुत्त—यथा सूत्रम्) सूत्रानुसार (अनिंदियं—अनिन्दितम्) निन्दनीय जाति की भिक्षा न हो (समुयाण—सामुदानिकम्) सामुदानिक भिक्षा करता हुआ (उञ्छ—उञ्छम्) स्तोक मात्र-थोड़ा (एसिज्जा—एषयेत्) गवेषणा करे (लाभालाभम्मि—लाभालाभयोः) लाभ तथा अलाभ में (संतुट्ठे—संतुष्ट) संतुष्ट रहे (पिंडवाय—पिंडपात) भिक्षावृत्ति को (चरे—चरेत्) करें।

मूलार्थ—सूत्र विधि के अनुसार अनिन्दित अनेक कुलों से थोड़े थोड़े आहार की गवेषणा करे तथा मिलने या न मिलने पर संतुष्ट रहे। इस प्रकार मुनि भिक्षा वृत्ति का आचरण करे।

अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥१७॥

अन्वयार्थ—(महामुणी—महामुनिः) (अलोले—अलोलः) लोभ से रहित (रसे—रस में) (न—नहीं) (गिद्धे—गृद्धः) आसक्त हो (जिब्भादंते—दान्तजिह्वः) जिह्वा को वश में करने वाला (अमुच्छिए—अमूर्च्छितः) आहार विषयक मूर्च्छा से रहित (रसट्ठाए—रसार्थम्) आस्वाद के लिए (न भुंजिज्जा—न भुञ्जीत) भोजन न करे। अपितु (जवणट्ठाए—यापनार्थम्) संयम यात्रा के निर्वाह के लिए आहार करे।

मूलार्थ—जिह्वा इन्द्रिय पर काबू रखने वाला मननशील साधु रस का लोभी न बने। अधिक स्वाद युक्त भोजन में आसक्त न होवे। रस के लिए स्वादेन्द्रिय की प्रसन्नता के लिए भोजन न करे किन्तु संयम-निर्वाह के उद्देश्य से ही भोजन करे।

अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा।
इड्ढी सक्कार सम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥१८॥

अन्वयार्थ—(अच्चणं—अर्चनम्) (रयणं—रचनम्) स्वस्तिकादि की रचना (वंदणं—वन्दनम्) वंदन (पूयणं—पूजनम्) पूजन (इड्ढी—ऋद्धिः) (सक्कार—सत्कारः) (चेव—और) (सम्माणं—सम्मानम्) (मणसा—मनसा) मन से (वि—अपि) भी (न पत्थए—न प्रार्थयेत्) प्रार्थना न करे।

मूलार्थ :— अर्चना, रचना, [illegible] ऋद्धि, सत्कार और [illegible] इन बातों की मुनि मन से भी इच्छा न करे।

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अणियाणे अकिंचणे।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥१९॥

अन्वयार्थ :— (अकिंचणे—अकिञ्चनः) अपरिग्रही रहकर (वोसट्ठकाए—व्युत्सृष्टकायः) काया के ममत्व का त्याग कर (अनियाणे—अनिदानः) परलोक में जाकर देवादि बनने आदि निदान कर्म को न बांध कर (जाव—यावत्) जब तक (कालस्स—कालस्य) काल का (पज्जओ—पर्यायः) है अर्थात् मृत्यु पर्यन्त (सुक्कज्झाणं —शुक्लध्यानम्) शुक्लध्यान को (झियाएज्जा—ध्यायेत्) ध्यावे और अप्रतिबद्ध—स्वतन्त्र होकर (विहरेज्जा—विहरेत्) विचरे।

मूलार्थ — साधु मृत्यु पर्यन्त अपरिग्रही रहकर तथा काया के ममत्व का भी त्याग कर, परलोक में जाकर देवादि बनने आदि संकल्प का त्याग करके शुक्लध्यान को ध्यावे और बाधारहित होकर विचरे।

निज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्ठिए ।
चइऊण माणुसं बोंदि, पहू दुक्खा विमुच्चई ॥ २० ॥

अन्वयार्थ — (पहू—प्रभु) समर्थ मुनि (कालधम्मे—कालधर्मे) काल-धर्म—मृत्यु के (उवट्ठिए—उपस्थिते) उपस्थित होने पर (आहर—आहार को (निज्जूहिऊण—निर्हाय—परित्यज्य) त्याग कर (माणुसं—मानुषीम्) मनुष्य सम्बन्धी (बोंदि—तनुम्) शरीर को (चइऊण—त्यक्त्वा) छोड़कर (दुक्खा—दुःखात्) दुःखों से (विमुच्चई—विमुच्यते) छूट जाता है।

मूलार्थ —प्रभु—समर्थ मुनि कालधर्म के—मृत्यु के उपस्थित होने पर चतुर्विध आहार का परित्याग करके मनुष्य सम्बन्धी शरीर को छोड कर सब सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है।

निम्ममे निरहंकारे वीयरागो अणासवो ।
संपत्तो केवलंनाणं सासयं परिणिव्वुए ॥२१॥

अन्वयार्थ — (निम्ममे—निर्मम) ममत्व से रहित (निरहंकारे—निरहंकार) अभिमान रहित (वीयरागो—वीतराग) रागद्वेष रहित (अणासवो—अनाश्रव) आश्रवरहित (केवलनाणं—केवलज्ञानम्) को (संपत्तो—संप्राप्त) प्राप्त हुआ (सासयं—शाश्वतम्) सदा के लिए (परिणिव्वुए—परिनिर्वृत) सुखी हो जाता है।

मूलार्थ — ममत्व और अहंकार से रहित वीतराग तथा आश्रवों से रहित होकर केवल ज्ञान प्राप्त करके सदा के लिए सुखी बन जाता है। अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है (त्तिबेमी-इतिब्रवीमि) ऐसा कहता हूँ।

इति अणगारज्झयणं समत्तं॥३५॥

इत्यनगाराध्ययनं समाप्तम् ॥३५॥

भगवान महावीर
और
उनका चिन्तन

निदेशक
परमपूज्य राष्ट्रसंत आनन्दऋषिजी महाराज

लेखक
डॉ० भागचन्द्र 'भास्कर'
एम ए (त्रय), साहित्याचार्य, पी-एच डी. (Ceylon)
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग
नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

प्रकाशक
श्री रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी

સુગ્રીવનૃપ જસ તાય, રામારાણી માય,
આજ હો ! ગંગારે તરંગો પરે પ્રભુ ઉજળોજી (૨)
જિત્યો કામવિકાર. ન રહ્યો જાસ પ્રચાર,
આજ હો ! માનું રે મકરધ્વજ ધાર્યો તે ભણીજી (૩)
નામે નવહ નિધાન, આય મિળે એક તાન,
આજ હો ! જેહનીરે આણા છે, નવ તત્વે મિળીજી (૪)
અવમ[1]–અવિધિ કરે નાશ, પ્રગટે બુદ્ધિવિલાસ,
આજ હો ! ન્યાયેરે ઈણે સુવિધિ નામ ધરાવિઉંજી (૫)

卐

(૫૬૨) (૨૩–૧૦) શ્રી શીતલનાથ–જિન સ્તવન

(રાગ રામગિરિ–દેશી સાહેલડીની)

શ્રીશીતલજિન વંદિયે–અરિહંતાજી,
શીતલ દર્શન જાસ—ભગવંતાજી
વિષય કષાયને શામવા—અરિ૦
અભિનવ જાણે બરાસ—ભગ૦ (૧)
ભાવનાચંદન પરિ કરે—અરિ, કંટકરૂંખ[2]સુવાસ–ભગ૦
તિમ કંટક મન માહરૂં—અરિ,
તુમ ધ્યાને હોયે શુભ વાસ—ભગ૦ (૨)
નંદન નંદા માતનો–અરિ૦ કરે આનંદિત લોક–ભગ૦
દ્રઢરથનૃપ કુલદિનમણિ—અરિ૦
જિત મદ માન ને શોક—ભગ૦ (૩)
શ્રી વત્સલંછન મિસિ રહે–અરિ૦ પગકમળે સુખકાર–ભગ.
મંગળિકમાં તે થયો—અરિ૦ તે ગુણ પ્રભુ આધાર–ભગ૦(૪)
કેવળકમળા આપીયે-અરિ૦ તો વાધે જગ મામ[3]—ભગ૦

---

૧. ઓઠાશ, ૨. કાંટાળાઝાડ. ૩. મહિમા